Bachelor of Commerce (DDE)

Semester – I

Paper Code – BM1003-I

BUSINESS MANAGEMENT – I

व्यावसायिक प्रबंध – I

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr. Preeti Sharma*

Copyright © 2002, 2020; Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

B.Com-I (First Semester)

Business Management-I

PAPER CODE: BM1003-I

Theory Paper Max Marks: 80

Time: 3 Hrs **Internal marks: 20**

Note: - The Examiner shall set nine questions in all covering the whole syllabus. Question No.1 will be compulsory covering all the units and shall carry 8 small questions of 2 marks each. The rest of the eight questions will be set from all the four units. The examiner will set two questions from each unit out of which the candidate shall attempt four questions selectingone question from each unit. All the questions shall carry 16 marks each.

Unit I

Introduction to Management: Concept, Nature, Process and Significance of Management; Managerial Roles (Mintzberg); Development of Management Though, Classical and Neo-classical Systems; Contingency Approaches.

Unit II

Planning: Concept process and Types; Decision Making Concept and Process; Bounded Rationality; Management by Objectives; **Corporate planning Environment analysis** and diagnosis; Strategic formulation.

Unit III

Organizing: Concept Nature; Process and Significance; Authority and Responsibility Relationship; Centralization vs. Decentralization; Departmentation; Organisation Structure Forms and contingency factors.

Unit IV

Motivating and Leading people at Work; Motivating concept; Theories- Maslow, Herzberg, Mcgregor, a Ouchi; Financial and non-financial incentives.

Suggested Readings:

1. Druker. Peter F. Management Challenges for the 21st century; Butter worth Heinemann Oxford.

2. Weihrich and Koontz, O. Donnel: Essential of Management Tata Mc Graw Hill, New Delhi.

विषय सूची

प्रथम यूनिट **1–32**

प्रबंधन का परिचय: अवधारणा,
प्रकृति, प्रक्रिया और प्रबंधन का महत्व;
प्रबंधकीय भूमिकाएं (मिंटबर्ग);
प्रबंधन का विकास हालांकि,
शास्त्रीय और नव–शास्त्रीय प्रणाली;
आकस्मिकता दृष्टिकोण।

द्वितीय यूनिट **33–63**

योजना: अवधारणा प्रक्रिया और प्रकार;
निर्णय लेने की अवधारणा और प्रक्रिया;
सीमित समझदारी;
उद्देश्यों के द्वारा प्रबंधन;
कॉर्पोरेट योजना पर्यावरण विश्लेषण और निदान;
सामरिक सूत्रीकरण।

तृतीय यूनिट **64–98**

आयोजन: संकल्पना प्रकृति;
प्रक्रिया और महत्व;
प्राधिकरण और जिम्मेदारी संबंध;
केन्द्रीयकरण बनाम विकेंद्रीकरण;
Departmentation;
संगठन संरचना प्रपत्र और आकस्मिक कारक।

चतुर्थ यूनिट **99–148**

कार्य पर लोगों को प्रेरित करना
और नेतृत्व करना; प्रेरक अवधारणा;
सिद्धांत– मास्लो, हर्ज़बर्ग, मैकग्लोर,
एक औची; वित्तीय और गैर–वित्तीय प्रोत्साहन।

यूनिट–I

प्रबंधन का परिचयः अवधारणा, प्रकृति, प्रक्रिया और प्रबंधन का महत्व; प्रबंधकीय भूमिकाएं (मिंटबर्ग); प्रबंधन का विकास हालांकि, शास्त्रीय और नव–शास्त्रीय प्रणाली; आकस्मिकता दृष्टिकोण।

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, छात्र निम्नलिखित में सक्षम होंगेः

1. प्रबंधन की अवधारणा, नाम और प्रक्रिया को समझें।
2. प्रबंधकीय भूमिकाओं के साथ खुद को परिचित करें, विभिन्न प्रबंधन विचार जैसे कि शास्त्रीय और नव शास्त्रीय और आकस्मिक एपोरच।

Unit–I

प्रबंधन का परिचय

(Introduction to Management)

प्रबन्ध का अर्थ

प्रबन्ध का अर्थ सामान्य शब्दों में प्रबन्ध से अभिप्राय व्यक्तियों के समूह से कार्य कराना है। प्रबन्ध के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए अंग्रेजी के शब्द MANAGEMENT की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है :

MANAGE

MAN

TACTFULLY

प्रबन्ध एक विस्तृत एवम् जटिल विचारधारा है। इसलिए भिन्न–भिन्न विद्वानों ने इसका प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में किया है। प्रबन्ध की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित हैंः–

1. एफ. डब्ल्यू. टेलर के अनुसार–''प्रबन्ध यह जानने की कला है कि आप व्यक्तियों से वास्तव में क्या काम लेना चाहते हैं और फिर यह देखना कि वे उसको सबसे मितव्ययी तथा सर्वश्रेष्ठ ढंग से सम्पन्न करते हैं।''

उपरोक्त परिभाषा के अनुसार सबसे पहले यह निर्धारित किया जाता है कि हमारे उद्देश्य क्या हैं, इन्हें अनुकूलतम ढंग से कैसे प्राप्त किया जा सकता है तथा इसके लिए हमें क्या–क्या समायोजन करने पड़ेंगे।

2. पीटर एफ. ड्रकर–प्रबन्ध एक कार्य, ज्ञान की एक शाखा, किया जाने वाला एक कार्य है और प्रबन्धक ज्ञान का व्यवहार में प्रयोग करते हैं, कार्य करते हैं तथा विशेष कार्यों को संपादित करते हैं।

इस परिभाषा के अनुसार प्रबन्ध को एक कार्य माना गया है जो कि प्रबन्धकों के द्वारा पूरा किया जाता है। यह ज्ञान की एक शाखा है जिसमें विश्लेषण के बाद प्रबन्धक अपने ज्ञान का व्यवहार में प्रयोग करते हैं। इस प्रकार ड्रकर के अनुसार प्रबन्ध विज्ञान एवम् कला है।

अतः हम निष्कर्ष के रूप में यह कह सकते हैं कि प्रबन्ध एक ऐसा नेतृत्व कार्य है जिसमें सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय प्रयासों का नियोजन, संगठन, निर्देशन एवम् नियन्त्रण किया जाता है। यह भौतिक एवम् मानवीय संसाधनों के कुशलत उपयोग द्वारा उचित निर्णयन एवम् निर्देशन के माध्यम से दूसरों से कार्य लेने की कला है।

प्रबन्ध की विशेषताएं

प्रबन्ध की उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन करने के पश्चात् निम्नलिखित विशेषताएं सामने आती हैंः

1. **प्रबन्ध सर्वव्यापक है–(सभी स्तरों पर आवश्यक)**–प्रबन्ध संगठन के विभिन्न स्तरों में विद्यमान होता है। व्यवसाय में । प्रत्येक व्यक्ति चाहे, वह निम्न अथवा मध्य अथवा उच्च स्तर पर हो, को बहुत से निर्णय लेने होते हैं और सही एवमउचित निर्णय लेना प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। प्रत्येक कार्य के लिए प्रबन्ध की आवश्यकता होती है।

2. **प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है**–प्रबन्ध का उद्देश्य सीमित साधनों से अधिकतम उपयोगिता प्रापत करना है जिससे संपूर्ण समाज को अधिक से अधिक लाभ हो सके। प्रबन्ध की तकनीकों द्वारा व्यवसाय के सामाजिक दायित्वों एवम् लाभ उद्देश्यों के मध्य सामंजस्यता को स्थापित किया जाता है।
3. **यह एक प्रक्रिया है**–प्रबन्ध एक ऐसी प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है। इस प्रक्रिया में निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्तिके लिए नियोजन, संगठन, समन्वय, क्रियान्वयन, निर्देशन एवम् नियंत्रण इत्यादि को शामिल किया जाता है।
4. **प्रबन्ध उद्देश्यपूर्ण है**–प्रबन्ध की मुख्य विशेषता इसका उद्देश्यपूर्ण होना है क्योंकि प्रत्येक प्रन्धकीय क्रिया का कुछ न कुछ उद्देश्य जरूर होता है। ये उद्देश्य स्पष्ट या अस्पष्ट हो सकत हैं। विभिन्न मानवीय क्रियाओं के नियोजन, निर्देशन तथा नियंत्रण द्वारा अन्य साधनों के सर्वोत्तम उपयोग को सम्भव बनाने का उद्देश्य इच्छित उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है।
5. **प्रबन्ध एक क्रियाशील कार्य है**–प्रबन्ध एक क्रियाशील कार्य है क्योंकि यह उपक्रम के निष्क्रिय साधनों जैसे सामग्री, मशीन एवम् पूंजी को जीवन प्रदान कर उन्हें क्रियाशील बनाता है। पीटर एफ. ड्रकर ने प्रबन्ध को जीवन प्रदायी अवयव कहा है जिसके बिना व्यवसाय में लगे साधन केवल साधन ही रह जाते हैं, वस्तु या सेवा का उत्पादन नहीं कर पाते हैं।
6. **प्रबन्ध का संबंध सामूहिक प्रयासों से है**–प्रबन्ध किसी व्यक्ति विशेष के कार्यों से न होकर आध स हाता है जो औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप से संगठित होते हैं। किसी भी संस्था क उददरच समूह द्वारा सुगमता से प्राप्त किए जा सकते हैं।
7. **प्रबन्ध कला एवम् विज्ञान दोनों है**–प्रबन्ध कला एवम विज्ञान दोनों हैं। विज्ञान की भांति इसमें भी कुछ नार एवम् नियम है तथा कला इसलिए है क्योंकि पबन्धको व्यवहारिक रूप में प्रयोग करने के लिए एक विशष शान एवम् चातुर्य की आवश्यकता होती है जो कि प्रत्येक व्यक्ति में का होना संभव नहीं है।
8. **प्रबन्ध स्वामित्व से भिन्न है**–प्रबन्ध एवं स्वामित्व दोनों भिन्न भिन्न है। उदाहरण के लिए संयक्त पूंजी वाली कपनियो म स्वामी तो अंशधारी होते हैं जबकि प्रबन्ध दुसरे व्यक्तियों के हाथ में होता है जिन्हें संचालक कहा जाता है। यहा दा अलग–अलग वर्ग, एक तो पूंजी जुटाने वाला और दूसरा प्रबन्ध को चलाने वाला होता है। अतः यह स्पष्ट हो गया है किप्रबन्ध और स्वामित्व दोनों अलग–अलग हैं।
9. **प्रबन्ध एक सार्वभौम प्रक्रिया है**–प्रबन्ध सिर्फ सामाजिक ही नहीं अपित यह एक सार्वभौम प्रक्रिया भी है क्योंकि यह नकेवल व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में अपित् आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवम राजनैतिक सभी संस्थाओं में समान रूप से लाग ू किया जा सकता है।
10. **प्रबन्ध एक पेशा हैः**–औद्योगिक क्रांति के पश्चात् बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना होने लगी जिन्हें सुव्यवस्थित ढंग से चलानेके लिए प्रबन्धकों की आवश्यकता महसूस की गई। प्रबन्धकों में विशिष्ट ज्ञान एवम् चातुर्य तथा व्यवसायिक योग्यता का होना आवश्यक हैं, जिसे वे विधिवत् अध्ययन एवम् प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार प्रबन्ध में वे सभी विशेषताएं विद्यमान होती हैं जो एक पेशे के लिए जरूरी हैं। प्रबन्ध को पेशा कहना भी ठीक है।

प्रबन्ध की प्रकृति

प्रबन्ध एक विस्तृत शब्द है जिसकी प्रकृति को गिने–चुने शब्दों में स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रबन्ध की प्रकृति को निम्नलिखित शीर्षकों द्वारा समझाया जा सकता है–

(अ) प्रबन्ध विज्ञान एवं कला के रूप में
(ब) प्रबन्ध एक पेशे के रूप मेंही
(स) प्रबन्ध एक सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में

(अ) प्रबन्ध विज्ञान एवं कला के रूप में

प्रबन्ध विज्ञान है या कला इस विषय पर विद्वानों के अलग–अलग विचार हैं। कुछ विद्वान प्रबन्ध को कला मानते हैं और कुछ विद्वान प्रबन्ध को विज्ञान। लेकिन वास्तव में प्रबन्ध विज्ञान एवम् कला दोनों है।

प्रबन्ध कला के रूप में

कला का अर्थ किसी कार्य को करने के लिए या किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनुभव सिद्ध ज्ञान और व्यक्तिगत कशलता का प्रयोग करना है।

जार्ज आर. टेरी के अनुसार, ''कला का अर्थ वास्तव में किसी कार्य को कुशलतापूर्वक करने के लिए या किसी उद्देश्य को प्रभावपर्ण हमारा प्राप्त करने के लिए व्यवहारिक निपुणता तथा व्यक्तिगत कुशलता का प्रयोग करना है।''

इस प्रकार कला की चार विशेषताएं हैं:–

1. व्यावहारिक ज्ञान–प्रबन्ध एक व्यावहारिक ज्ञान है। प्रबन्ध के कार्य को चलाने के लिए प्रबन्धक में व्यावहारिक दोना बहत आवश्यक है। बिना व्यावहारिक ज्ञान के व्यवसाय को कुशलता से नहीं चलाया जा सकता।
2. व्यक्तिगत निपुणता–एक कलाकार के अन्दर निवासी है जो उसे दसरों से भिन्न स्थान दिलवाता है। उसमें अपनी विशिष्टता तथा शैली होती है। एक प्रबन्धक की भी अपनी विशिष्ट शैली होती है जो उसे दूसरा से सहयोग प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है।
3. ठोस परिणाम–कला का आधार ठोस परिणामों को प्रदान करना है। प्रबन्ध का आधार भी ठोस परिणामों को प्राप्त करनाहै। यहा ठोस परिणाम का आशय है कि कम से कम लागत एवम श्रम से अधिक से अधिक उद्देश्यों की पूर्ति करना।
4. अभ्यास के द्वारा विकास–कला अभ्यास के द्वारा निखरती है तथा विकसित होती है। इसी प्रकार एक प्रबन्ध का कुशलताभी अनुभव तथा अभ्यास से सधरती है। एक प्रबन्धक में चाहे कितनी भी व्यक्ति निपणता क्यों न हो वह प्रबन्ध का सारा समस्याओ को बराबर कुशलता से नहीं निभा पाता। इसका कारण यह है कि जिस वातावरण में वह रहता है, वह निरन्तर बदलता रहता है। अभ्यास से ही वह नित्य प्रतिदिन अधिक कुशल बन जाता है।

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि

प्रबन्ध एक कला है।

प्रबन्ध विज्ञान के रूप में प्रबन्ध को विज्ञान भी माना जाता है। विज्ञान ज्ञान का वह ससंगठित एवम नियोजित भंडार है जो किसी तत्व की प्रकृति एवम् स्वभाव के बारे में सर्वप्रयुक्त नियमों का प्रतिपादन करें। विज्ञान के नियम प्रयोग तथा अवलोकन पर आधारित होते हैं। वे घटनाओं के ''कारण परिणाम'' के संबंधों को स्पष्ट करते हैं। विज्ञान के तीन प्रमुख लक्षण हैं:

1. **सर्वप्रयुक्त सिद्धान्त**–प्रबन्ध के अपने कुछ कुलभूत सिद्धान्त हैं। ये सिद्धान्त प्रायः सब जगह प्रयोग में लाए जाते हैं। उदाहरण के लिए हम फेयोल के सिद्धान्त लेते हैं। प्रबन्ध के इन सिद्धान्तों का व्यवस्थित अध्ययन व अध्यापन किया जाता है।
2. **वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रणाली**–प्रायः प्रबन्ध के सिद्धान्त भी वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रणाली पर आधारित होते हैं । टेलर तथा उसके अनुयायियों द्वारा सुझाए गए वैज्ञानिक प्रबन्ध के लगभग सभी सिद्धान्त वैज्ञानिक अनुसंधान तथा प्रयोग परआधारित हैं।

3. **सिद्धान्तों की परीक्षण योग्यता**–प्रबन्ध के सिद्धान्तों में भी परीक्षण योग्यता पाई जाती है। वे भी व्यवहार की कसौटीपर परखे और सिद्ध किए जा सकते हैं।

(ब) प्रबन्ध एक पेशे के रूप में

पेशे का अर्थ–पेशा एक ऐसा जीविकोपार्जन का माध्यम है जिसके लिए प्रशिक्षण, प्रबन्धकीय ज्ञान तथा अनुभव की आवश्यकता होती है, जो व्यक्तिगत स्वार्थ पर आधारित न होकर सेवा भावना पर आधारित है।

पेशे के लक्षण

1. पेशे का प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त करने के लिए कुछ निश्चित अवधि होती है।
2. पेशे के लिए एक आचार संहिता (Code of Conduct) होनी चाहिए जिसका सभी सदस्यों द्वारा पालन किया जाना चाहिए।
3. पेशे के निर्बाध एवं कुशल संचालन के लिए औपचारिक संगठन होना चाहिए।
4. समाज की कुशलतापूर्वक सेवा करने के लिए पेशे के पर्याप्त सदस्य होने चाहिए।
5. पेशे के सदस्यों को प्रमापों के विकास के लिए योगदान देने का दायित्व स्वीकार करना चाहिए।

जहां तक प्रबन्ध को पेशा मानने की बात है इस संबंध में डाल्टन मैकफरलैण्ड ने पेशे के रूप में निम्नलिखित विशेषताएं निश्चित की हैंः

1. संगठित एवं सुव्यवस्थित ज्ञान होना।
2. प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त करने की औपचारिक विधियां होना।
3. पेशे का लक्ष्य के साथ एक संबंध।
4. व्यवहार के निर्देशन के लिए आचार संहिता का निर्माण।
5. मौद्रिक पुरस्कार की तुलना में सेवा को प्राथमिकता देते हए सेवाओं का शुल्क लेना।

एक सफल प्रबन्धक के लिए व्यवस्थित ज्ञान का होना आवश्यक है। वर्तमान शताब्दी में प्रबन्ध विकास का निरन्तर विकास हुआ ह आर अभी भी प्रबंध अवधारणा विकसित हो रही है तथा नए सिद्धान्त स्थापित किए हमारे देश के तीन प्रबंध संस्थान एवं अनेक विश्वविद्यालयो क प्रदान किया जा रहा है। प्रबन्धकों ने अपनी प्रतिनिधि सस्था 'अखिल भारतीय प्रबन्ध सस्थान' नई दिल्ली भी स्थापित की है। इस क्षेत्र में कुछ आचार संहिता भी बनाई गई है और यह आशा की जाती है कि सभी प्रबन्धक उसका पालन करें यद्यपि उन्हें सार्वभौमिक रूप से स्वीकार नहीं किया गया है। पेशेवर प्रबन्धक अपनी सेवाओं का उचित प्रतिफल भी प्राप्त करते हैं। यद्यपि उनकी सफलता उनके द्वारा कमाई जाने वाली मुद्रा में नहीं आंकी जा सकती।

उपरोक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पांध पर्ण रूप से पेशे के रूप में विकसित नहीं हुआ है। एक प्रबंधक के लिए औपचारिक प्रबंधकीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण अनिवार्य नहीं है। प्रबन्ध को संघ की सदस्यता भी अनिवार्य नहीं है और न ही अन्य देशों भी भांति प्रमाण पत्र या अनुमति पत्र की आवश्यकता होती है। प्रबंधक किसी आचार संहिता का पालन करने के बाध्य भी नहीं है। ये सभी तथ्य इस बात को स्पष्ट करते हैं कि प्रबंध अभी आंशिक रूप से ही पेशा है, पूर्ण रूप स नहीं।

उपरोक्त संदर्भ से भी निम्न कथन सत्य सिद्ध नहीं होता–

"पेशेवर प्रबन्ध वह प्रबन्ध है जो पेशे के रूप में योग्य प्रबन्धकों द्वारा किया जाता हो।'' यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि पेशेवर प्रबधको के लिए औपचारिक शिक्षा लेना अनिवार्य नहीं है केवल विशिष्ट ज्ञान एवं निपुणता

आवश्यक हैय जो कि अनौपचारिक शिक्षा एव अनुभव से भी हो सकती है। पेशेवर प्रबंधक वे प्रबंधक होते हैं जो आधनिकतम एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों, प्रणालियों एवं तकनीक का प्रयोग करते हैं।

भारत में पेशेवर प्रबंध की धीमी प्रगति का एक महत्वपूर्ण कारण ''पारिवारिक प्रबंध'' है जिसके अन्तर्गत स्वामी ही प्रबंधक होते ह आर यदि वे योग्य एवं प्रशिक्षित प्रबंधक नियुक्त भी करते हैं तब भी अधिकांश अधिकार अपने पास ही केन्द्रित रखते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंध के विकास में बाधक तत्व 'अफसरशाही' की विद्यमानता है। लेकिन यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि अब प्रबंध में पेशे की विशेषताएं पाई जाने लगी हैं एवं भारत में प्रबंध तेजी से पेशे के रूप में विकसित हो रहा है और शीघ्र ही वह दिन आएगा जब प्रबंध का विकास पूर्ण पेशे के रूप में होगा।

(स) प्रबंध एक सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में

प्राचीन काल में मनुष्य अपनी आवश्यकता के लिए ही वस्तुओं का उत्पादन करता था। धीरे–धीरे मनुष्य ने अतिरिक्त उत्पादन करके और उसे बेचकर लाभ कमाने की प्रक्रिया को अपनाया। बाद में वस्तुओं का क्रय–विक्रय केवल लाभ पर ही होने लगा। प्रत्येक व्यापारी व उद्योगपति का उद्देश्य लाभ कमाना ही रह गया । वास्तव में यदि देखा जाए तो व्यावसायिक क्रिया का उद्देश्य ही लाभ कमाना रह गया था।

लुइस एच. हैने के अनुसार–''व्यवसाय से आशय उन मानवीय क्रियाओं से है जो वस्तुओं के क्रय–विक्रय द्वारा धन उत्पन्न तथा प्राप्त करने के लिए की जाती हैं।'' .

सी. एफ. एबट के अनुसार–''बिना लाभ के व्यवसाय नहीं है, ठीक उसी प्रकार जैसे बिना खाण्ड के मुरब्बा''।

लाभ कमाने की भावना का कोई अंत नहीं होता है। लाभ कमाने की धुन में व्यक्ति कभी–कभी अच्छे या बुरे का अन्तर भी भूल जाता है व इतने भयंकर सामाजिक. अपराध भी करने लगता है जिससे कई बार देश का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है। राटि व्यसाय में लाभ की भावना को समाप्त कर दिया जाए तो कोई भी व्यवसाय अधिक समय तक नहीं चल सकता। किन्तु पावसाय का एकमात्र उददेश्य लाभ ही कमाना हो यह भी ठीक नहीं है। इसलिए व्यवसाय में लाभ के तत्व के साथ–साथ सामाजिक कल्याण की भावना भी होनी चाहिए।

उर्विक के अनसार–''मुद्रा के पीछे–पीछे भागना व्यवसाय नहीं है.... व्यवसाय का कार्य है उपभोग के लिए उत्पादन करना न कि मुद्रा के लिए।"

हेनिरी फोर्ड के अनुसार– ''किसी भी व्यापारी का पहला उद्देश्य 'सेवा' होनी चाहिए और दूसरा 'लाभ'।'' इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यवसाय का केवल एक ही उद्देश्य 'लाभ' न होकर सेवा भी होनी चाहिए।

इस संदर्भ में फ्रेड सी. क्राफोर्ड ने लिखा है –

''प्रबन्धक एक त्रिभुज के बीच खड़ा है एक ओर से श्रमिकों ने उसके पैर में रस्सी बांध रखी है तथा दूसरा आर को विनियोक्ता ने बाध रखा है। ऊपर की ओर उपभोक्ताओं ने प्रबन्धक की गर्दन में रस्सी डाल रखी है। इस प्रकार वर्ग प्रबन्धक से अपने हित के लिए अधिक से अधिक सुविधाओं की मांग कर रहा है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रबंध के निम्नलिखित सामाजिक दायित्व हो सकते हैं:

1. समाज व देश के प्रति–प्रबन्ध का यह कर्तव्य है कि वह राष्ट के आर्थिक व औद्योगिक विकास में पूरा–पूरा सहयोग प्रदान करे। सामाजिक न्याय एवं राष्ट्रहित के लिए वित्तीय नैतिक व अन्य क्षेत्रों में सहयोग करना चाहिए। राष्ट्र की सस्कृति, दर्शन तथा समाज में प्रचलित परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए देश की प्राकतिक सम्पत्ति का अनुकूलतम प्रयोग कर न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करना चाहिए।

2. श्रमिको के प्रति दायित्व–कर्मचारियों या श्रमिकों के प्रति प्रबंध का यह दायित्व है कि बेरोजगारी, धुआं व विषेले वातावरण, जल व आवास सबधी कठिनाईयों, गंदगी व अन्य सामाजिक समस्याओं का समाधान करते हुए श्रमिकों को उचित व पयात पारिश्रमिक दे।

 प्रबंध अर्थव्यवस्था का एक सामान्य अंग मात्र ही नहीं बल्कि निर्माता भी है। जिस सीमा तक वह आर्थिक परिस्थितिया कानयात्रत करता है और सतत् प्रयत्नों से उन परिस्थितियों को बदलता है, उस सीमा तक वास्तव में अच्छा प्रबंध करता है। इस दृष्टि स प्रबध वास्तव में एक ऐसा शिक्षक है जो श्रमिक को ईमानदार, परिश्रमी, उदार तथा कशल नागरिक बना सकता है।

3. उपभोक्ताओं के प्रति दायित्व–जनसाधारण के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए प्रबंध को अच्छे किस्म का माल न्यूनतम मूल्य व उचित समय पर उपलब्ध कराना चाहिए। यदि प्रबंध उपभोक्ताओं के हितों का ध्यान रखता है तो वह कभी भी अपने उद्देश्यों में असफल नहीं हो सकते हैं, क्योंकि–

''व्यावसायिक भवन उपभोक्ताओं के लिए है न कि उपभोक्ता व्यवसाय के लिए।'' अतः प्रबंधक को सदैव उपभोक्ताओं की रुचि, मांग, कब, किस वस्तु की और कितनी मात्रा में आवश्यकता होगी, ध्यान में रखना चाहिए।

प्रबंध प्रक्रिया

प्रबन्ध प्रक्रिया को समझने का एक तरीका इसके आधारभूत कार्यों को पहचाना है जो मिलकर इस प्रक्रिया को बनाते हैं। ये कार्य सभी स्तरों पर, उच्च अधिशासी से अधीनस्थ तक प्रबन्धकीय क्रियाओं के आधार हैं।

विभिन्न प्रबन्ध विद्वानों ने विभिन्न नामों से, विविध संख्या में प्रबंध के आधार कार्यों का उल्लेख किया है। इन विद्वानों द्वारा दिए गए महत्वपूर्ण कार्य अथवा प्रक्रिया निम्न हैं:

1. **नियोजन**–यह प्रबन्ध का प्राथमिक एवं सबसे प्रमुख कार्य है जिसमें क्या, क्यों, कब, कैसे, किनके द्वारा आदि के लिए पहले से ही निर्णय लिया जाता है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए प्रबन्धक को अल्प कार्य के लिए पहले से ही कार्यक्रम तैयार करना होता है, उद्देश्य एवं नीतियां निर्धारित करनी होती है तथा विपरीत परिस्थितियों का सामना करने के तरीकों पर भी विचार करना होता है।
2. **संगठन**–संगठन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा संरचना एवं कार्य का वितरण निश्चित किया जाता है। उर्विक के अनुसार, ''संगठन के आशय यह निर्धारित करने से है कि उद्देश्यों का प्राप्त करने के लिए क्या–क्या क्रियाएं करनी आवश्यक हैं तथा इनको ऐसे समूहों से क्रमबद्ध करने से है जिससे कि उन्हें अलग–अलग व्यक्तियों को सौंपा जा सके।
3. **समन्वय**– समन्वय प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य है क्योंकि यह संस्था के उद्देश्यों की उपलब्धि के लिए वैयक्तिक प्रयत्नों में एकरूपता लाता है। समन्वय का आशय अधीनस्थों के प्रयासों का क्रमानुसार संयोजन से होता है जिससे कि उसके संयुक्त प्रयास निर्धारित लक्ष्यों के सामान्य उद्देश्य की ओर अग्रसर हो सकें।
4. **अभिप्रेरणा**– अभिप्रेरणा प्रबन्ध का मानवीय पहलू है। यह प्रबन्ध का वह कार्य है जिसके द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु एक संस्था में कार्यरत व्यक्तियों को स्वेच्छापूर्वक कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस हेतु प्रबन्धक कर्मचारियों को वितीय तथा अवितीय प्रेरणाएं प्रदान करते हैं।
5. **नियंत्रण** – प्रो. थियो हेमन के अनुसार, ''नियंत्रण छान–बीन द्वारा यह मालूम करने की प्रक्रिया है कि कार्य योजना के अनुसार हो रहा है या नहीं, उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में उपर्युक्त प्रगति हो रही हैं या नहीं, और यदि कोई दिखाई दे तो उसको सुधारने के लिए आवश्यक कार्यवाही करना।''
6. **निर्देशन** –प्रबन्ध का मुख्य कार्य निर्देशन है। स्ट्रांग के अनुसार, ''निर्देशन में अधीनस्थों को कार्य के बाद में निर्देश देना, और उन्हें कार्य करने के लिए आदेश देना सम्मिलित है।" इस प्रकार निर्देशन प्रबन्ध का वह कार्य है जो संगठित प्रयासों को प्रारम्भ करता है, प्रबन्धकीय निर्णयों को वास्तविक चोला पहनाता है, और व्यवसाय को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में प्रशस्त करता है।

7. **नियुक्ति**–कून्टज तथा ओ डोनल ने नियुक्ति को प्रबन्ध का प्रथम कार्य माना है। यह प्रबन्ध का एक प्रशासनिक कार्य है जिसमें संगठन की योजनानुसार आवश्यक पदाधिकारियों तथा अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवा मुक्ति आदि कार्य सम्मिलित होते हैं।
8. **सम्प्रेषण** –अन्य शब्दों में, सचनाओं का आदान प्रदान निरन्तर आवश्यक है जो कुशल संचार व्यवस्था पर निर्भर है। यही कारण है कि पीटरसन तथा प्लामैन ने सम्प्रेषण को प्रबन्ध का पृथक कार्य माना है। न्यूमैन तथा समर के अनुसार, ''संदेशवाहन दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य विचारों, तथ्यों तथा भावनाओं का विनिमय है।''
9. **नवाचार**–नवाचार केवल तकनीकी खोज या नवीन एवं सुधरे हए उत्पादों तक ही सीमित नहीं है, अपितु इसके अन्तर्गत किसा भी प्रकार की नवीन कार्य पद्धतियों को सम्मिलित किया जा सकता है जो निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक हो सकती हैं। वास्तव में, नवाचार अपनाने पर भी व्यवसाय समय की गति के साथ टिका रह सकता है।
10. **प्रतिनिधित्व**–आधुनिक प्रबन्ध विद्वान प्रतिनिधित्व को भी प्रबन्ध का एक कार्य मानते हैं। इनका मत हैं कि प्रथम अस्तित्वहोने के कारण एक ओर प्रबंधक का दायित्व स्वामियों के प्रति होता है, तो दूसरी ओर उसे बाह्य पक्षों के समक्ष संस्था को प्रतिनिधित्व करना होता है। वर्तमान में यह प्रबन्धक का प्राथमिक कर्तव्य माना जाने लगा है।

यद्यपि उपरोक्त सभी कार्य एक दूसरे से निकटतम रूप से अन्तर्गत संबंधित हैं, फिर भी प्रबन्धक के समग्र कार्य के संदर्भ में प्रत्येक कार्य को पृथक प्रक्रिया के रूप में जानना तथा उन्हें विस्तृत रूप में परिभाषित करना उपयोगी होता है।

प्रबन्ध बनाम प्रशासन

आदिकाल में विद्वानों द्वारा इनका समान अर्थों में उपयोग किया जाता रहा है। किन्तु औद्योगिक क्षेत्र में नवीन प्रवृत्तियों के विकास ने इन दोनों शब्दों को एक दूसरे से पृथक माना है। इसके उपरान्त तो विभिन्न लेखकों ने दोनों शब्दों के अर्थों की इतनी परिभाषाएं दी हैं कि सामान्य व्यक्ति तो सही अर्थ की तलाश में खो बैठता है। विकसित देशों में तो इनमें से एक ही शब्द प्रचलन में हैं लेकिन भारत जैसे विकासशील देश में आज भी ये दोनों शब्द प्रचलन में दिखाई पड़ते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रबन्ध का सम्बन्ध तो उद्योग के संचालन से है जबकि प्रशासन का संबंध सरकार के संचालन से है।

हेनरी फेयोल, जॉर्ज आर. टैरी, कून्टस, ओ'डोनेल तथा पीटर ड्रकर आदि विद्वानों ने 'प्रबन्ध' तथा 'प्रशासन' का समान अर्थों में उपयोग किया है। कून्टज, ओ'डोनेल एवं व्हीरिच के अनुसार, ''एक उपक्रम के सभी स्तरों पर प्रबन्ध आवश्यक है। जब समस्यायें किसी भी स्तर पर उत्पन्न हो सकती हैं तो प्रभावशाली प्रबन्ध की यह मांग उचित है कि सभी व्यक्ति जो दूसरों के कार्यों के लिए उत्तरदायी हैं, सभी स्तरों पर अपने को प्रबन्धक समझें... इसलिए प्रबन्धकों और प्रशासकों में कोई अन्तर नहीं समझा जाना चाहिए।''

उपर्यक्त विचारों के अनुसार 'प्रबन्ध' तथा 'प्रशासन' एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस तरह से नीतियों के निर्धारण एवं उनके कियान्वयन को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है ठीक उसी प्रकार 'प्रबन्ध' एवम् 'प्रशासन' को भी एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। दोनों में अन्तर केवल उपयोग का है जो कि पीटर ड्रकर की इस विचारधारा से स्पष्ट है कि कोई ये चाहे कि वह निजी क्षेत्र में हो और चाहे सरकारी क्षेत्र में, प्रबन्ध का उपयोग उन सभी संस्थाओं में किया जायेगा जो कि जो कि आर्थिक क्रियाओं के सम्पादन में संलग्न हैं, और प्रशासन का उपयोग उन संस्थाओं में किया जा सकेगा जो कि अनार्थिक क्रियाओं के सम्पादन में संलग्न हैं।

यहां पर यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि विस्तृत दृष्टिकोण में उपर्युक्त अन्तर भी उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि सभी जाने आर्थिक हो अथवा अनार्थिक, निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपलब्ध साधनों के प्रभावशाली उपयोग की बात उनमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि दोनों शब्द

समानार्थक हैं भले ही भिन्न व्यवहार में इनका उपयोग भिन्न–भिन्न ही क्यों न हो। यहां संक्षिप्त रूप में कुछ मख्य तथ्यों के माध्यम से प्रशासन व प्रबन्ध अन्तर को पुनः स्पष्ट किया गया है।

प्रबन्ध एवं प्रशासन में अन्तर

अन्तर का आधार	प्रबन्ध	प्रशासन
1. निर्णायात्मक और क्रियात्मक	1. यह व्यवसाय का क्रियात्मक कार्य है।	1. यह व्यवसाय का निर्णयात्मक कार्य है।
2. पेशेवर और स्वामी	2. प्रबन्ध प्रायः पेशवर प्रबन्धक के रूप में नियुक्त किये जाते हैं।	2. प्रशासन अधिकारी या तो स्वामी होता है या उनके प्रतिनिधि होते हैं।
3. प्रबन्ध स्तर	3. प्रबन्ध का संबंध प्रायः मध्यस्तरीय तथा निम्न स्तरीय प्रबन्धकों से रहता है।	3. इसका संबंध प्रायः उच्च प्रबन्धकों से माना जाता है।
4. परिभाषा	4. व्यावसायिक संस्थाओं में नियोजन, निर्णयन निर्देशन व नियंत्रण के कार्यों का प्रबन्ध कहा जाता है।	4. सरकारी तथा अन्य गैर व्यवसायिक संस्थाओं में निर्णयन, पर्यवेक्षण, शासन तथा नियंत्रण की प्रक्रिया को प्रशासन कहते हैं।
5. लक्ष्य निर्धारण	5. प्रबन्ध, प्रशासन द्वारा निर्धारित उद्‌देश्यों को पूरा करने का प्रयास करता है लक्ष्य निर्धारण से प्रबन्ध का प्रत्यक्ष संबंध होता है।	5. प्रशासन का मुख्य कार्य संस्था के उद्‌देश्यों व नीतियों का निर्धारण करना होता है।
6. नीतियों को लागू करना	6. प्रबन्ध का मुख्य कार्य प्रशासन द्वारा सीमाओं के अन्तर्गत नीतियों को क्रियान्वित करना, निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए संगठन का प्रयोग करना है।	6. प्रशासन की नीतियों से क्रियान्वयन को कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता।
7. स्वामी एवं सेवक का संबंध	7. प्रबन्ध, प्रशासन का सेवक है जो उसके आदेशानुसार कार्य करता है तथा अपनी सेवाओं के बदले लाभ का कुछ प्रतिशत प्राप्त करता है।	7. प्रशासन, वास्तव में उद्योग का स्वामी है जो उसे भूमि, श्रम, पूंजी साहस व संगठन प्रदान करता है और इन सेवाओं के बदले लाभ प्राप्त करता है।
8. समन्वय एवं पूर्ण नियंत्रण	8. प्रबन्ध, प्रशासन द्वारा निर्धारित विशिष्ठ लक्ष्यों की पूर्ति के लिए संगठन का प्रयोग करता है।	8. प्रशासन, वित्त, उत्पादन व वितरण में समन्वय की स्थापना करता है, संगठनात्मक कलेवर की रचना करता है एवं संस्था पर सम्पूर्ण नियंत्रण रखता है।
9. प्रतिफल	9. प्रबन्धकों को अपनी सेवा के बदले वेतन या लाभ का कुछ भाग कमीशन के रूप में प्राप्त होता है।	9. प्रशासन अर्थात् स्वामियों को प्रतिफल स्वरूप लाभ प्राप्त होता है।
10. कुछ उदाहरण	10. प्रबन्ध जैसे जनरल मैनेजर, प्रबन्धक संचालक वित्त प्रबन्धक आदि।	10. प्रशासन जैसे जिलाधीश, कुल सचिव, मंत्री आयकर व बिक्री कर अधिकारी आदि।

प्रबन्ध बनाम संगठन

प्रबन्ध एवं प्रशासन की भांति प्रबन्ध तथा संगठन को विभिन्न विद्वानों ने अलग–अलग अर्थों में उपयोग किया है। यद्यपि प्रबन्ध तथा संगठन के मध्य विवाद उतना गहरा नहीं हैं जितना कि प्रबन्ध एवं प्रशासन का।

सामान्यतया प्रबंध का आशय नियोजन, संगठन, नियुक्तियां, निर्देशन, समन्वय एवं नियंत्रण की सतत प्रक्रिया से है जो उपक्रम के पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उत्पादन के अनुकूलतम उपयोग को संभव बनाती हैं तथा मधुर मानवीय संबंधों रात संगठन सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओं का निर्धारण करता है, इन क्रियाओं को कार्यरत कर्मचारियों में इस प्रकार विभाजित करता है ताकि उनके मध्य मतभेद न रहे तथा कार्य करने का उचित वातावरण उत्पन्न करता है। इसलिए ई. एफ. एल. ब्रेच के अनुसार, "संगठन प्रबन्ध का वह भाग है। जो उपक्रम में कार्यरत प्रबन्धकीय, पर्यवेक्षकीय तथा विशेषज्ञों को विभाजित करने तथा कर्मचारियों के मध्य औपचारिक संबंधों के निर्धारण करने से संबंधित है''। उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि संगठन की अपेक्षा प्रबन्ध का क्षेत्र विशाल है। संगठन तो प्रबन्ध का एक कार्य है। निम्न बिन्दुओं की मदद से इन दोनों का अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है।

प्रबन्ध एवं संगठन में अन्तर

अन्तर का आधार	प्रबन्ध	संगठन
1. कार्य की प्रकृति	प्रबन्ध के अन्तर्गत नियोजन, संगठन, नियुक्तों अग्रणीयता, नियंत्रण आदि कार्यो को सम्मिलित किया जाता है।	संगठन के अन्तर्गत विभिन्न– विभिन्न व्यक्तियों में कार्य का बंटवारा करना, कार्य निष्पादन के लिए अधिकार, दायित्व निश्चित करना आदि क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।
2. क्षेत्र	संगठन प्रबन्ध के कार्य क्षेत्र का एक मात्र अंग है अतः प्रबन्ध का क्षेत्र विस्तृत है।	संगठन का कार्य क्षेत्र संकुचित है। क्योंकि यह प्रबन्ध का अन्तर्गत आता है।
3. नीतियां	प्रबन्ध नीतियों को लागू करता है।	यह नीतियों को लागे करने के लिए मानव समूह का निर्माण करता है।
4. प्रशासन से संबंध	यह प्रशासन के अन्तर्गत कार्य करता है।	संगठन दोनों में समन्वय स्थापित करने का कार्य करता है।
5. व्यवसाय में	इसका व्यवसाय में महत्व उतना है जितना की मानव शरीर में मस्तिष्क का।	इसका व्यवसाय में महत्व मानव शरीर में तंत्रिकाओं के समान है।
6. परस्पर संबंध	प्रबन्ध प्रशासन द्वारा निर्धारित सीमाओं में रह कार्य करता है और किसी तरह के परस्पर संबंधों की व्याख्या नहीं करता।	संगठन प्रशान द्वारा निर्धाारित अधिकार सीमाओं के अन्तर्गत व्यक्तियों तथा विभागों के मध य परस्पर संबंधों की व्याख्या करता है।
7. दायित्व	इसका दायित्व पूरे व्यवसाय को स्वच्छ व्याख्या प्रदान करता है।	संगठन का दायित्व विभिन्न स्तरों के मध्य, समन्वय स्थापित करना है।

प्रबन्ध का महत्व

प्राचीन काल में उत्पादन का कार्य छोटे पैमाने पर किया जाता था और उत्पादन प्रणाली सरल थी। अतः प्रबन्ध का कोई विशेष महत्त्व नहीं था। लेकिन धीरे–धीरे उत्पादन का कार्य बड़े पैमाने पर किया जाने लगा और कार्य में अनेक जटिलतायें आने लगी। इन जटिलताओं का सामना करने के लिए प्रबन्ध विशेषज्ञों की आवश्यकता हुई और प्रबन्ध का महत्व दिन दुगनी रात चौगुनी दर से बढ़ता गया।

जार्न आर. टेरी के अनुसार, ''कोई भी उपक्रम बिना प्रभावी प्रबन्ध के अधिक समय तक सफल नहीं हो सकता। बहुत कुछ हद तक अनेक आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक लक्ष्यों की प्राप्ति योग्य प्रबन्धकों पर निर्भर करती है।''

अमेरिका के भतपर्व राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने ठीक ही कहा है कि, ''एक सरकार बिना अच्छे प्रबन्ध के एक मिट्टी से बने हुए मकान के समान है।''

अतः हम कह सकते हैं कि प्रबन्ध का सभी संगठनों में अत्यन्त महत्व है। प्रबन्ध के प्रमुख महत्व निम्नलिखित हैंः–

1. **सीमित साधनों का अनुकूलतम उपयोग**–प्रबंध निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उत्पादन के विभिन्न साधनों में प्रभावपूर्ण समन्वय स्थापित करता है और कम से कम प्रयासों द्वारा अधिक से अधिक परिणामों की प्राप्ति संभव बनाता है। अतः उर्विक और ब्रेच ने ठीक ही कहा है कि, ''कोई भी विचारधारा, कोई भी वाद, कोई भी राजनीतिक सिद्धान्त उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक साधनों का अनुकूलतम उपयोग नहीं करा सकता। यह तो एक अच्छे प्रबंधन द्वारा ही संभव है और इस अनुकुलतम उपयोग से ही व्यक्तियों का जीवन–स्तर ऊंचा उठ सकता है, व्यक्तियों का जीवन आरामदायक हो सकता है और व्यक्ति अनेक सुविधाएं प्राप्त कर सकते हैं।''

2. **बढ़ती हुई प्रतियोगिता के लिए सहायक**–आज व्यवसाय का आकार स्थानीय न रहकर राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारणा कर चुका है। आज के निर्माता को न केवल स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उसे तीव्र प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में केवल वही संस्था बाजार में टिक सकती है जो अपने ग्राहकों को कम से कम मूल्य पर, अच्छी से अच्छी क्वालिटी का माल उपलब्ध करा सके।एक कुशल प्रबन्ध ही अपनी कुशलता एवं चातुर्य से यह कार्य कर सकता है।

3. **श्रम और पूंजी में अच्छे संबंध**–यदि श्रम व पूंजी में संबंध अच्छे हैं तो औद्योगिक शांति होगी, जिससे उत्पादन अधिकहोगा, साधनों का सर्वोत्तम उपयोग होगा, लाभ भी अधिक होगा तथा कर्मचारियों का कल्याण भी अधिक होगा। आज हड़ताल, तालाबन्दी एक साधारण सी बात है इनके बड़े दूरगामी परिणाम होते हैं। एक सजग प्रबंध ही इनके प्रभाव से बचा सकता है।

4. **कर्मचारियों की कुशलता में वृद्धि**–अच्छा प्रबंध वही है जो अपने कर्मचारियों की दक्षता को बढ़ाने की सुविधा प्रदान करते हैं यहां कारखाने में नई से नई मशीनों का चलन उत्पादन तकनीक का नई से नई विधि द्वारा होना तथा ऐसा होने से कर्मचारियों की कुशलता बढ़ जायेगी और दूसरे कारखाने में इस योग्यता वृद्धि का लाभ उठा सकता है।

5. **पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति**–प्रत्येक उपक्रम की स्थापना किन्हीं लक्ष्यों जैसे आर्थिक, सामाजिक आदि की प्राप्ति के लिए की जाती है और लक्ष्यों की प्राप्ति के आधार पर व्यवसाय की क्षमता का निर्धारण होता है। उपक्रम का प्रबन्ध यदि कुशल तथा योग्य है तो अपनी विशिष्ट योग्यता, दूरदर्शिता तथा कल्पना के आधार पर इस प्रकार के नियोजन, संगठन, उत्प्रेरण, समन्वय तथा नियंत्रण की विधियों का निर्माण कर सकेगा, जिससे कि सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में लक्ष्यों की प्राप्ति सरलता से हो सके।

6. नीतियों का निर्धारण करने के लिए किसी संस्था में उद्देश्यों का निर्धारण करना जितना महत्वपूर्ण होता है उससे कहीं अधिक महत्व इनकी प्राप्ति हेतु सुदृढ़ नीतियों का निर्धारण करना होता है। नीतियां, निर्धारित

उद्देश्यों की पूर्ति का महत्वपूर्ण साधन होती हैं। अतः संस्था की नीतियों के निर्धारण के लिए भी कुशल प्रबन्धकों की आवश्यकता होती है। प्रबन्धकों द्वारा प्रारम्भ में संस्था की आधारभूत नीतियों का निर्धारण किया जाता है और बाद में आवश्यकतानुसार विभिन्न नीतियों का निर्धारण किया जाता है।

7. वैज्ञानिक एवं तकनीकी परिवर्तनों को लागू करने के लिए–दिन–प्रतिदिन हो रहे वैज्ञानिक चमत्कारों ने औद्योगिक क्षेत्र में यह समस्या उत्पन्न कर दी है कि इन आविष्कारों, तकनीकों, एवं विधियों को किस भांति औद्योगिक तथा आर्थिक विकास के लिए उपयोग किया जाये। वैज्ञानिक एवं मानवीय संबंधों के प्रबंध ने तो यह समस्या और जटिल बना दी है। यदि कहीं इन समस्याओं का निदान है तो वह है कुशल प्रबन्ध में । क्योंकि प्रबन्ध ही इन समस्त परिवर्तनों को इस प्रकार संयोजित करने की क्षमता रखता है, जिससे इन तकनीकों, विधियों एवं आविष्कारों का उपयोग कर संस्था के पूर्व निर्धारित लक्ष्यबिना किसी कठिनाई के पूर्ण किये जा सकें।

8. **सामाजिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति**–सामाजिक व्यवस्था का एक अंग होने के कारण प्रबंध के कुछ सामाजिक उत्तरदायित्व भी हैं। भारत जैसे समाजवादी प्रजातंत्रीय देश में प्रबंध की यह भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। देश के उपभोक्ता, विनियोजक, सरकार एवं कर्मचारी, प्रबन्धक से यह आशा करते हैं कि वह उनकी भावनाओं के अनुकूल कार्य करें। कशल प्रबन्धक ही एक ऐसी प्रक्रिया का निर्धारण करने में सक्षम हैं, जिससे प्रबन्धकीय कार्यों का सम्पादन इस भांति किया जाये जिससे कि समाज के किसी भी वर्ग की महत्वाकांक्षाओं को ठेस न लगे।

9. **आय में वृद्धि का लक्ष्य पूरा करना**–किसी भी संगठन के लाभों में वृद्धि करने का मूल मंत्र है–'विक्रय में वृद्धि अथवा लागतों में कमी।' विक्रय में वृद्धि कुछ सीमा तक संगठन के नियंत्रण से बाहर कही जा सकती है, लेकिन लागतों में कमी करना परी तरहे से संगठन का आंतरिक मामला है और इन्हें कम किया जा सकता है। अच्छी क्वालिटी वाला कच्चामाल, आधुनिक मशीनें, प्रशिक्षित कर्मचारियों आदि की सहायता से लागतों में कमी जा सकती है। प्रबंध द्वारा ही ना में कमी करके संस्था की आय को बढ़ाया जा सकता है।

10. **देश की समृद्धि के लिए**–यदि यह कहा जाए कि राष्ट्र का चहंमुखी विकास प्रबंधकों द्वारा ही संभव है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। विश्व के अनेक राष्ट्रों ने अल्पावधि में जो प्रगति की है, वह कुशल प्रबंध द्वारा ही संभव हुई है। जब का प्रबंधक न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन कराते हैं, रोजगार के अवसर उपलब्ध कराते हैं, उपलब्ध साधनों का अधिकता सदपयोग कर गरीबी को दर करते हैं तो निश्चय ही देश में समृद्धि लाई जा सकता है।

प्रबन्ध की भूमिकाएं

मिजबर्ग ने इस संबंध में गहन अध्ययन किया है। मिजबर्ग के अपने शोध कार्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला की प्रबन्धक के व्यवसाय में एक प्रबन्धक के अलावा अन्य भूमिकाओं के रूप में कार्य करना पड़ता है। उन्होंने प्रबंध की 10 भूमिकाओं का वर्णन किया। जिनका अध्ययन तीन श्रेणियों में किया जा सकता हैः

मिजबर्ग ने यह भी माना है कि इन भूमिकाओं का विशेष क्रम नहीं है। मिजबर्ग द्वारा दी गई प्रबन्ध भूमिकाओं को अग्र चित्र द्वारा समझा जा सकता है।

प्रबन्धकीय भूमिका

अंतव्यक्तिगत भूमिकाएं	सूचनात्मक भूमिकाएं	निर्णयात्मक भूमिकाएं
1. मुख्य व्यक्ति की भूमिका।	1. मॉनीटर की भूमिका	1. साहसी की भूमिका
2. नेता की भूमिका	2. विस्तार की भूमिका	2. बाधा निरोधक की भूमिका
3. संपर्क अधिकारी	3. अधिवक्ता की भूमिका	3. साधन वितरक की भूमिका

अ) अन्तर्व्यक्तिगत भूमिकाएं

प्रबन्ध के अन्तर्गत एक व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्तियों के माध्यम से संगठन के उद्देश्यों को पूरा किया जाता है। इसलिए इसे अन्तर्व्यक्तिगत क्रिया कहा जाता है। अन्य शब्दों में प्रबन्ध क्रिया सार्थक बनाने के लिए एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों से संबंध स्थापित जरूरी होना चाहिए है। इस संबंध में एक प्रबन्धक निम्नलिखित मुख्य भूमिकाएं अदा करता है:

1. संगठन में प्रबंधक एक मुख्य व्यक्ति के रूप में होता है।
2. एक नेता की भूमिका में प्रबन्धक अपने अधीनस्थों का मार्गदर्शन करता है वह उन्हें यह बताता है कि किस विधि से कम से कम समय में काम किया जा सकता है।
3. संगठन में प्रबंधक एक सम्पर्क अधिकारी के रूप में भी कार्य करता है।

(ब) सूचनात्मक भूमिकाएं

प्रबन्धक की यह भूमिका संदेश वाहन से संबंधित है। प्रबन्धक अपने बॉस तथा अधीनस्थों के साथ आवश्यक सूचनाओं के साथ आवश्यक सूचनाओं का आदान–प्रदान करता है, अपने अधीनस्थो को वह आदेश व निर्देश देता है, उससे सुझाव शिकायत, आदि प्राप्त करता है। इसी प्रकार वह अपने बॉस से आदेश व निर्देश प्राप्त करता है और अपने सुझाव, शिकायतों, आदि को उसके पास भेजता है। मिजबर्ग के निम्नलिखित सूचनात्मक भूमिकाओं का वर्णन किया है:

1. एक मॉनीटर की भूमिका में प्रबंधक संगठन के आंतरिक व बाहरी वातावरण पर निगाह रखता है वातावरण का अभिप्रायसंगठन के निर्णयों को प्रभावित करने वाले आन्तरिक व बाह्य तत्वों से है।
2. एक विस्तार की भूमिका में प्रबंधक अपने अधीनस्थों को उन सूचनाओं से अवगत करवाता है जो उनकी पहंच में नहीं है।
3. अधिवक्ता की भूमिका में प्रबन्धक संगठन के बाहर के लोगों के साथ संगठन के प्रतिनिधि के रूप में बातचीत करता है।

प्रबन्ध का अर्थ

स) निर्णयात्मक भूमिका

प्रबंधक की इस भूमिका का संबंध निर्णय लेने से है। प्रबन्ध व निर्णय को घटा दिया जाए तो शेष कुछ बचता। इसका अभिप्राय यह है कि प्रबन्धक को निर्णय ही तो लेने होते हैं यदि वह निर्णय नहीं लेता तो फिर उसका

कोई औचित्य शेष नहीं रह जाता अतः प्रबन्धक को अनेकं दैनिक व अन्य महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते है। प्रबन्धक की निर्णयात्मक भूमिकाएं निम्नलिखित हैंः

1. साधन वितरक की भूमिका–प्रबन्धक का यह कर्तव्य होता है कि वह सीमित साधनों का अधिकतम उपयोग करे । ऐसा तभी संभव है यदि साधनों का उचित वितरण किया जाए अर्थात जिस स्थान पर जितने साधनों की आवश्यकता हो वहां उतने ही दिए जाने चाहिए प्रबन्धक इस भूमिका के अन्तर्गत साधनों के उचित बटवारे की व्यवस्था करता है।

2. सादेबाज की भूमिका–इस भूमिका के अन्तर्गत प्रबन्धक अनेक आन्तरिक एवं बाह्य लोगों से विभिन्न मुद्दों पर सौदेबाजी करता है। जैसे–हड़ताल के मुद्दे को लेकर श्रमिक संघर के प्रधान से सौदेबाजी करना अर्थात् श्रमिक संघ के प्रधान के साथ यह निश्चित करना कि उन्हें क्या सुविधा प्रदान करने से हड़ताल समाप्त हो सकती है।

प्रबन्ध का क्रियात्मक क्षेत्र

प्रबन्ध के कार्यात्मक क्षेत्रों का अभिप्राय उन सभी क्रियाओं के योग से है जो किसी संगठन में उद्देश्य प्राप्ति के लिए की जाती हैं ये क्रियाएं अनेक प्रकार की हो सकती हैं। एक मत के अनुसार प्रबन्ध के क्रियात्मक क्षेत्र में निम्न का समावेश किया जाता है लेकिन सेविवर्गीय वित्त, विपणन व उत्पादन क्रिया का विशेष महत्व हैः

1. उत्पादन प्रबन्ध–प्रबन्ध के क्षेत्र के जिन क्रिया–कलापों को सम्मिलित किया जाता है। उनमें उत्पादन प्रबन्ध सर्वाधिकमहत्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत उत्पादन मात्रा का निर्धारण, कार्य विश्लेषण, क्रम सूचीयन, उत्पादन–नियोजन, किस्म नियन्त्रण, समय एवं विधि अध्ययन, उत्पादन क्रम का निश्चय, अभियान्त्रिक व्यवस्था, माल का स्टॉक करना एवं उस पर नियन्त्रक तथा वस्तुओं के उठाने एवं रखने के सम्बन्ध में व्यवस्था करना आदि आते हैं। इस प्रकार उत्पादन प्रबन्धक इन सभी क्रियाओं का सम्पादन करता है। यह विभाग उत्पादन प्रबन्धक देख रेख में कार्य करता है।
2. कर्मचारी प्रबन्ध–उत्पादन के सभी साधनों (मानव, माल, मशीन, धन) को दो भागों में विभिक्त किया जा सकता है सक्रिय एवं निष्क्रिय–सक्रिय साधन में मानव को सम्मिलित किया जाता है। जबकि माल, मशीन व धन उत्पादन के निष्क्रिय साधन हैं एक संस्था में निष्क्रिय साधन अर्थात माल मशीन एवं धन कितनी ही प्रचुर मात्र में क्यों न हो ये उस समय तक बेकार हैं जब तक इनका उचित उपयोग न किया जाए। इनका उचित उपयोग उत्पादन के सक्रिय साधन अर्थात मानव द्वारा ही किया जा सकता है अब आवश्यकता इस बात की है कि ऐसा मानवीय साधन उपलब्ध किया जाए जो कि पूर्णतः कुशल हो। कुशल मानवीय साधन उपलब्ध करने का काम कर्मचारी प्रबन्ध का हैं। इस काम को करने के लिए बड़ी सख्याओं में कर्मचारी सेविवर्गीय विभाग स्थापित किया जाता है। यह विभाग कर्मचारी प्रबन्धक की देख–रेख में काम करता है।
3. वित्तीय प्रबन्ध–एक व्यवसायिक उपक्रम का मुख्य उद्देश्य वस्तुओं व सेवाओं के विक्रय द्वारा अपने स्वामियों के लिए लाभ अर्जित करना होता है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए धन की आवश्यकता होती है। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि धन व्यवसाय की आत्मा होती है। धन के महत्व को ध्यान में रखने हुए इसका उचित प्रबन्ध अति आवश्यक है। वित्तीय प्रबन्ध क्रिया का वह भाग है जिसका सम्बंध एक संस्था की वित्तीय गतिविधियों के कुशल नियोजन एवं नियन्त्रण से है प्रत्येक व्यवसाय में वित्त के सम्बंध में मुख्यतः तीन प्रश्न उत्पन्न होते हैं। 1. विभिन्न व्यावसायिक गतिविधियों के लिए कितने वित की आवश्यकता होगी? 2. इसे विभिन्न साधनों से कितनी–कितनी मात्रा में प्राप्त किया जायेगा तथा 3. विभिन्न व्यवसायिक गतिविधियों से प्राप्त लाभ को किस प्रकार विभाजित किया जाएगा? इन सभी प्रश्नों का उत्तर वित्तीय प्रबन्ध में निहीत हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रबन्ध के अन्तर्गत सर्वप्रथम, वित की

आवश्यकता का अनुमान लगाया जाता है। इसके बाद इसे करने के लिए विभिन्न साधनों एवं उनकी मात्रा को निश्चित किया जाता है और अंत लाभ के विभाजन की व्यवस्था की जाती है। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रबन्ध के अन्तर्गत एक व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति इस ढंग से की जाती है ताकि व्यवसाय के उद्देश्यों को आसानी से पूरा किया जा सके।

4. कार्यालय प्रबन्ध–यह सर्वविदित हैं कि व्यवसाय चाहे छोटे पैमाने पर किया जाय अथवा बड़े पैमाने पर प्रत्येक व्यवसायी अपने यहां एक कार्यालय की स्थापना करता है। कार्यालय, संगठन का अंग है जो संचार और अभिलेखों के माध्यम से व्यवसायिक क्रियाओं के नियोजन, नियन्त्रण और समन्वय में सहायता करता है। इस प्रकार व्यवसाय में कार्यालय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कार्यालय प्रबन्धक के अन्तर्गत विभिन्न सूचनाएं एकत्रित करना, सूचनाओं को सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा अपनी सूचनाओं का रिकार्ड रखना, सूचना को गुप्त रखना, अभिलेख व्यवस्था करना, आवश्यक कार्यालय–फर्नीचर, उपकरण, यन्त्रों आदि की व्याख्या करना, प्रबन्धकीय कार्यों के सम्पादन की योजना बनाना तथा कार्यालय की आर. व्यवस्था करना आदि सम्मिलित होते हैं।

5. विपणन प्रबन्ध–विपणन प्रबन्ध का अभिप्राय विपणन के संबंध में सभी प्रबन्धकीय क्रियाओं को पूरा करने है। विपणन के अन्तर्गत उपभोक्ता की आवश्यकताओं का पता लगाने से लेकर इन्हें सन्तुष्टि करने तक की सभी क्रियाएं सम्मिलित की जाती है। दूसरी ओर प्रबन्ध के अन्तर्गत नियोजन, संगठन, नियुक्तियां, निर्देशन एवं नियंत्रण को लिया जाता है। सभी प्रबन्धकीय क्रियाओं का विपणन ही विपणन प्रबन्ध कहलाता है। अतः विपणन प्रबन्ध में निम्नलिखित मुख्य क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।

   1. विपणन क्रियाओं का नियोजन करना।
   2. विपणन क्रियाओं का संगठन करना।
   3. विपणन कियाओं को परा करने के लिए नियक्तियां करना।
   4. विपणन क्रियाओं का निर्देशन।
   5. विपणन क्रियाओं को नियंत्रित करना।

प्रबन्ध का विकास–प्रबन्ध का प्रचलन उतना ही पुराना है जितनी की मानव सभ्यता। जैसे–जैसे मानव सभ्यता का विकास हुआ वह समूहों में रहने लगा। समूहों को सुचारू रूप से चलने के लिए प्रबन्ध की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। उस समय से लेकर आज तक प्रबन्ध के रूप में बहुत परिवर्तन आ चुका है। समय–समय पर अनेक प्रबन्ध विशेषज्ञों ने अपने प्रयोगों एवं अनुभव के आधार पर प्रबन्ध के बारे में अलग–अलग विचार व्यक्त किये हैं। प्रबन्ध के बारे में नये–नये विचार प्रस्तुत किए जाते रहे तथा प्रबन्ध विचारधारा का विकास होता रहा। प्रबन्ध विचारधारा के विकास के विभिन्न चरणों को निम्न चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है।

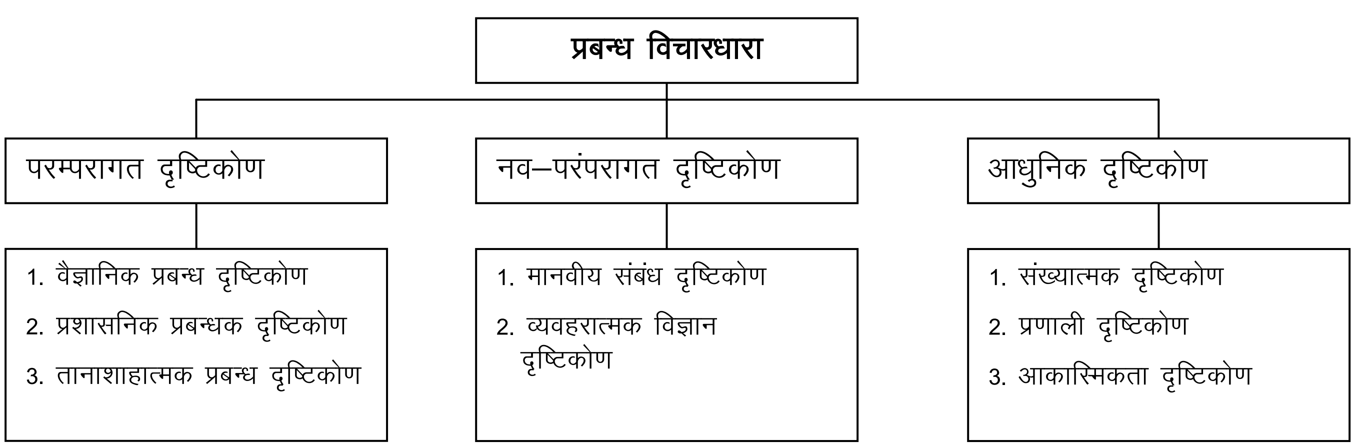

परम्परागत दृष्टिकोण

प्रबन्ध के परम्परागत दृष्टिकोण का विकास 20वीं सदी के प्रारम्भ में हुआ इस दृष्टिकोण की यह मान्यता है कि मानव उत्पादन का निष्क्रिय संसाधन है उसे नियंत्रित किया जाना आवश्यक है व कर्मचारी आर्थिक प्रेरणाओं से अभिप्रेरित होते हैं। इस दृष्टिकोण को भी आगे तीन भागों में बाटा जा सकता है:–

1. वैज्ञानिक प्रबंध।
2. तानाशाहात्मक प्रबन्धक
3. प्रशासनिक प्रबन्धक

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध

व्यंक्तिगत परिचय–वैज्ञानिक प्रबन्ध के जनक टेलर का जन्म पेन्सलवेनिया के जर्मनटाउन नामक स्थान पर सन् 1856 में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने फ्रांस तथा जर्मनी के स्कूलों में ग्रहण की। सन् 1872 में टेलर ने हारवर्ड कालेज में प्रवेश परिक्षा की तैयारी के लिए फिलिप एक्सीटर अकडैमी में प्रवेश लिया। यद्यपि उन्होंने यह परिक्षा आनर्स सहित पास की लेकिन अधिक परिश्रम के कारण उनकी आंखें कमजोर हो गई और इस कारण वे अपनी पढाई आगे जारी नहीं रख पाये 18 वर्ष की उम्र में सन् 1874 में टेलर ने सांचा बनाने तथा मिस्त्री का कार्य सीखने हेतु फिलोडेलनिया स्थित एक पम्प उत्पादन करने वाली छोटी कम्पनी में कार्य प्रारम्भ कर लिया।

उन दिनों बेरोजगारी अधिक होने के कारण सन 1878 में टेलर को फिलोडेलफिया स्थित मिडवेल स्टील कम्पनी में एक श्रमिक के रूप में जीवन प्रारम्भ करना पड़ा। कुछ ही समय बाद उन्हें टोली नायक बनाया गया। टोली नायक से फोरमैन, ड्राफ्ट मैन तथा अन्ततः उन्हें कम्पनी का मुख्य अभियन्ता नियुक्त किया गया है। उद्योग में अपनी प्रगति को ध्यान में रखकर उन्होंने पत्राचार अध्ययन द्वारा एम. ई. डिग्री की तैयारी की तथा स्टीवेन्स इन्स्ट्रीटयूट से डिग्री भी प्राप्त कर ली। इस कम्पनी में 20 वर्ष तक कार्य करने के बाद सन् 1898 में उन्होंने बेथलहेन स्टील कम्पनी में कार्य प्रारम्भ किया, जहां पर उन्हें एक बड़ी मशीन शॉप के उत्पादन वृद्धि का कार्य सौपा गया क्योंकि टेलर अपने विचारों को कम्पनी में लागू करना चाहते थे जिसका कि वहां के प्रबंधकों ने विरोध किया, परिणामस्वरूप सन् 1901 में उन्होंने इस कार्य को छोड दिया और जीवन के 14 साल उन्होंने अधिकांशत लेखन कार्य करने, सलाहकार के रूप में कार्य करने तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध के विचारों को विकसित करने में व्यतीत किये।

वैज्ञानिक प्रबन्ध का अर्थ–वैज्ञानिक प्रबन्ध की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं

1. **डब्ल्यू. एफ. टेलर** के अनुसार, "यह जानने की कला कि तुम व्यक्तियों से क्या कराना चाहते हों, तथा यह देखना कि वे सबसे उचित व सस्ते ढंग से कार्य करते हैं प्रबन्ध कहलाता है।''
2. **जोन्स** के अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्ध प्रशासन सम्बन्धी नियमों का समूह है ताकि संगठन में उत्पादन का नियंत्रण व समन्वयनवीन अनुशासन से किया जा सके।''
3. **डायमर** के अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्ध से आशय प्रबन्ध के क्षेत्र में दशाओं, पद्धतियों, विधियों सम्बन्धों व परिमाणों से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करना व उनको समायोजित करके उपयोग करने के लिए उनको संगठित सिद्धान्तों के रूप में विकसित करना।''

वैज्ञानिक प्रबन्ध की विशेषताएं

1. **निश्चित लक्ष्य**–प्रत्येक संख्या को अपनी क्रियाओं के लक्ष्य निश्चित करने होते हैं। उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिएप्रबन्धकीय विधियों की सहायता ली जाती है।
2. **निश्चित योजना**–संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक निश्चित योजना बनानी होती है। संस्था के सभी कार्यइसी योजना के अनुसार पूरे किये जाते है।

3. **वैज्ञानिक विश्लेषण एवं प्रयोग**–प्रत्येक कार्य को आरंभ करने से पूर्व उस कार्य के प्रत्येक भाग का वैज्ञानिक विश्लेषणएवं प्रयोग करके यह देख लेना चाहिए कि कौन सा विकल्प सबसे अच्छा होगा।
4. **नियमों का समूह**–वैज्ञानिक प्रबंध को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रत्येक संस्था को अपने कुछ नियम बनाने पड़ते हैं। इन नियमों का प्रयोग किसी एक व्यक्ति पर ही नहीं करना चाहिए वरन् व्यक्तियों के समूह पर करके ही ठीक निष्कर्ष निकालने चाहिए। ऐसा करने से वैज्ञानिक प्रबन्ध का सही लाभ प्राप्त होगा।
5. **दृढ़ता**–जो नियम समूहों की सहायता से बने हैं उनका पालन करते समय ढील नहीं देनी चाहिए, और न ही समय–समयपर उप–नियमों में परिवर्तन करना चाहिए।
6. **समय अध्ययन**–आज के वैज्ञानिक युग में व्यापार के क्षेत्र में परिवर्तन होते रहते हैं परिवर्तन में नयी–नयी तकनीक प्रयोगकी जाती हैं। जिनसे समय की बचत की जा सके। अतः किसी क्रिया को पूरा करने में कितना समय लगा इसका अध्ययन करना चाहिए।
7. **बचत**–वैज्ञानिक प्रबंध का मुख्य उद्देश्य व्यवसाय के लिए मितव्ययता लाना है भले ही यह समय, धन या परिश्रम के रूपमें क्यों न हो। वैज्ञानिक प्रबंध द्वारा न्यूनतम लागत से अधिकतम उत्पादन का प्रयास किया जाता है।
8. **कार्यकुशलता का विकास**–वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा श्रमिकों की कार्य करने की दक्षता बढ़ाने का प्रयास किया। यहा अनेक प्रकार के कार्य करने के नये तरीके, औजार, परीक्षण द्वारा कार्यक्षमता का विकास किया जाता है। कार्यक्षमता के परिणामस्वरूप मालिक और श्रमिकों को लाभ होता है।
9. **उत्तरदायित्व की सीमा**–वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा कर्मचारियों की कार्य की सीमा निश्चत की जाती है ऐसा होने से वह परिणामोंके लिए जवाबदेही होगा और अपने कार्य को रूचि से भी करेगा। खराब होने पर किसी अन्य को दोषी नहीं ठहरा सकता है।
10. **सहयोग**–आज के बड़े पैमाने के व्यवसायिक यग में पुंजी व श्रम के सम्बंध मधुर होने आवश्यक हैं। सामहिक प्रयोग सामूहिक हित को प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिए इसके लिए सब का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।
11. **मानसिक क्रान्ति**–श्रम और प्रबन्ध सम्बंधों को हल करने के लिए एफ. डब्ल्यू टायलर ने मानसिक क्रान्ति पर विशेष जोर दिया। वैज्ञानिक प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य श्रमिकों में उत्पादकता को वृद्धि करना तथा कार्य के दौरान उत्पन्न नीरसता एवं गलतफहमी को आपसी समझौते के आधार पर हल करना है।
12. **उचित और बढ़िया औजार की व्यवस्था करना**–वैज्ञानिक प्रबन्ध में टायलर ने यह भी व्यवस्था की है कि कर्मचारियों की कार्य करने के लिए उपयुक्त यन्त्रो के अभाव में कार्य क्षमता ठीक नहीं हो सकती। अतः उनसे ठीक प्रकार से कार्य कराने के लिए यन्त्रों का उपयुक्त होना आवश्यक है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त

एच. एस. पर्सन के शब्दों में, "वैज्ञानिक प्रबन्ध को एक लता या पेड की तरह लगाना, देख भाल करना, खाद देना, कलम करना तथा सम्भालना परम आवश्यक है। यह मशीन या बायलर की तरह नहीं है जिसे खरीद कर लगा दिया जाये।''

वैज्ञानिक प्रबन्ध को लागू करने के लिए टेलर और उसके साथियों ने समय–समय पर अनेक सिद्धान्तों की व्याख्या की है। लेकिन प्रमुख रूप से टैलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों को पांच भागों में बांटा जा सकते हैं।

1. कार्य का वैज्ञानिक अध्ययन तथा नियोजन
2. श्रमिकों का वैज्ञानिक चुनाव, प्रशिक्षण तथा पारिश्रमिक
3. प्रमापीकरण
4. प्रशासकीय पुनर्गठन–क्रियात्मक संगठन
5. मानसिक क्रान्ति

वैज्ञानिक प्रबन्ध के उपरोक्त पांच सिद्धान्तों का सुविधा की दृष्टि से विस्तृत अध्ययन निम्नलखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. **कार्य सम्बन्धी अनुमान**–वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रबन्धक का यह कर्तव्य है कि वह पता लगाये कि एक प्रथम श्रेणीके श्रमिक को उचित परिस्थितियों में कितना काम करना चाहिए। कार्य का प्रमाप निश्चित करने के लिए प्रयोग सावधानी के साथ किये जाते हैं। टेलर मिडवेल स्टील कम्पनी में जब कार्य करते थे तो उन्होंने यह महसूस किया था कि श्रमिक समय का अपव्यय करके काम करने से अपने को बचाते हैं। साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि श्रमिकों को उनकी योग्यता या क्षमता के अनुसार मजदूरी न देकर समान दर से मजदूरी का भुगतान किया जाता है। वीथिल हेम स्टील कम्पनी में एक श्रमिक औसत रूप से 12.5 टन कच्चा लोहा लादता था लेकिन टेलर ने अपने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया कि एक श्रेणी के श्रमिक को प्रतिदिन 47.5 से 48 टन तक कच्चा लोहा लादना चाहिए। विलियम लेफिगवेल के अनुसार ''कार्यको प्रभावित करने वाले सभी कारण प्रभावित हो जाने पर कार्य स्तर का निर्धारण कार्य सम्बन्धी अनुमान कहलाता है।
2. **प्रयोग**–श्री टेलर ने कार्य का अनुमान लगाने के लिए तीन प्रकार के प्रयोग किये हैं।

   (अ) समय अध्ययन
   (ब) थकान अध्ययनकाम
   (स) गति अध्ययन

   (अ) **समय अध्ययन**–अलफोर्ड तथा बी टी के अनसार, ''किसी कार्य को करने में उपयोग किये जाने वाली विधियों व उपकरणों का वैज्ञानिक विश्लेषण करना, उस कार्य को करने के सर्वश्रेष्ठ तरीके के व्यवहारिक तथ्यों का विकास करना तथा आवश्यक समय का निर्धारण करना समय अध्ययन कहलाता है।''

   (ब) **थकान अध्ययन**–थकान और श्रमिक की कार्य क्षमता का आपस में घनिष्ठ संबंध है इसलिए टेलर ने प्रत्येक क्रिया और सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करके यह मालूम किया कि श्रमिक लगातार काम करने से थक जाता है और शेष बचे समय से उसकी कार्य क्षमता गिर जाती है। टेलर ने थकान अध्ययन से मालूम किया कि श्रमिक को थकान कब और कैसे होती है तथा उसे कैसे दूर किया जाए? थकान को दूर करने के लिए समय–समय पर आराम की उचित व्यवस्था होनी चाहिए तथा कार्य की प्रवृत्ति ये परिवर्तन करना चाहिए जैसे–शारिरीक कार्य करने वालोंको मानसिक कार्य दिया जाए, तथा मानसिक कार्य करने वालों को शारीरिक कार्य दिया जाए।

   (स) **गति अध्ययन**–श्री गिस्त्रब्रेथ के अनुसार, "गति अध्ययन वह विज्ञान है। जिसके द्वारा अनावश्यक निर्देशित तथा 15 अकुशल गति से होने वाली क्षति को रोका जा सके।'' गति अध्ययन में मशीन या श्रमिक की किसी क्रिया को करनेमें होने वाली हरकतों का अध्ययन करना होता है। प्रत्येक कार्य को करने में श्रमिकों को हाथ–पैर चलाने पड़ते है। शरीर के अंग जितने अधिक हि लेगें उतना ही अधिक समय लगेगा, थकावट भी उतनी ही अधिक होगी इसलिए वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा कार्य की ऐसी विधि अपनानी चाहिए जिससे शरीर में हरकत कम से कम हो।

3. **योजना**–योजना बनाना वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रमुख आधार बिन्दु है जिसके अन्तर्गत सारे कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है जो उत्पादन में लगे होते हैं जिन औद्योगिक इकाइयों में वैज्ञानिकों का प्रबन्ध होता है। उनमें एक योजना विभाग होता है जो अगले दिन काम की रूप रेखा पहले से ही बना लेता है। इसके लिए औद्योगिक इकाई में आलमारी होती है। जिसमें प्रत्येक श्रमिक का एक खाना निर्धारित होता है। प्रातःकाल जब श्रमिक कार्य पर आता है तो उसे अपने खाने में दो कागज रखें हुए मिलते हैं। एक

में यह लिखा रखता है कि क्या काम करना है, किस तरह और कहा करना है। इसके लिए उसे किन औजारों की आवश्यकता होगी और वे कहां से प्राप्त होंगे। दूसरे कागज में उसके द्वारा पिछले दिन किये गये कार्य का पूर्ण विवरण तथा अर्जित मजदूरी के विषय में लिखा होता है। कौन कर्मचारी कहां काम करेगा, यह नक्शों, चार्टों में स्पष्ट दिखाया जाता है।

4. **श्रमिकों का वैज्ञानिक चयन एवं प्रशिक्षण**—वैज्ञानिक प्रबन्ध का यह प्रमुख सिद्धान्त श्रमिकों के वैज्ञानिक चुनाव, प्रशिक्षण,उचित कार्य की सुपुर्दगी, स्थान तथा प्रेरणा देने से सम्बन्धित है। टेलर ने कहा है, ''वैज्ञानिक प्रबन्ध में उस चिडिया का कोई नहीं है जो गा सकती है परन्तु गायेगी नहीं, इसी प्रकार एक व्यक्ति जो कार्य कर सकता है परन्तु कार्य नहीं करेगा उसका वैज्ञानिक प्रबन्धित उद्योग में कोई स्थान नहीं है वैज्ञानिक चयन एवं प्रशिक्षण के लिए निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान रखनाः

   1. श्रमिकों का चयन करते समय उनकी क्षमता, प्रकृति रूचि व चरित्र पर विशेष ध्यान देना।
   2. श्रमिकों को उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। टेलर ने कहा है कि, ”यदि कोई श्रमिक सौंपे हुए कार्य को न कर सके योग्य हो तो शिक्षक के द्वारा श्रमिक को कार्य करना सिखलाया जाए।
   3. श्रमिकों का वहा काय सापा जाए जिन्हे वे कर सकते हो।
   4. श्रमिकों को कार्य में लगाए रखने के लिए प्रेरणाएं प्रदान करनी चाहिए।

5. **कार्य का वैज्ञानिक वितरण** कार्य सौंपते समय उसकी योग्यता और कार्य क्षमता का ध्यान रखना चाहिए सही व्यक्तिको सही कार्य का सिद्धान्त अपनाना चाहिए।
6. **उपयुक्त एवं उन्नत औजारों का प्रयोग**—वैज्ञानिक प्रबन्ध और वैज्ञानिक यन्त्रीकरण एक ही सिक्के के दो रूप हैं अतःआवश्यक है कि उत्पादन में आधुनिक व उन्नत मशीनों का प्रयोग किया जाए। मशीनों व यन्त्रों की कार्य क्षमता बनाये तयार रखने के लिए समय—समय पर उनकी देख भाल मरमत व आवश्यक परिवर्तन करते रहना चाहिए।
7. **प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति**—निश्चित मजदूरी पाने वाले श्रमिक अक्सर यह सोचते हैं कि उतना ही कार्य करना चाहिए जिससे नौकरी बनी रहे। श्री टेलर ने इस समस्या का अध्ययन करके, समय व गति अध्ययन पर आधारित प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति को अपनाया। इस प्रणाली के अन्तर्गत श्रमिक द्वारा प्रमाणित कार्य पूरा करने पर उस श्रमिक को प्रमापित मजदरी व बोनस दिया जाता है। इस पद्धति में मजदूरी की दो दरें होती है—एक ऊची दर तथा दूसरा नीची दर। श्रमिको द्वारा प्रमाणित समय में पूरा करने पर मजदूरी दर से दी जाती है। इसके विपरीत प्रमापित कार्य से कम करके पर नीची दर पर मजदूरी प्रदान की जाती है।
8. **कुशल परिचय लेखाकार्य प्रणाली** —वैज्ञानिक प्रबन्ध में वस्तुओं का अपव्यय तथा यन्त्रों का दुरूपयोग रोकने के लिए परिव्यय पघात का समुचित उपयोग आवश्यक है। यही नहीं, अग्रिम आदेशों की पूर्ति के लिए भी परिव्यय अनुमान लगाना आवश्यक होता है इसलिए योग्य तथा विशेष परिव्यय लेखाकर्म कर्मचारी नियुक्त होने चाहिए।
9. **अच्छे समानकी व्यवस्था करना**—श्रमिकों की कार्य क्षमता काफी कछ उस सामग्री व मशीनों पर निर्भर करती है जो उनको काम करने के लिए दी जाती है। इस करने के लिए दी जाती है। इसलिए यह जरूरी है कि कच्चा माल बहुत सोच समझकर अच्छी श्रेणी का खरीदा जाए, ताकि श्रमिक कम से कम समय में अच्छी—से—अच्छी वस्तुओं को बना सकें। साथ—ही—साथ अपव्यय पर रोक लगाकर उत्पादन लागत में कमी की जानी चाहिए।
10. **स्वास्थ्यप्रद वातावरण** —श्रमिकों के कार्य करने के लिए वातावरण का उत्पादन क्षमता पर बहुत प्रभाव पड़त का वातावरण स्वास्थ्यप्रद तथा आनन्दमय हो तो श्रमिकों की कार्य क्षमता भी अधिक होगी। कारखानो के वातावरण को अनुकूलन बनाने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए —

1. कार्य करने के लिए पर्याप्त स्थान का होना
2. स्वच्छ वायु की व्यवस्था
3. पर्याप्त प्रकाश की व्वस्था
4. आवश्यकतानुसार ताप क्रम में परिवतर्न करने की सुविधा
5. जलपानगृह, भोजनालय में शिशु गृह (यदि औरते काम करती हों) की उचित व्यवस्था।

11. **प्रमाणीकरण**–उत्पादन क्रियाओं में उपयोग होने वाले यन्त्रों, औजारों, विधियों तथा पदार्थों आदि में प्रमापीकरण करना सदा जरूरी है। प्रमापित कार्य प्रमापित विधियों को अपनाये बिना निश्चित नहीं किए जा सकतें। प्रमापित विधियों के अभावमें शक्ति तथा समय दोनों का दुरूपयोग होता है। प्रमापीकरण वैज्ञानिक प्रबन्ध की आधार शिला है और यही औद्योगिक मी सफलता का राज है।
12. **श्रम संगठन**–आज बड़े–बड़े उद्योग है जहां पर हजारों की संख्या में श्रमिक कार्यरत है परिमाणस्वरूप मालिकों औरश्रमिकों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध सम्भव नहीं रह गया है और नियन्त्रण व निरिक्षण कार्य अत्यन्त जटिल हो गया है। यही नही अशी उद्योगपति न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करके अधिक–से–अधिक लाभ प्राप्त करना चाहता है। यह उद्देश्य तभी सिद्ध हो सकता है जबकि औद्योगिक इकाई में श्रमिको का उचित संगठन एवं निरीक्षण किया जाता है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध का आधार

वैज्ञानिक प्रबन्ध का आधार वैज्ञानिक प्रबंध कितने ही सिद्धान्तों से सम्बन्धित होता है इसमें निम्नलिखित क्रियाएं करनी पड़ती हैं जो वैज्ञानिक प्रबंध का आधार बनती हैं।

1. अवलोकन 2. सिद्धान्तों का निर्माण 3. प्रयोग 4. निश्चियता, 5. सामान्य नियमों का उपयोग 6. दूरदर्शिता 7.आदेश, 8. समन्वय 9. नियन्त्रण।

1. **अवलोकन**–यहां किसी समस्या का बारीक से अध्ययन करके निर्णय लिए जाते हैं यह निर्णय नियम सिद्धान्त का रूपधारण करते हैं।
2. **सिद्धान्तों के निर्माण**–अवलोकन में बारीकी से अध्ययन किया जाता है फिर उनके आधार पर सिद्धान्तों को बनाया जाताहै। इस प्रकार बने सिद्धान्त व्यावहारिकता पर निर्भर करते हैं।
3. **प्रयोग**–सिद्धान्तों की गहन जांच के लिए समय–समय पर प्रयोग करते रहने चाहिए ऐसा करने से सिद्धान्तों की सत्यता की पुष्टि होती रहेगी।
4. **निश्चितता**–प्रयोग हो जाने के बाद नियम को निश्चितता प्रदान की जाती है ऐसा करने से जो गलती होती है उनको न्यूनतम किया जा सकता है।
5. **सामान्य नियमों का उपयोग**–सामान्य नियम जो व्यापारों की प्रकृति को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं उन्हें किस सीमातक उपयोग करना है। ध्यान में रखना चाहिए।
6. **दूरदर्शिता**–व्यापार के बहुत से निर्णय व नियम भविष्य के लिए होते हैं अतः इन्हें अपनाते समय बड़ी सावधानी या दूरदर्शिताकी आवश्यकता पड़ती है।
7. **आदेश**–कर्मचारियों को समय–समय पर कार्य कराने तथा कार्य की प्रगति में रूकावट आदि के सम्बंध में आदेश देने पड़ते हैं। आदेश सदैव ऊपर से नीचे आते हैं।
8. **सम्बन्ध**–सभी व्यावसायिक क्रियाओं में तालमेल बढ़ाने के लिए समन्वय की आवश्यकता पड़ती है। समन्वय के अभाव में बरबादी बढ़ सकती।
9. **नियन्त्रण**–संगठन का कार्य किसी योजना के अनुसार किया जाता है। कार्य का संचालन बिना नियन्त्रण के ठीक चल ही नहीं सकता है। अतः वैज्ञानिक प्रबन्ध में नियन्त्रण को प्राथमिकता दी जाती है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के उद्देश्य

1. श्रम और पूंजी के बीच अच्छे सम्बन्ध–व्यापारिक सफलता के लिए शान्ति आवश्यक है। अशान्ति का प्रमुख कारण श्रम और पूंजी के बीच टकराव।
2. लागत न्यूनतम उत्पादन अधिकतम–प्रत्येक व्यवसायी का यही उद्देश्य रहता है कि वह लागतों को कम–से–कम रखेंऔर बरबादियों को रोक कर लाभ का अधिकतम करने का प्रयास करता है।
3. उत्पादन में वृद्धि–वैज्ञानिक विधियों का पालन करने से कम–से–कम लागत पर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकताहै। वैज्ञानिक प्रबंध का सार उत्पादन में वृद्धि करने से हो। उसी व्यय अनुपात से अधिक उत्पादन प्राप्त करने का प्रयत्नकिया जाता है।
4. मानवीय चातुर्य में वृद्धि–वैज्ञानिक प्रबन्ध में मानसिक क्रान्ति पर बल दिया जाता है। अतः मानवीय–चातुर्य में वृद्धि कीसम्भावना बढ़ जाती है।
5. प्रमापीकरण–कार्य को करते–करते श्रमिकों और मालिकों को यह पता चल जाता है कि अमुक कार्य पर कितना समय लगाना चाहिए। यदि इससे अधिक समय लग रहा है तो इसे शीघ्र नियन्त्रित करने का प्रयास किया जाता है।
6. ग्राहक को सस्ती व अच्छी किस्म की वस्तुएं उपलब्ध करना–वैज्ञानिक प्रबन्ध का एक उद्देश्य यह भी है कि ग्राहकों को कम–से–कम मूल्य पर अच्छी किस्म की वस्तु उपलब्ध करायी जाए है।
7. समय और साधनों का सर्वोत्तम उपयोग–वैज्ञानिक प्रबंध का यह भी एक प्रमुख उद्देश्य होता है कि समय और साधनों को बारबादी न की जा सके।
8. नियोजित उद्देश्य को पूरा करने के लिए प्रत्येक व्यवसायिक संस्थान के कुछ नियोजित उद्देश्य होते हैं। जिन्हें वैज्ञानिक कार्य रीति द्वारा पूरा करने का प्रयास किया जाता है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के लाभ

वैज्ञानिक प्रबन्ध से निम्नलिखित को लाभ प्राप्त होता है–

(अ) श्रमिकों को लाभ
(ब) उत्पादकों को लाभ
(स) राष्ट्र को लाभ

(अ) श्रमिकों को लाभ

1. श्रम कुशलता का विकास, 2. वेतन में वृद्धि, 3. रहन–सहन के स्तर में वृद्धि, 4. प्रशिक्षण की सुविधा, 5. कार्यक्षमता में वृद्धि, 6. अच्छे वातावरण का विकास, 7. मानसिक क्रान्ति, 8. योग्यता के आधार पर कार्य का वितरण।

1. **श्रम कुशलता का विकास** –वैज्ञानिक विधियों और नये औजारों के उपयोग से श्रम की कार्यक्षमता बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए अमेरिका की 'सयमान्डल रोलिंग मशीन' ने वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीक लागू करके जिस कार्य को 120 लड़कियों करती थी उसे 35 लड़कियां द्वारा कराया।
2. **वेतन वृद्धि**–जिन उद्योगों में वैज्ञानिक प्रबंध लागू वृद्धि 30 से 100 प्रतिशत तक हो जाती है।
3. **रहन–सहन के स्तर में वृद्धि**–श्रमिकों की आय बढ़ने से उनके रहन–सहन के स्तर में भी सुधार आता है।
4. **प्रशिक्षण**–वैज्ञानिक प्रबंध में यह व्यवस्था की जाती है कि पुराने यन्त्रों के स्थान पर उन्नत व नये उपकरणों की प्रशिक्षण व्यवस्था करके उनकी कार्य क्षमता का विकास किया जाए। प्रशिक्षण द्वारा कार्य शीघ्र व कम थकान से किया जाता है।

5. **कार्यक्षमता का विकास** –वैज्ञानिक प्रबंध से श्रमिकों के रहन–सहन के स्तर से सुधार होता है। श्रमिक अच्छे मकानों में रहते है। रोग व गन्दगी से दूर हो जाते हैं। अतः इनका सीधा प्रभाव उनकी कार्य क्षमता पड़ता है।
6. **अच्छे वातावरण का विकास**–अच्छे रहन–सहन के स्तर का प्रभाव कार्य कशलता पर पड़ता है अधिक मजदूरी मिलने के परिणामस्वरूप वे गन्दगी से दूर हो जाते हैं और शान्ति पूर्ण वातावरण में रहने लगाते हैं और उसका प्रभाव उनकीकार्यकुशलता पर पड़ता है।
7. **मानसिक क्राति**–वैज्ञानिक प्रबन्ध से श्रम और पंजी के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाता है। वे परस्पर सहयोग से कार्य करते हैं । श्रमिकों को इस बात का गर्व होता है कि स्वामी उनका विशेष ध्यान रखता है। स्वामी उनके लिए अधिक–से–अधिक सुविधाएं उपलब्ध करने का प्रयत्न करता है। ऐसा करने से श्रमिकों की मनोवृत्ति में बदलाव आ जाता है।
8. कार्य वितरण योग्यता के आधार पर वैज्ञानिक प्रबन्ध में काम का युक्ति पूर्ण वितरण होता है। प्रत्येक श्रमिक को उसकीशारारिक शक्ति, मानसिक प्रवृत्ति एवं रूचि के अनुसार कार्य दिया जाता है जिससे कार्य करने में आनन्द का अनुभवहोता है और परिणाम भी अच्छे आते हैं।

(ब) उत्पादकों को लाभ

1. **वस्तुओं में सुधार**– वैज्ञानिक पद्धति से उत्पादित वस्तुओं की किस्मों में सुधार होने लगता है। वस्तुओं का उत्पादन प्रमाणित होता है परिमाणस्वरूप वस्तुओं की किस्म में भी सुधार होता है।
2. **लागत में कमी**– वस्तुओं की लागतों में कमी होने लगती है। यद्यपि योजना विभाग के व्यय में वृद्धि होती है लेकिन उत्पादन बढ़ने से प्रति इकाई लागत कम होती हैं। सस्ती और अच्छी वस्तु बाजार या मांग का विस्तार करती है।
3. **श्रम तथा पूंजी के झगड़ों का अन्त**– वैज्ञानिक प्रबंध लागू होने से झगड़े तथा असन्तोष पैदा करने वाले समस्त कारणों को समाप्त कर दिया जाता है।
4. **श्रम विभाजन के लाभ**– वैज्ञानिक प्रबन्ध में श्रम विभाजन की सूक्ष्मतम क्रियाओं में होने वाले अनेक लाभ निर्माता को मिलतेहैं। जैसे दक्षता का बढ़ना, कम समय में अधिक कार्य, रूचि के अनुसार कार्य आदि।
5. **श्रमिकों से अधिक कार्य सम्भव**– वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत ऐसी नवीन युक्तियों का प्रयोग किया जाता है जिनसे कि श्रमिकों से अधिकाधिक कार्य लेना सम्भव हो जाता है। श्रमिकों को काम करने के लिए नवीनतम यन्त्र मिलते हैं। उन यन्त्रों पर काम करते रहने के कारण उनकी कार्य क्षमता में आश्चर्य जनक वृद्धि हो जाती है।
6. **न्यूनतम उत्पादन लागत**–श्रमिकों की कार्य क्षमता में वृद्धि जाने से काम अधिक होने लगता है तथा अपव्यय रूक जाताहै प्रति इकाई श्रम लागत भी कम हो जाती है।
7. **पूर्ण नियन्त्रण**–वैज्ञानिक प्रबंध में व्यापार के समस्त क्षेत्रों पर पूर्ण नियंत्रण रखा जाता है। अतः कोई क्षेत्र किसी प्रकारकी असुविधा का सामना नहीं करेगा।

(स) राष्ट्र को लाभ

वैज्ञानिक प्रबन्ध से राष्ट्र को निम्न लाभ प्राप्त होते हैं:

1. राष्ट्रीय आय में वृद्धि–बड़े पैमाने के उत्पादन होने से उद्योगों के विकास को बल मिलता है। लोगों को रोजगार मिलता है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।
2. औद्योगिक शक्ति बढ़ती–वैज्ञानिक प्रबन्ध में यही प्रयत्न किया जाता है कि श्रम और पूंजी में अच्छे सम्बन्धों के फलस्वरूप उत्पादन बढ़ता है औद्योगिक शान्ति से देश में उद्योग–धंधों का विकास भी होता है।

3. ऊंचा जीवन स्तर–वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीकी का उपयोग करके सभी प्रकार की बरबादी को रोकने का प्रयत्न किया जाता है। समाज को सस्ती वस्तुएं उपलब्ध हो जाती हैं। ऐसा करने से लोगों का जीवन स्तर ऊंचा हो जाता है।
4. सामाजिक स्तर में वृद्धि–उत्पादन बढ़ने से उद्योगों का विकास होता है रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, राष्ट्रीय आय बढ़ती है, औद्योगिक शान्ति बढ़ती है, जीवन स्तर बढ़ता है और आय बढ़ती है। इस प्रकार सामाजिक स्तर भी बढ़ता है। .

वैज्ञानिकों प्रबन्ध के दोष

वैज्ञानिक प्रबन्ध में अनेक लाभ होते हुए भी दोष पाए जाते हैं।

क. श्रमिकों द्वारा विरोध

ख. नियोक्ताओं द्वारा विरोध

क. श्रमिकों द्वारा विरोध

1. **अधिक कार्य भार–**श्रमिकों के कार्य करने में तेजी आती है अर्थात श्रमिकों का मत यह है कि उन्हें वैज्ञानिक प्रबन्ध की पद्धतियों के अनतर्गत अधिक कार्य करना पड़ता है। जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
2. **बेरोजगारी बढ़ती है–**मशीनों और यंत्रों में थोड़ा–बहत परिवर्तन करके उन्ही श्रमिकों से अधिक उत्पादन कराया जाता है। पुराने कारखानों में इस योजना के लागू करने से श्रमिकों को अयोग्य कहकर निकाल दिया जाता है और बेरोजगारी बढ़ती है।
3. **श्रम संघों द्वारा विरोध–**वैज्ञानिक प्रबन्ध से श्रमिकों की सामहिक शक्ति को खत्म करने के प्रयत्न किये जाते हैं। श्रमिकोंमें एकता की भावना का विनाश होने से श्रम संघों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है।
4. **नीरसता–**प्रतिदिन वहीं कार्य करने से श्रमिकों में नीरसता बढ़ती है, नवीनता का अभाव होने से रूचि का अभाव होना शुरू हो जाता है और नीरसता बढ़ती।
5. **श्रमिकों पर अविश्वास–**वैज्ञानिक प्रबन्ध में श्रमिकों की स्वयं की योग्यता तथा गुणों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। इस प्रणाली की यह मान्यता है कि श्रमिक स्वयं कार्य विधि नहीं निकाल सकता उसे सब कुछ सिखाया जाता है।
6. **श्रमिकों का शोषण–**वैज्ञानिक प्रबन्ध से प्रबन्धक श्रमिकों का शोषण करते हैं ऐसा श्रमिकों का मत है क्योंकि वैज्ञानिक प्रबन्ध के कारण जो लाभ होता है उसका बहुत कम हिस्सा ही मालिकों के द्वारा श्रमिकों को दिया जाता हैं।

ख. नियोक्ताओं द्वारा विरोध

1. **खर्चीली पद्धति**–योजना बनाने में बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है तथा व्यय करने के बाद भी उसका लाभ तुरन्त नही ंमिला। उत्पादन लागत में कमी दीर्घकाल के बाद ही सम्भव होती है विशेषज्ञों की सेवाएं प्रत्येक कदम पर लेनी पड़ती हैं।
2. **मन्दीकाल में भार स्वरूप**–योजना विभाग का व्यय मन्दीकाल में एक भार हो जाता है इससे लागत में वृद्धि होती है। मन्दीकाल में श्रमिकों की संख्या तो कम की जाती है लेकिन कर्मचारियों जैसे लिपिक, अधिकारी आदि में कमी नहीं की जा सकती है।
3. **उत्पादक विशेषज्ञों पर निर्भर**–इस पद्धति में उत्पादक विशेषज्ञों के हाथ की कठपुतली बनकर रह जाता है। उन्हीं के अनुसार उत्पादकों का कार्य करना पड़ता है।

4. **अस्थिरता**– कारखाना एक प्रयोगशाला बन जाता है। प्रतिदिन नये–नये प्रयोग होते हैं। दिन–प्रतिदिन परिवर्तनों के कारण स्थिरता का अन्त हो जाता है। इससे उत्पादक को हानि होती है।
5. **प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव**–इस पद्धति में पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित कर्मचारियों का होना आवश्यक है लेकिन उन्हेंखोजना कोई आसान कार्य नहीं है।
6. **समन्वय में कठिनाई**–उद्योग में निरीक्षकों तथा विशेषज्ञों के कारण उनके कार्यों में समन्वय कायम करना मुश्किल होजाता है।
7. **यन्त्रों का बेकार हो जाना**–वर्तमान उत्पादन व्यवस्था में परिवर्तन करना होता है तो काफी यन्त्र और औजार बेकार हो जाते हैं।

2. प्रशासनिक प्रबंध सिद्धान्त

हेनरी फेयोल

इन्होंने प्रबंध का ज्ञान फ्रांस की एक कोयले लोहे एवं इस्पात की बड़ी कम्पनी में प्रबन्धक के रूप में काम करके प्राप्त किया था। उन्होंने अपने अनुभव से यह जाना कि प्रबन्ध का कार्य, उत्पादन, विक्रय तथा लेखांकन से भिन्न, एक विशिष्ट काय हर इसकी प्रक्रिया सभी सगठनों में चाहे वे व्यवसायिक संगठन हो या सरकारी संगठन, एक ही तरह से पूरी की जाती है। प्रबन्ध प्रक्रिया की इस सर्वव्यापकता का प्रचारक होने के कारण उन्हें सर्वव्यापकता सिद्धान्त का रचयिता भी कहा जाता है। फयाल के अनुसार प्रत्येक संगठन में प्रबंध चलाने के लिए अपने सुनिश्चित सिद्धान्त हैं। यदि प्रबन्धक अपने कार्य में इन सिद्धान्ता का ध्यान रखे तो उसे सफलता निश्चित ही मिलेगी तथा फेयोल के द्वारा सुझाये गए सिद्धान्त प्रबन्ध के अन्तिम सिद्धान्त नहीं है। फेयोल के बाद उर्विक, मूने व रैले आदि अनेक सिद्धानों ने भी इन सिद्धान्तों में सुधार करके इन्हें अधिक उपयोगी बनाया है।

प्रबन्धकीय विशेषताएं और प्रशिक्षण

फेयोल के मतानुसार एक प्रबन्धक में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए :

1. शारीरिक–एक स्वस्थ और सशक्त प्रबन्धक ही अपने कर्तव्ये का सही ढंग से पालन कर सकता है। उसकी सेहत अच्छी होनी चाहिए और उसमें स्फूर्ती रहनी चाहिए। स्वस्थ प्रबन्धक स्वस्थ व्यक्ति और सशक्त प्रबन्धक ही अपने कर्तव्यों का ला, सही ढंग से पालन कर सकता है। उसकी सेहत अच्छी होनी चाहिए और स्फूर्ति तथा फुर्ती रहनी चाहिए। स्वस्थ प्रबंधकों से स्वस्थ व्यक्तियों के संगठन बन सकते हैं। अतः शारीरिक बनावट और स्वास्थ को महत्व दिया जाना चाहिए।
2. मानसिक–फेयोल का विचार था कि केवल शारीरिक क्षमता ही पर्याप्त नहीं है। इसके साथ ही, मनुष्य में मानसिक योग्यताभी होनी चाहिए। एक सशक्त शरीर व सशक्त मन वाला व्यक्ति ही पूर्ण मानव बनता है।
3. नैतिक–शारीरिक एवं मानसिक गुणों के साथ ही एक प्रबन्धक में नैतिक गुण भी पाए जाने चाहिएं। नैतिक गुणों में फेयोलने यह सूची दी है–शक्ति, दृढ़ता, उत्तरदायित्व स्वीकार करने की इच्छा, कार्यक्षमता, स्वामी भक्ति, चतुरता व स्वाभिमान।
4. शैक्षाणिक–यह विशेषता उन विषयों के सामान्य ज्ञान की ओर संकेत करती है, जिनका सम्बन्ध मुख्यतः किए जाने वालेकार्यों से होता है। अतः सामान्य स्तर की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है।
5. तकनीकी और प्रबन्धकीय–तकनीकी विशेषताएं प्रबन्ध के द्वारा किए जाने वाले कार्य से सम्बन्ध रखती है। जैसे उत्पादन के लिए एक उत्पादन प्रबन्धक चाहिए।

व्यावसायिक क्रियाओं का वर्गीकरण

फेयोल के अनुसार प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को छः प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं –

1. तकनीकी कार्य, अर्थात् उत्पादन सम्बंधी कार्य।
2. वाणिज्य कार्य, जैसे क्रय–विक्रय तथा विनियम।
3. वित्तीय कार्य जैसे पूंजी और आय का प्रबन्ध।
4. सुरक्षा कार्य, जैसे सम्पत्ति आदि की रक्षा।
5. लेखांकन कार्य अर्थात संस्था का हिसाब किताब रखना तथा का कामियाजा
6. प्रबन्धकीय कार्य, अर्थात संस्था का प्रबन्ध चलाना। फेयोल ने प्रबन्ध को भी उत्पादन तथा विक्रय जैसे कार्य के समान महत्वपूर्ण माना है। यद्यपि फेयोल द्वारा किया गया व्यावसायिक क्रियाओं का यह वर्गीकरण बहुत महत्वपर्ण नहीं है क्योंकि वित्त सुरक्षा तथा लेखांकन जैसे कार्य को भी तकनीकी तथा वाणिज्यकार्यों के समान महत्वपूर्ण स्थान देना ठीक नहीं है। लेकिन यह आज भी बहुत कुछ सही माना जाता है। अधिकार व्यवसायिक संस्थाओं में आज भी 5 मुख्य विभाग बनाए जाते हैंः उत्पादन, विपणन, वित्त, कर्मचारी तथा सामान्य प्रशासन विभाग, का व्यावसायिक कार्यों के इस वर्गीकरण का दूसरा दोष यह है कि इसे प्रबन्ध का उत्पादन और विपणन से पृथक कार्य माना जाता है। सच तो यह है कि प्रबन्ध विपणन और उत्पादन दोनों में ही समान रूप से आवश्यक है।

प्रबन्धकीय तत्व या प्रबन्ध प्रक्रिया

फेयोल ने अपनी पुस्तक में प्रबन्धकीय कार्यों को प्रबन्धकीय तत्वों का नाम दिया है।

1. पूर्वानुमान और योजना बनाना।
2. सगठन बनाना।
3. आदेश देना।
4. समन्वय करना।
5. नियन्त्रण करना।

फेयोल के अनुसार नियोजन प्रबन्ध का महत्वपर्ण तत्व है यह प्रबन्ध का कदम सबसे बड़ा उत्तरदायित्व भी है क्योंकि योजना जाल हाना सगठन के अस्तित्व पर एकदम विपरीत प्रभाव डालता है। उन्होंने संगठन के मानवीय पहल की ओर भी विशेष ध्यान पचार एक सगठन संरचना के निर्माण तथा आदेश देने के कार्य को योजना कार्यान्वित करने का महत्वपूर्ण आधार माना है उनका अनुसार समन्वय भी इसलिए अधिक महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक व्यक्ति साथ–साथ कार्य करे और नियन्त्रण के अन्तर्गत यह देखा जाता है कि बनाई गई योजना के अनुसार ठीक प्रकार से कार्य हो रहा है अथवा नहीं। और यदि नहीं उनमें क्या–क्या कमियां हैं।

प्रबन्ध के सिद्धान्त का अर्थ

सिद्धान्त से हमारा आशय उन नियमों कानूनों, परम्पराओं अथवा मान्यताओं से है जिनका प्रयोग विश्लेषणात्मक अध्ययन एवं पूर्णनिर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु किया जाता है। सिद्धान्त वे आधारभूत सत्य होते हैं जो किसी क्रिया को कुशलतापूर्वक एवं सफलतापूर्वक ढंग से सम्पन्न करने के लिए मार्गदर्शक निमयों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं इन्हें आधार भूत सत्यों की संज्ञा इसलिए प्रदान की जाती हैं क्योंकि ये सार्वभौमिकता के नियम है तथा प्रत्येक देश में किसी भी समय इन्हें पूर्ण सफलता के लिए जिन पर लागू किया जाता है।

परिभाषा

कूण्ट्ज ओ'डोनेल के अनुसार, ''प्रबन्ध के सिद्धान्त सामान्य मान्यता प्राप्त के आधारभूत सत्य हैं जो प्रबन्ध में सम्बन्धित कार्यों के परिणाम की भविष्यवाणी करने की क्षमता रखते है।''

हिक्स हर्बर्ट के अनुसार, ''प्रबन्ध के सिद्धान्त प्रबन्धकीय क्रियाओं के मार्गदर्शक नियम या कानून है इनकी रचना मुख्य रूप से व्यवसायिक परिस्थितियों के विषय में विवेक या अच्छी समझ प्रदान करने के लिए तथा संगठनात्मक निष्पादन में सुधार लाने के लिए की जाती है।''

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि सिद्धान्त सत्य का एक आधारभूत विवरण है। जो प्रयोग अनुसंधान या अभ्यास के व्यवहारिक विश्लेषण द्वारा तैयार किया जाता है तथा यह आधारभूत विवरण विभिन्न क्रियाओं का मार्गदर्शन करता है। जिसमें संगठन द्वारा उच्च स्तर के कार्य की आशा की जा सकती है।

हेनरी फेयोल के सिद्धान्त

1. **कार्य का विभाजन**—इसके मतानुसार प्रत्येक कार्य को एक से अधिक भागों में विभक्त करना चाहिए यानि विभाजन एक तरफ तो विशिष्टता लायेगा और दूसरी तरफ उससे संस्था के उत्पादन में वृद्धि होगी।
2. **अधिकार एवं दायित्व** उनके अनुसार अधिकार का अभिप्राय निर्देशन शक्ति से है जबकि दायित्व का अभि करने के बन्धन से है जिससे पुरस्कार अथवा दण्ड जुड़ा हुआ है फेयोल के मतानुसार अधिकार एवं उत्तरदायित्व साथ—साथ चलने चाहिए क्योंकि ये दोनों एक ही कार्य के दो पहलू हैं यदि अधिकार कम और उत्तरदायित्व अधिक होंगे तो उत्तरदायित्वों का पूरा करना सम्भव नहीं होगा और यदि अधिकार अधिक और उत्तरदायित्व कम होंगे तो अधिकारों का दुरुपयोग होगा।
3. **अनुशासन**—उन्होंने स्वयं लिखा है आज्ञा का पालन नियमों में आस्था, पूर्ण, परिश्रम से कार्य तथा सम्बन्धित अधिकारियों आदर करना प्रत्येक संस्था के कुशल संचालक के लिए आवश्यक है। इसी को उन्होंने अनुशासन कहा जो कि अच्छे नेतृत्व पर निर्भर करता है उसके अनुसार अनुशासनहीनता दुर्बल नेतृत्व का परिचायक है।
4. **आदेश की एकता**—प्रत्येक कर्मचारी का समस्त आदेश एक ही अधिकारी में मिलने चाहिए क्योंकि एक कर्मचारी एक हीनक आधकारियों के आदेशों का पालन नहीं कर सकेगा। इसी को फेयोल ने 'आदेश की एकता कासिद्धान्त' कहा है।
5. **निर्देशन की एकता** — निर्देशन की एकता का अभिप्राय फेयोल के मतानुसार था—एक इकाई की एक योजना जब प्रक्रियाओं कप्रकृति एक समान है तो कार्य निष्पादन की भिन्न—भिन्न योजना होना संस्था के अहित में होगा।
6. **सामान्य हितों की व्यक्तिगत हितों पर प्राथमिकता**—फेयोल के मतानुसार व्यक्तिगत हितों को कभी भी संस्था के हितों क ऊपर नहीं समझा जाना चाहिए जब कभी इन दोनों में संघर्ष हो जाय तो व्यक्तिगत हिता क ऊपर सामान्य हितों को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
7. **श्रेणी श्रृंखला**—फेयोल के मतानुसार उच्चतम स्तर से लेकर निम्नतम स्तर तक के अधिकारियों के अधिकारों तथा दायित्वों को श्रृंखलाबद्ध किया जाना चाहिए। श्रेणी श्रृंखला की प्रकृति चित्र के माध्यम से स्पष्ट की जा सकती है।

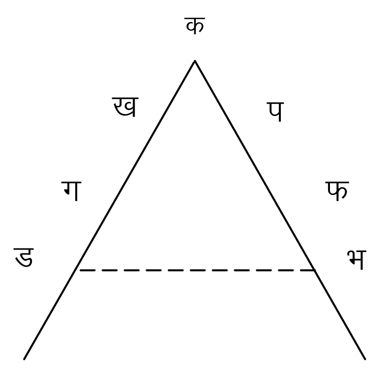

प्रस्तुत चित्र से स्पष्ट है कि *क* सर्वोच्च अधिकारी है जिसका *ख* तथा *प* से सीधा सम्बन्ध भी है। उसी प्रकार *ग* के ऊपर *ख* और *फ* के ऊपर *प* कार्यरत अधिकारी है यदि इस श्रृंखला में *ड* अधिकारी *भ* अधिकारी से संचार करना चाहे तो उसे *ग, ख,* के माध्यम से *क* तक ऊपर की तरफ तथा *क,* से *प, फ* के माध्यम से नीचे की तरफ *भ* तक रास्ता तय करना पड़ेगा। स्वयं फेयोल ने यह महसूस किया कि यह सिद्धान्त लालफीताशाही को बढ़ावा देगा। इस समस्या को दूर करने के लिए उन्होंने

गैंगप्लैंक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार एक ही स्तर पर कार्य करने वाले व्यक्ति पारस्परिक संचार कर सकते थे, यदि ऐसा करने की स्वीकृति अपने उच्च अधिकारियों से है।

8. **पारिश्रमिक**–फेयोल का मत था,कि कर्मचारियों के पारिश्रमिक की दर तथा भुगतान की विधि उचित और सन्तोषप्रद हो। पारिश्रमिक न तो अधिक होना चाहिए और न ही कम । उन्होंने कर्मचारियों को प्रेरणा प्रदान करने के लिए अवित्तीय प्रेरणाओंको भी अपनाने पर बल दिया।

9. **केन्द्रीयकरण**–उनके मतानुसार छोटे पैमाने पर उत्पादन करने वाली संस्थाओं में तो केन्द्रीयकरण स्वाभाविक है लेकिनबड़ी संस्थाओं में केन्द्रीयकरण की रीति अपनाई जाये या केन्द्रीयकरण इसका निर्णय व्यापक हितों, कर्मचारियों की भावना तथा कार्य की प्रकृति आदि सभी बातों पर समग्र रूप से विचार करके लिया जाना चाहिए।

10. **व्यवरथा**–फेयोल का मत था कि उत्पादन प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि सामयी तथा कर्मचारियों को व्यवस्था प्रदान की जाये। व्यवस्था का अभिप्राय सही वस्तु तथा का सही स्थान पर बोलना।

11. **समता**–उसके मतानुसार कार्य तथा व्यवहार में समता सभी को भाती हो यह समता न्याय–उदारता के भाव रखने से पैदा की जा सकती है किसी भी सख्या के कर्मचारियों में निष्ठा उत्पन्न करने के लिए समता के सिदान आवश्यक है।

12. **कर्मचारियों में स्थायित्वता** –फेयोल का मत था कि कर्मचारी जल्दी–जल्दी नहीं हटाए जाने चाहिए उनमें सुरक्षा का भाव पैदा किया जाना चाहिए। किसी भी प्रशासन की कुशलता तथा उपक्रम की सफलता कर्मचारियों के स्थायित्व पर निर्भर करती है।

13. **पहलपन**––पहलपन का अभिप्राय किसी नवीन योजना का सूत्रपात करने से है। फेयोल का मत था कि पहल कर्मचारियों को यथासम्भव उत्साहित करना चाहिए।

14. **सहयोग की भावना**–फेयोल का मानना था कि प्रबंधक को चाहिये कि वह अधीनस्था में सहयोग की भाव उनके अनसार पारस्परिक सहयोग की कार्य–सिद्धि का आधार है। उन्होंने इसी आधार पर लिखित सन्देश ''फूट डाले और राज्य करो'' की मान्यताओं की आलोचना की थी।

प्रबन्ध के स्तर

व्यवसाय के प्रारम्भिक चरणों में जब उत्पादन का कार्य सीमित पैमाने पर किया जाता था तब प्रबन्ध के केवल दो स्तर विद्यमान थे–इनमें से प्रथम स्तर पर स्वामी या व्यवसाय में पूँजी लगाने वाले और द्वितीय स्तर पर प्रबन्धक या पर्यवेक्षक हुआ करते थे। व्यवसाय के स्वामी को उच्च–स्तरीय प्रबन्ध में और प्रबन्धक या पर्यवेक्षक को निम्न–स्तरीय या पर्यवेक्षीय प्रबन्ध से सम्मिलित किया जाता था लेकिन ज्यों–ज्यों उत्पादन का कार्य बड़े पैमाने पर किया जाने लगा, एक ही छत के नीचे कार्य करने वाले कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि होने लगी, कार्य अलग–अलग स्थानों पर होने लगा, उत्पादन विधियों में तकनीकी परिवर्तन होने लगे, पर्यवेक्षक के नियन्त्रण के विस्तार के क्षेत्र में वृद्धि होने लगी, त्यों–त्यों प्रबन्ध जगत में एक और स्तर का विकास हुआ जिसे हम मध्यमवर्गीय प्रबन्ध के नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रबन्ध के तृतीय स्तर 'मध्यमवर्गीय प्रबन्ध' का प्रादुर्भाव विस्तृत पैमाने पर उत्पादन, कर्मचारियों की संख्या में वद्धि. नवीन प्रबन्ध, तकनीकों का विकास और नियन्त्रण के विस्तार के क्षेत्र में वृद्धि आदि के कारण हुआ है। व्यवसाय के स्वरूप में परिवर्तन जैसे एकल व्यवसाय से साझेदारी,

साझेदारी से कम्पनी और कम्पनी से निगम एवं सार्वजनिक उपक्रम आदि भी प्रबन्ध के स्तर 'मध्यवर्गीय प्रबन्ध' के प्रादुर्भाव एवं विकास का मुख्य आधार हैं।

प्रबन्ध के विभिन्न स्तर

स्वामित्व	**अंशधारी**
उच्च–स्तरीय प्रबन्ध	मुख्य अधिशासी | अध्यक्ष | प्रबन्ध संचालक या महाप्रबन्धक वरिष्ठ अधिशासी | विभिन्न उपाध्यक्ष या विभिन्न महाप्रबन्धक
मध्य–स्तरीय प्रबन्ध	विभागाध्यक्ष | उप–विभागाध्यक्ष | तकनीकी एवं इंजीनियरिंग कर्मचारी
निम्न–स्तरीय प्रबन्ध	कार्यालय प्रबन्धक | सुपरिन्टेंडेन्ट्स | जनरल फोरमैन | फोरमैन | प्रथम लाइन पर्यवेक्षक

प्रशासनिक प्रबन्ध का महत्त्व

फेयोल के प्रबन्ध के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए कुछ मुख्य विचार, जिनसे प्रबन्ध जगत को बहुत लाभ हुआ है निम्नलिखित हैं :

1. प्रबन्ध की सार्वभौमिकता।
2. प्रबन्धक पैदा नहीं होते, बनाए जाते हैं।
3. केवल अधिकारों को सौंपा जा सकता है, उत्तरदायित्व को नहीं।
4. एक प्रब्रधक के नियंत्रण का विस्तार छः से अधिक नहीं होना चाहिए।
5. एक व्यक्ति को केवल एक ही कार्य करना चाहिए।

6. ऊपर से नीचे तक अधिकारों का स्पष्ट बँटवारा होना चाहिए।

7. प्रत्येक कर्मचारी को उसके अधिकार एवं उत्तरदायित्व लिखित रूप से बता देने चाहिए

आलोचना

कुछ प्रबन्ध विशेषज्ञों ने फेयोल के विचारों का विरोध किया है। विरोध के समर्थन में उन्होंने निम्नलिखित बातें कही हैं :

1. फेयोल द्वारा प्रस्तुत किए गए सिद्धान्तों में विरोधाभास है।

2. ये सिद्धान्त सीमित अध्याय पर आधारित है।

3. ये सिद्धान्त संगठन का मशीनीकरण करते हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि प्रशासनिक प्रबन्ध की आलोचना अधिक व्यावहारिक नहीं है। फेयोल द्वारा प्रस्तुत किए गए सिद्धान्त भी अटल है और प्रबन्धकों का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

टेलर एवं फेयोल के योगदान का तुलनात्मक अध्ययन

प्रबन्ध के क्षेत्र में टैलर और फेयोल दोनों ही बड़े स्तम्भ और कर्मयोगी माने जाते हैं। टेलर को वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रतिपादक तथा फेयोल को आधुनिक प्रबन्ध का पिता कहा जाता है। दोनों ही कर्मयोगियों ने अपने–अपने योगदान से प्रबन्धशास्त्र को अधिक से अधिक वे धनी बनाने का प्रयत्न किया है। टेलर के कार्य का केन्द्र बिन्दु श्रमिक और उसकी कार्यकुशलता थी जबकि फेयोल के कार्य का कार्यक्षेत्र उच्चस्तरीय प्रबन्ध था। थियो हैमेन के अनुसार दोनों के कार्यों में अन्तर ढूँढ़ना आवश्यक है क्योंकि "दोनों ही विद्वानों ने प्रबन्ध की समस्याओं के समाधान में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया है।

समानताएँ–

यद्यपि टेलर और फेयोल दोनों ने विभिन्न परिस्थितियों में अपना जीवन प्रारम्भ किया, लेकिन दोनों ही चोटी के प्रबन्ध विशेषज्ञ माने जाते हैं। इन दोनों के कार्यों में निम्नलिखित समानताएँ पायी जाती हैं :–

1. टेलर और फेयोल दोनों ही विद्वानों का उद्देश्य प्रबन्ध की बुराइयों को दूर करना था और दोनों ने ही इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है।
2. दोनों ही विद्वानों ने इस बात का प्रतिपादन किया कि श्रम के साथ मानवीय, उचित एवं न्यायपूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए, क्योंकि श्रम उत्पादन का संजीव सक्रिय साधन है और उसकी सन्तुष्टि अत्यन्त आवश्यक है।
3. दोनों ही प्रबन्ध विशेषज्ञों ने अपने–अपने ढंग से प्रबन्ध के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।
4. दोनों की विशेषज्ञों के अनुभवों की छाप प्रबन्ध के क्षेत्र में है।
5. आधुनिक प्रबन्ध की विचारधारा को दोनों ही विद्वानों से प्रेरणा मिली है।

असमानताएँ

यद्यपि टेलर और फेयोल के विचारों में अनेक समानताएँ है लेकिन फिर भी इन दोनों के विचारों में निम्नलिखित असमानताएँ भी हैं –

1. टेलर के अध्ययन का केन्द्र–बिन्दु श्रमिक था, क्योंकि उसने अपना जीवन एक श्रमिक के रूप में आरम्भ किया था जबकि फेयोल ने अपना जीवन एक बड़े अधिकारी के रूप में आरम्भ किया था इसलिए उनके अध्ययन का केन्द्र बिन्दु प्रबन्ध था।

2. टेलर को 'कुशलता विशेषज्ञ' जबकि फेयोल को प्रबन्ध विशेषज्ञ माना जाता है क्योंकि उन्होंने प्रबन्ध की कार्यकुशलताको बढ़ाने सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।
3. टेलर ने कारखाना प्रबन्ध और उत्पादन के इंजीनियरिंग पहलू के अध्ययन को अधिक महत्वपूर्ण माना है जबकि फेयोल ने प्रबन्ध के कार्यों को अधिक महत्वपूर्ण माना है।
4. वर्तमान परिस्थितियों में टेलर के सिद्धान्त बहुत अधिक बदल चुके हैं जबकि फेयोल के सिद्धान्त आज भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने वे उस समय थे, जब उनका प्रतिपादन किया गया था।

यहाँ इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि आधुनिक परिवर्तनों के कारण टेलर की विचारधारा में बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है जबकि फेयोल के सिद्धान्त आज भी अटल हैं।

3. तानाशाहात्मक प्रबन्ध

तानाशाहात्मक प्रबन्ध विचारधारा का प्रतिपादन एक जर्मन समाजशास्त्री मैक्स बैबर ने किया। बैबर का मानना था कि प्रबन्धकीय अनियमितता को समाप्त करने के लिए सख्त नियम बनाये जाने चाहिए क्योंकि अनियमितता से अकुशलता आती है। इसके अतिरिक्त इनका यह भी मानाना था कि एक बड़े संगठन में तानाशाहात्मक प्रबन्ध से ही सफलता प्राप्त की जा सकती है। इनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त फेयोल के सिद्धान्तों के समान है लेकिन इन्होंने सिद्धान्तों की सख्ती से पालन करने की बात कही है।

नव–परम्परागत दृष्टिकोण

नव–परम्परागत दृष्टिकोण का विकास सन् 1930 के आस–पास हुआ। परन्तु इस दृष्टिकोण के विकास का आधार परम्परागत दृष्टिकोण ही है इन दोनों में मुख्य अन्तर मानवीय संसाधन के साथ किए जाने वाले व्यवहार को लेकर है। इस दृष्टिकोण के दो आधारभूत स्तंभ हैं:

1. मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण
2. व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण

1. **मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण**–टेलर का वैज्ञानिक प्रबंध तथा फियोल का प्रशासनिक प्रबंध दोनों ही उत्पादन कुशलता तथाकार्य करने के स्थल पर मैत्रीपूर्ण व्यवहार स्थापित करने में असफल रहे। इनकी सुसफलता का मुख्य कारण था मानवीय संसाधन की ओर ध्यान न दिया जाए। मानवीय संबंध दृष्टिकोण की उत्पत्ति का भी यही कारण है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एल्टन मेयो ने प्रथम बार मानवीय संबंध दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। इस दृष्टिकोण को अन्तिम रूप देने के लिए मेयो ने अपने सहयोगियों के साथ कुछ प्रयोग किये। इन प्रयोग को 'हौथोर्न प्रयोग' के नाम से जाना जाता है। ये प्रयोग 1927 से 1932 के मध्य यू. ए. ए. की वैस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी के हुए थे। इन प्रयोगों के हौथोर्न में होने के कारण ही इन्हें हौथोर्न प्रयोग कहा जाता है। इस प्लांट में टेलीफोन के पुर्जे तैयार किए जाते थे और वहां 29,000 श्रमिक काम करते थे। अपने प्रयोगों के दौरान मेयो एवं साथियों ने निम्नलिखित तत्वों का अध्ययन किया:
    1. रोशनी एवं उत्पादकता में संबंध,
    2. कार्य की दशाओं एवं उत्पादकता में संबंध
    3. अनौपचारिक समूह एवं उत्पादकता में संबंध तथा
    4. आर्थिक प्रेरणाओं एवं उत्पादकता में संबंध

    इन प्रयोगों का यह परिणाम निकाला की उत्पादकता का संबंध उतना कार्य की दशाओं से नहीं जितना की भावनात्मकतत्वों से है।

2. **व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण**—मानवीय संबंध दृष्टिकोण में कहा गया है कि संतुष्टि व उत्पादकता में सीधा संबंध हैअर्थात् श्रमिक जितने अधिक संतुष्ट होगें उतना ही अधिक उत्पादन करेंगे। विज्ञान दृष्टिकोण मानवीय संबंध दृष्टिकोण का ही एक सुधरा हुआ रूप है। इसके अन्तर्गत मानवीय संबंधों के स्थान पर मानव के व्यवहार का अध्ययन किए जाने की बात कही गई है। इस दृष्टिकोण के प्रवर्तक डगलास मेकग्रेगर चेस्टर आई. बरनार्ड, रेनासिस लिकर्ट, क्रिस अगिरिस, फ्रेडरिकहर्जबर्ग, बारनेपी. बोनिस मेरी पार्कर फोलेट। अब्राहम माशलो तथा राबर्ट टेनिस बॉस है। व्यवहारात्मक वैज्ञानिकों का मुख्य योगदान नेतृत्व सदेशवाहन अभिप्रेरणा आदि क्षेत्रों में रहा। व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण 1940 के बाद प्रचलन में आया।

आधनिक दृष्टिकोण

प्रबंध विचारधारा का आधुनिक दृष्टिकोण सन् 1950 के आस–पास विकसित हुआ इसके अन्तर्गत परम्परागत तथा नव परम्परागत दृष्टिकोणों को कुछ सुधारों के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस दष्टिकोण के तीन आधारभूत स्तन हैं 1. संख्यात्मक दृष्टिकोण 2. प्रणाली दृष्टिकोण, 3. आकस्मिकता दृष्टिकोण

1. **संख्यात्मक दृष्टिकोण**—इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन सी डब्ल्य चर्च मैन तथा उसके साथियों न किया। इस दृष्टिकोण को क्रियात्मक अनुसंधान तथा क्रियात्मक के नाम से भी जाना जाता है। परम्परागत दृष्टिकोण म उत्पादन के भौतिक संसाधनों पर तथा नव परम्परागत दष्टिकोण में मानवीय संसाधन पर विशेष ध्यान दिया गया। इन दोनों दृष्टिकोण ने प्रबंधकों के समक्ष उपस्थित होने वाली अनेक गंभीर समस्याओं के समाधान के बारे में कुछ नहीं बताया। प्रबंध के संख्यात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्रबन्धकों को सुझाव दिया गया है कि वे अनेक समस्याओं का समाधान गणित एवं सांख्यिकी के सुत्रों द्वारा कर सकते है।
    1. संभावना सिद्धान्त
    2. रेखीय कार्यक्रम
    3. सम–विच्छेद विश्लेषण

    सख्यात्मक दृष्टिकोण का मुख्य गण जटिल समस्याओं को शीघ्र हल करना है। दूसरी ओर इसका एक बहुत बड़ा दोष यह है कि यह दृष्टिकोण निर्णय के विकल्प को बताता है। लेकिन निर्णय नहीं ले सकता।

2. **प्रणाली दृष्टिकोण**—यह प्रबंध का नवीनतम दृष्टिकोण है जिसका उदय 1960 में हुआ इसका प्रतिपादन चेस्टर आई. बरनार्ड, हरबर्ट ए. साईमैन व साथियों ने किया।

3. **आकस्मिक दृष्टिकोण**—आकस्मिक दृष्टिकोण का मुख्य आशय यह है कि कोई भी प्रबन्धकीय सिद्धान्त या कार्य ऐसा नहींहो सकता जो कि सभी परिस्थितियों में उचित या अनुकूल सिद्ध हो बल्कि कार्य की उपयुक्तता इस बात पर निर्भर करती है कि आन्तरिक स्थिति क्या है और वातावरण तथा अन्य परिस्थितियां क्या हैं यह दृष्टिकोण इस बात पर अधिक निर्भर करता है कि परिस्थितियां क्या है सिद्धान्तों के आधार पर नहीं। संगठनों तथा प्रबन्धों का वातावरण बहुत जटिल, अनिश्चित तथा निरूत्तर परिवर्तनशील है। अतः प्रबन्धकों का यह आधारभूत कार्य कि वे वातावरण का विश्लेषण करे तथा उसको समझे। उसके बाद ही अपनी तकनीक प्रक्रिया या क्रियाओं का प्रयोग करें किसी भी कार्य को करने की कोई एक विधि उत्तम नहीं है। उसकी प्रभावशीलता वातावरण के परिवर्तनशील दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। लेकिन वर्तमान गतिशील वातावरण को ध्यान में रखते हुए यह आशा करना ठीक नहीं है कि ये सिद्धान्त सभी परिस्थितियों में अनुकूल होंगे। इस दष्टिकोण के अन्तर्गत तकनीक समस्या तथा परिस्थिति पर निर्भर करती है। यह दृ ष्टिकोण सिखाता है कि हमें सतर्क रहना चाहिए भावनात्मक होना चाहिए तथा परिस्थितियों के अनुसार अपना दृष्टिकोण तथा कार्य प्रणाली में परिवर्तन लाना चाहिए इस विचारधारा के आधार पर प्रबंधकों के कार्यों की गतिशीलता और अधिक बढ़ जाती है वे किसी भी समस्या को हल करने के लिए किसी नए

दृष्टिकोण के बारे में सोच सकते है। तोसी तथा हैमर, ''जब एक बार संगटन में एक प्रणाली दूसरी प्रणाली के अनुसार कार्य करे तो हम कहेंगे कि यह कार्य या व्यवहार आकस्मिकता या वातावरण पर निर्भर था इस प्रकार आकस्मिकता दृष्टिकोण ऐसा दृष्टिकोण है जिससे एक उप इकाई का व्यवहार उसकी अन्य इकाईया उप इकाई के वातावरण के संबंधों पर निर्भर करता है। जिनकी उप प्रणाली के द्वारा चाहे गए परिणामों पर कुछ नियंत्रण होता है।

प्रबन्धकीय व्यवहार इस बात पर महत्व देता है कि प्रबंध एक दी हई स्थिति में वासना का तकनीक का प्रयोग करें। अतः विज्ञान का कार्य यह नहीं है कि एक दी हई परिस्थिति में क्या करना चाहिए विज्ञान यह नहीं बताता कि प्रत्येक परिस्थिति में कोई सिद्धान्त सर्वश्रेष्ठ है। यह कहा जा सकता है कि प्रबन्ध एक ओर विज्ञान है। और दूसरी और कला विज्ञान ज्ञान को कहते हैं और कला परिस्थितियों के अनुसार एक उचित व्यवहार है। जब हम परिस्थितियों पर अधिक ध्यान देकर निर्णय लेते है तो इसे आकस्मिकता का दृष्टिकोण या परिस्थित्यात्मक दृष्टिकोण कहते है।

लघु प्रश्नः

1. प्रबंधन को परिभाषित करें।
2. प्रबंधन की प्रक्रिया से आपका क्या तात्पर्य है।

लंबे प्रश्नः

1. प्रबंधन से आपका क्या अभिप्राय है। इसके स्वरूप और दायरे की भी व्याख्या करें।
2. प्रबंधन को परिभाषित करें और प्रबंधन और प्रशासन के बीच अंतर भी करें।
3. एक व्यस्त प्रबंधक की भूमिका और जिम्मेदारियों पर एक व्याख्यात्मक नोट लिखें।
4. विभिन्न लेखकों द्वारा दिए गए प्रबंधन के नव शास्त्रीय दृष्टिकोण का वर्णन करें।

यूनिट–II

योजनाः अवधारणा प्रक्रिया और प्रकार; निर्णय लेने की अवधारणा और प्रक्रिया; सीमित समझदारी; उद्देश्यों के द्वारा प्रबंधन; कॉर्पोरेट योजना पर्यावरण विश्लेषण और निदान; सामरिक सूत्रीकरण।

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, छात्र निम्नलिखित में सक्षम होंगेः

1. योजना और निर्णय लेने की अवधारणा और प्रक्रिया को समझें
2. उद्देश्यों द्वारा बंधी हुई तर्कसंगतता और प्रबंधन की अवधारणा से परिचित होना।
3. कॉर्पोरेट योजना पर्यावरण विश्लेषण और निदान और रणनीतिक कार्य की अवधारणा को समझें।

Unit–II

योजना
(Planning)

नियोजन

मनुष्य का यह स्वाभाविक लक्षण है कि वह किसी भी कार्य को करने से पूर्व उसकी योजना बनाता है। योजना बनाने की विवेक पूर्ण क्रिया को ही नियोजन कहते हैं क्योंकि किसी भी महत्वपूर्ण लक्षण को प्राप्त करने के लिए नियोजन आवश्यक है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति, फर्म, संस्था, समाज सुधारक, विशेषज्ञ, अनुसंधानकर्ता विद्यार्थी एवं सरकार आदि सभी को प्रत्येक चरण पर नियोजन का सहारा लेना होता है।

प्रबन्ध एक विस्तृत एवम् जटिल विचारधारा है। इसलिए भिन्न–भिन्न विद्वानों ने इसका प्रयोग भिन्न–भिन्न विद्वानों ने इसका प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में किया है। प्रबन्ध की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित हैंः

नियोजन की परिभाषा

1. कुन्टन तथा ओ डोनेल के अनुसार, ''नियोजन एक बौद्धिक कार्य है। कार्य के मार्गों का सचेतन निर्धारण है। निर्णयों को उद्देश्यों तथा पूर्व विचारित अनुमानों पर आधारित करना है।'' टिप्पणी–यह एक ऐसा बौद्धिक कार्य हैं जिसके द्वारा व्यावसायिक संस्थाएं अपने उद्देश्यों एवं अवसरों के अनुसार समायोजन करती है।
2. हैन्स एवं मैसी का कथन है कि ''नियोजन प्रबन्धक का वह कार्य है जिसमें उसे इस बात का पूर्व निर्णय करना पड़ता है कि उसे क्या करना है। यह निर्णय लेने की एक विशेष क्रिया है। यह बौद्धिक कार्य है जिसके लिए सृजनात्मक विचार और कल्पना की आवश्यकता है।''

   टिप्पणी–हैन्सी व मैसी ने भी नियोजन को एक बौद्धिक कार्य बताया है और कहा है कि इसके लिए ''सृजनात्मक चिन्तन तथा कल्पना शक्ति आवश्यक है।'' उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि नियोजन एक बौद्धिक क्रिया है जिसके माध्यम से प्रबन्ध अपने साधनों को निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार समायोजित करता है और लक्ष्य पूर्ति के लिए क्या करना है, कब करना है, कैसें करना है किसे करना है का पूर्व निर्धारण करता है।

नियोजन की विशेषताएं

1. **निश्चित लक्ष्य**–प्रत्येक नियोजन का उपक्रम के प्रत्येक विभाग एवं कार्यरत व्यक्तियों के लक्ष्यों से गहरा संबंध होता हैप्रत्येक नियोजक इन्हीं लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए इन्हीं के अनुरूप अपनी योजनाएं बनाता है अतः यह सत्य ही है कि जिस प्रकार प्रस्ताव और स्वीकृति के बिना प्रसंविदे की उत्पत्ति नहीं हो सकती, ठीक उसी प्रकार निश्चित लक्ष्यों या उद्देश्योंके बिना नियोजन नहीं किया जा सकता।
2. **पूर्वानुमान**–पूर्वानुमान से आशय भविष्य के गर्भ में झांकने से होता है जबकि नियोजन से तात्पर्य भविष्य को ध्यान में रखते हुए वर्तमान हुए वर्तमान में भविष्य के लिए निर्णय लेना होता है इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पूर्वानुमान एवं नियोजन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। हेनरी फेयोल ने पूर्वानुमान एवं नियोजन द्वारा के लिए Prevoyane शब्द का प्रयोग किया है। जिसका सामान्य अर्थ होता है आगे देखनाय फेयोल ने पूर्वानुमानों में

आवश्यक संशोधन करने का सुझाव इसलिए प्रस्तुत किया कि नियोजन विश्वसनीय पूर्वानुमानों के अभाव में भली प्रकार नहीं किया जा सकता। अतः नियोजन की प्रमुख विशेषता यह स्वीकार की गई है कि यह पूर्वानुमानों पर आधारित है।

3. **सर्वोतम विकल्प का चुनाव**—नियोजन की एक अन्य विशेषता यह है कि यह अपने में विभिन्न वैकल्पिक क्रियाओं में सर्वश्रेष्ठका चुनाव सम्मिलित करती है। प्रत्येक प्रबन्धक के सामने विभिन्न वैकल्पिक उद्देश्य, नीतियां कार्यक्रम एवं कार्य पद्धतियां होती हैं और उसे सभी में से संस्था के पूर्व निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति हेतु सर्वश्रेष्ठ का चुनाव करना होता है। इस प्रकार नियोजन में चुनाव सम्मिलित होता है।

4. **सर्वव्यापकता**—नियोजन की अन्य विशेषता इसकी सर्वव्यापकता है। इसकी आवश्यकता न केवल एक उपक्रम विशेष से ही होती है। अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने साधनों को निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार समायोजित करता है और भविष्य के लिए वर्तमान में निर्णय लेता है। नियोजन समस्त प्रबन्धकीय क्रियाओं में व्याप्त है। योजना बनाना प्रत्येक प्रबन्ध का अनिवार्य कार्य है। चाहे वह प्रबन्धक कम्पनी का प्रबन्ध संचालक हो या कारखाने में काम करना वाला फौरमैन। अतः यह कहना सही है कि नियामजन केवल उच्च अधिकारियों की बपौती नहीं है, यह तो संगठन के प्रत्येक स्तर के अधिकारी का कर्तव्य है।

5. **प्राथमिक कार्य** – नियोजन की अन्य विशेषता य हळै कि यह प्रबन्ध का एक प्राथमिक कार्य है, प्रबन्ध संबंधी अन्य कार्यो के पूर्व किया जाता है। इस कार्य के सम्पन्न हो हाने के पश्चात् की प्रबन्ध के अन्य कार्यो की शुरूआत होती है।

6. **लोचशीलता**—नियोजन एक निरन्तर एवं लोचपूर्ण प्रक्रिया है। प्रत्येक नियोजक को बदलती हुई परिस्थितियों के अन हा अपनी योजनाएं तैयार करनी पड़ती है क्योंकि भविष्य अनिश्चित हाता है।

7. **एकता**—फेयोल ने एकता को नियोजन की प्रमख विशेषता माना है। उनका कहना है कि एक समय में केवल एक ही जना लागू की जा सकती है। एक से अधिक यह योजनाएं लाग करने से भ्रम एवं अव्यवस्था ही उत्पन्न होगी तथा योजनाओं का महत्व समाप्त हो जाएगा आवश्यकता पड़ने पर एक ही योजना को कई उप योजनाओं में विभ जा सकता है इसलिए हम देखते है कि उपक्रमों में एक वहत योजना तैयार की जाती है और बाद में उसी के अनुरूप अनेक उप–योजनाएं तैयार कर ली जाती हैं।

नियोजन की प्रक्रिया

प्रक्रिया का अर्थ—व्यवसाय में किसी भी योजना को बनाने से पहले बहुत सोच–विचार की जरूरत होती है चाहे नियोजन छोटा हा या बड़ा उसकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि नियोजन की निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया जाए। एक अच्छे नियोजन को विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना ही नियोजन प्रक्रिया है। कन्टज एवं ओ डोनेल के अनुसार "नियोजन की प्रक्रिया में सबसे प्रमुख कार्य है व्यावसायिक समस्या को पहचानाना और उनका हल करना। परन्तु नियोजन प्रक्रिया में और भी महत्वपूर्ण बाते है जिनकी अनुपालना करना एक अच्छी योजना के लिए आवश्यक है।" अलग–अलग संस्थाओं में अलग–अलग नियोजन प्रक्रिया भिन्न हो सकती है। व्यावसायिक क्षेत्र में नियोजन प्रक्रिया के विभिन्न आवश्यक स्तरों पर भिन्न–भिन्न विद्वानों ने अलग–अलग मत प्रकट किए हैं।

जॉर्ज आर. टेरी के अनुसार नियोजन प्रक्रिया के प्रमुख कदम निम्न हैः

1. समस्या का स्पष्टीकरण।
2. अन्तर्निहित क्रियाओं के संबंध में पूर्ण सूचनाएं प्राप्त करना।
3. सूचनाओं का विश्लेषण एवं वर्गीकरण।

4. नियोजन की बाधाओं एवं मान्यताओं की स्थापना।
5. वैकल्पिक योजनाओं का निश्चय करना।
6. प्रस्तावित योजना का चुनाव।
7. प्रस्तावित योजना के लिए समय एवं विस्तृत क्रम का निर्धारण।
8. प्रस्तावित योजना के अनुवर्तन हेतु प्रावधान।

कुन्ट्ज एवं ओ डोनेल के अनुसार नियोजन प्रक्रिया में निहित आवश्यक कदम निम्न हैंः—

1. उद्देश्यों का निर्धारण।
2. नियोजन मान्यता की स्थापना।
3. वैकल्पिक कार्यपंथों का निर्धारण।
4. वैकल्पिक कार्यपंथों का मूल्यांकन
5. सर्वश्रेष्ठ कार्यपथ का चुनाव।
6. सहायक योजना का निर्माण।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नियोजन प्रक्रिया में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न बातों को सम्मिलित किया है। इन सभी के विचारा का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि नियोजन प्रक्रिया में निम्न आवश्यक कदम उठाने चाहिए—

1. **अवसरों की पहचान**—प्रबन्धकों को कोई भी योजना बनाने से पहले उस अवसर या चुनौती की सही प्रकार से पहचान कर लेनी चाहिए क्योंकि यदि हम इसकी सही पहचान करके भविष्य के लिए कार्य प्रारम्भ नहीं करेंगे तो परिणाम गलत भी हो सकते हैं। अतः योजना बनाने से पहले अवसर, समस्या या चुनौती की स्पष्ट व्याख्या और विश्लेषण कर लेना आवश्यक है।
2. **उद्देश्यों का निर्धारण**—यह एक प्रारम्भिक बिन्दु है। सर्वप्रथम, सम्पूर्ण, संगठन के उद्देश्यों को निश्चित किया जाता है तत्पश्चात्उद्देश्यों को निर्दिष्ट किया जाता है। ये भावी परिणामों को निर्दिष्ट करते हैं तथा यह दर्शाते हैं कि क्या कार्य करना है। नियोजन के उद्देश्य इस प्रकार निर्धारित किए जाने चाहिए कि उन्हें सरलता से संबंधित व्यक्तियों को समझाया भी जा सके और नियोजन भी किया जा सके।
3. **वैकल्पिक कार्य**—विधि का निर्धारण—इस चरण पर कार्य करने की वैकल्पिक कार्य—विधियों की खोज की जाती है। इस चरण का आधार यह है कि किसी भी कार्य को करने की एक विधि नहीं होती, अनेक विधियां होती हैं। अतः सर्वश्रेष्ठ विधि ली जानी चाहिए। सर्वश्रेष्ठ विधि जहां एक ओर कार्य के सफल निष्पादन को संभव बनाती है वहीं दूसरी ओर व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि करती है।
4. **वैकल्पिक कार्य**—विधियों का मूल्यांकन—किसी कार्य को करने की वैकल्पिक कार्य—विधियों की खोज करने के पश्चात् नियोजन प्रक्रिया का आगामी चरण उनका मूल्यांकन करना होता है। नियोजन प्रक्रिया का यह चरण अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। अतः नियोजन को वैकल्पिक कार्य—विधियों का मूल्यांकन करते समय पर्याप्त सावधानी, सतर्कता एवं दूरदर्शिता से काम लेना चाहिए यह कार्य उसे आधारों और लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए। अतः सर्वश्रेष्ठ का चयन करने के लिए नियोजक को इन सभी का मूल्यांकन करने के लिए नियोजक को इन सभी का मूल्यांकन तो करना ही होता है।
5. **सर्वोत्तम कार्य विधि का चयन**—नियोजन—प्रक्रिया के इस चरण में किसी कार्य को करने की विभिन्न विधियों का मूल्यांकन करने के पश्चात् सर्वोतम कार्य—विधि का चयन किया जाता है। वही कार्यविधि सर्वोत्तम मानी जाती है जो संस्था को अत्यधिक लाभों की प्राप्ति कराती है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य हैं कि कभी—कभी वैकल्पिक कार्यविधियों का मूल्यांकन करने से यह स्पष्ट होता है कि उपक्रम के लक्ष्यों की पूर्ति

के लिए कोई एक विधि उपयोगी न होकर अनेक विधियों का मिश्रण उपयोगी है तो ऐसी स्थिति में किसी एक कार्य–विधि का चयन करने के स्थान पर अनेक कार्य विधियों के मिश्रण का चयन लाभप्रद होता है।

6. **नियोजन करना**–यह नियोजन–प्रक्रिया का अन्तिम चरण है। इस चरण पर सर्वोतम कार्यविधि के चयन के आधार पर नियोजन किया जाता है। इस चरण पर नियोजन के विभिन्न पहलुओं पर विचार करके एवं प्रत्येक क्रमिक अवस्था का निर्धारण करके इसे विस्तारपूर्वक तैयार किया जाता है। इस प्रकार यह कदम नियोजन को अन्तिम रूप प्रदान करता हैं।

7. **आवश्यक उप–योजनाओं का निर्माण**–व्यवसायिक उपक्रम की मूल या व्यापक योजना का निर्माण करने तथा उसे अपनाने के बाद उसे कार्यान्वित करने के लिए अन्य उपयोजनाओं का निर्माण करना, नियोजन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण कदम है क्योंकि उपयोजनाएं मूल योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए नई नीतियों एवं कार्य विधियों को निर्धारित करने हेतु आवश्यक होती हैं।

8. **क्रियाओं का क्रम निर्धारित करना**–मूल योजना व उपयोजनाओं का चुनाव कर लेने के बाद नियोजन प्रक्रिया में सबसे अन्तिम तथा महत्वपूर्ण कदम इन योजनाओं को व्यवहारिक रूप देने हेतु उनके अन्तर्गत की जाने वाली क्रियाओं का एक निश्चित क्रम निर्धारित करना है। एक निश्चित क्रम से निर्धारित क्रम में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। क्रियाओं को यह क्रम अलग–अलग विभागों, उप–विभागों के लिए विभिन्न समयनुसार निर्धारित कर देना चाहिए। नियोजन प्रक्रिया में निहित आवश्यक चरणों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि इनके द्वारा संगठन की समस्त क्रियाओं में स्वतः समन्वय स्थापित हो जाता है। मूलभूत योजनाओं का निर्माण कार्य संबंधी व्यूह रचना करने के बाद उसके लक्ष्यों – के आधार पर की जाने वाली क्रिया के दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं। इस प्रकार नियोजनएक ऐसा केन्द्र बिन्दु है जहां संगठन के समस्त कर्मचारी तथा अन्य विभागों की क्रियाएं समन्वित की जाती हैं। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि प्रबन्धक इन समस्त क्रिया की समय–समय पर समीक्षा करे तथा उनमें समन्वय स्थापित करे। प्रबन्ध के इस कार्य में नियोजन ही सर्वाधिक सहायता कर सकता है।

नियोजन के सिद्धान्त

सिद्धान्त वे आधारभत कथन हैं जो कि प्रबन्धक के कायो का मार्गदर्शन करते हैं। इनके आधार पर ही एक अच्छा योजना का निर्माण किया जा सकेगा। नियोजन के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त निम्नलिखित हैं –

1. **उद्देश्य का सिद्धान्त**–प्रत्येक नियोजन के उद्देश्य पूर्व निर्धारित होने चाहिए तथा नियोजन ऐसा हो जो इन पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों को पूरा करने में योगदान कर सके । यदि नियोजन इन लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में कोई प्रभावशाली कार्य नही कर पाया तो ऐसे नियोजन की कोई सार्थकता नहीं रह पायेगी।

2. **सरलता का सिद्धान्त**–यह सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि योजना इस प्रकार की हो, जो सभी के समझने योग्य हो। आर.सी. डेविस द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि मानवीय क्रियाओं के श्रेष्ठ उपयोग के लिए नियोजन का सरल एवं बोधगम्य होना आवश्यक है।

3. **निरन्तरता का सिद्धान्त**–यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि नियोजन एक सतत प्रार जांच की जाती रहनी चाहिए। इसी सिद्धान्त को कून्ट्ज ने नाविक परिवर्तन का सिद्धान्त कहा है।

4. **लोचशीलता का सिद्धान्त**–सामान्यतया नियोजन एक विशिष्ट कार्य–विधि का निर्धारण करता है, तथा अनावश्यक विकल्पों का विस्तृत करता है। इससे इसकी लोचशीलता समाप्त हुई सी दिखाई देती है। लेकिन टैरी कून्ट्ज द्वारा समर्थित यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि नियोजन ऐसा हो जिसमें परिवर्तनों का समावेश किया जा सके। क्योंकि आवश्यक नहीं है कि भविष्य के पूर्वानुमान शत–प्रतिशत सही हों. इसलिए

अपेक्षित घटनाएं घटने पर नियोजन में बिना किसी असविधा के परिवर्तन लाया जा सके, इसके लिए यह गुण अवश्य होना चाहिए।

5. **व्यापकता का सिद्धान्त**—नियोजन एक व्यापक क्रिया है जिसका की उपक्रम के समस्त भागों से संबंध है। नियोजन केवल उच्च प्रबन्धको का ही उत्तरदायित्व नहीं है, बल्कि यह उपक्रम के सभी स्तरों पर मिलता है। कून्ट्ज का यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है। कि नियोजन इस प्रकार का हो जिसमें व्यापकता का गुण विद्यमान हो।

6. **वायदे का सिद्धान्त**—यह सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि प्रबन्ध के लिए उपक्रम द्वारा किये वायदे को नियोजन के साथसंबंधित करना आवश्यक है। अर्थात् नियोजन इतना विस्तृत अवश्य हो जिससे किये गये वायदे का कुशलतापूर्वक निर्वाह किया जा सके। यदि उपक्रम विस्तृत नियोजन का निर्माण करने में समर्थ न हो तो उसे वायदे की सीमा को कम करने का प्रयास करना चाहिए। यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि उच्च स्तर से लेकर निम्न स्तर तक के व्यक्तियों का वास्तविकनिश्चय ही नियोजन को प्रभावशाली बना सकता है।

7. **तथ्यों के प्रयोग का सिद्धान्त**—टैरी द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त बतलाता है कि नियोजन कल्पना, अनुभव तथा भावनाओंके स्थान पर तथ्यों तथा उनके विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों पर आधारित होना चाहिए। उनके मतानुसार कल्पना तथ्यों की प्रतिस्थापना नहीं कर सकती है।

8. **नियोजन की मान्यताओं का सिद्धान्त**—किसी भी उपक्रम की योजना मान्यताओं के अभाव में नहीं बनाई जा सकती है। ये मान्यताएं विभिन्न विकल्पों में से श्रेष्ठ विकल्प के चुनाव का आधार होती हैं। कून्ट्ज का मत है कि प्रभावशाली नियोजन की स्थापना के लिए इन मान्यताओं का निर्धारण सर्तकता तथा कुशलता से करना चाहिए। ये मान्यताएं आन्तरिक तथा बाहरी परिमाणात्मक तथा गुणात्मक एवं नियंत्रणीय हो सकती हैं।

9. **न्यायोचितता का सिद्धान्त**—यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि जो भी योजना बनाई जाये, वह तर्क—समस्त तथा न्यायोचित हो। किसी भी नियोजन के तर्क—सम्मत होने का अभिप्राय यह है कि जिस विकल्प को योजना का आधार बनाया गया हो, उसका चुनाव न्यायोचित हो। यह न्यायोचित तभी हो सकता है जबकि संबंधित मापनीय तथा अमापनीय तथ्यों को अलग—अलग कर लिया गया हो, और नियोजन से संबंधित सभी पहलुओं पर विचार कर लिया गया हो।

10. **समन्वय का सिद्धान्त**—विभिन्न प्रबन्धकों द्वारा भिन्न—भिन्न समय पर योजना तैयार की जाती हैं। नियोजन के इस उद्देश्य को, कि समस्त प्रबन्धकीय क्रियाएं एक ही कार्य की तरफ अग्रसर हों, पूरा करने के इन विभिन्न क्रियाओं में समन्वय लाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त नियोजन के विभिन्न तत्वों में सांमजस्य लाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त नियोजन के विभिन्न तत्वों में जब तक सांमजस्य स्थापित नहीं किया जायेगा तब तक उपक्रम के उद्देश्य को प्राप्त करना संभव नहीं होगा। इसलिए समन्वय को नियोजन का महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है।

11. **समय का सिद्धान्त**—नियोजन में समय बहुत महत्वपूर्ण है। यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि किसी उद्देश्य को कितने समयके भीतर प्रबन्धकों को पूरा करना है, इसके निर्धारण के लिए काफी सावधानी बरतनी होगी। इस समय का निर्धारण मूलयोजना के साथ—साथ सहायक योजनाओं को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।

12. **सम्प्रेषण का सिद्धान्त**—संभवतया नियोजन के सफल न होने में यह महत्वपूर्ण कारण है कि प्रबन्धक अपने उद्देश्यों कोभली—भांति नहीं समझ पाते। इस समस्या का निदान सम्प्रेषण में निहित है। यदि उद्देश्यों, मान्यताओं, नीतियों एवं व्यूह रचना की सही जानकारी दी जाये तो नियोजन अधिक प्रभावशाली बनेगा।

13. **मितव्ययिता का सिद्धान्त**–नियोजन की यह विधि सर्वोतम मानी जाती है जिसे अपेक्षाकृत कम खर्च पर पूरा किया जासके । अतः उपलब्ध साधनों की मदद से उद्देश्यों की प्राप्ति के साथ–साथ इस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि इनउद्देश्यों को पितव्ययितापूर्वक कैसे पूरा किया जा सकता है।

14. **सहभागिता का सिद्धान्त**–किसी भी नियोजन के प्रभावशाली निर्माण एवं क्रियान्वयन के लिए अधिक से अधिक व्यक्तियोंको नियोजन की प्रक्रिया में हिस्सेदारी दिया जाना महत्वपूर्ण हैं। इससे कर्मचारियों की प्रतिभा का पूरा उपयोग कियाजा सकेगा औरउनकी संतुष्टि में भी वृद्धि होगी।

15. **परिवर्तन की स्वीकृति का सिद्धान्त**–परिवर्तन तो जीवन का एक आधारभूत सत्य है। यह अवश्य आयेगा, अतः यह आवश्यकहै कि कार्यरत व्यक्ति इस परिवर्तन का विरोध न करें बल्कि उसका स्वागत करें। इसके लिए ऐसा वातावरण बनाना होगाजिसमें लोग परिवर्तन को स्वीकार करने में रूचि लें।

नियोजन की सीमाएं

यद्यपि नियोजन प्रबन्ध का आधारभूत कार्य है, फिर भी इसके उपयोग की कुछ सीमाएं हैं जो कि निम्नलिखित हैः

1. **इसमें लागत बहुत अधिक आती है**–कुछ आलोचकों का मत है कि नियोजन से प्राप्त लाभों की अपेक्षा समय, श्रम वधन का बहुत अधिक व्यय होता है। इसके लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति करनी होती है और प्रबन्धकों को पूर्वानुमान लगाने, विकल्पों का विकास करने, मान्यताएं निर्धारित करने आदि में काफी समय लगाना पड़ता है जिससे नियोजन अधिक खर्चीलाबन जाता है।
2. **अविश्वसनीय भावी तथ्य**–नियोजन की उपादेयता एकत्रित किए गए भावी तथ्यों की विश्वसनीयता पर निर्भर करतीहैं। लेकिन अनिश्चितता तथा परिवर्तनशीलता के कारण किसी भी नियोजक को भावी घटनाओं का पूर्णतया सही–सही अनुमान लगाना कठिन है। यदि वे मान्यताएं जिसके अन्तर्गत योजना का निर्माण किया गया था, परिवर्तित होती हैं तोनियोजन का महत्व समाप्त हो जायेगा।
3. **पहलपन की शक्ति का विनाश**–नियोजन वे चुने हुए मार्ग हैं, जिनके अन्तर्गत प्रबन्धक को उपक्रम के कार्यों का सम्पादनकरना पड़ता है। यह लोचहीनता प्रबन्धकों की पहलपन की शक्ति एवं मौलिकता को जागृत करने की सोच को अवरुद्ध करती है। लोचहीनता आन्तरिक एवं बाहरी हो सकती है। आन्तरिक लोचहीनता जहां मानवीय मनोदशा, उपक्रम की नीतियांतथा विनियोजित पूंजी नियोजन की स्वतंत्रता को कम करती हैं, वहीं पर बाहरी लोचहीनता में राजनैतिक वातावरण, गि श्रम–संघों की नीति तथा तकनीकी परिवर्तन नियोजन को लोचहीन बनाते हैं। इनसे कार्य के सरलीकरण के स्थान पर जटिलता आती है
4. **नियोजन में देरी**–आकस्मिक घटनाएं एवं कठिन परिस्थितियों में शीघ्र नियोजन के निर्माण की आवश्यकता पड़ती है।शीध्र क्रियाओं के निष्पादन की आवश्यकता के कारण वहां तथ्यों के एकत्रित करने, विश्लेषण करने तथा विकल्पों केनिर्धारण और चुनाव करने का समय नहीं मिल पाता, जिनके अभाव में नियोजन का निर्माण किया जाना संभव नहीं है।
5. **बद्धिमता का अभाव**–नियोजन मूलतः मानसिक कार्य है तथा इसका सुदृढ़ निर्माण नियोजक की मानसिक योग्यता परनिर्भर करता है। इस कार्य को केवल बुद्धिमान एवं योग्य व्यक्तियों की मदद से ही सम्पन्न किया जा सकता है, यह सामान्य बद्धि वाले व्यक्ति के कार्यक्षेत्र से बाहर होता है लेकिन इस प्रकार के बुद्धिमान एवं कुशल नियोजक प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्ध नहीं हो पाते, इसलिए नियोजन की सफलता संदिग्ध हो जाती है।

6. **सीमित व्यावहारिक मूल्य** – कुल आलोचकों का यह मत है कि नियोजन को सभी परिस्थितियों में व्यावहारिक नहीं कहा जा सकता। तथ्यों के ऊपर आधारित होने के बावजूद भी नियोज तथ्यों को इस प्रकार तोड़–मरोड़ प्रस्तुत करते हैं जो कि नियोजन की समस्त उपादेयता को समाप्त कर देता है।
7. **हिस्सेदारी का अभाव**–विद्वानों का मत है कि नियोजन के निर्माण में प्रबन्धकों, प्रशासकों, विशेषज्ञों एवं मनोवैज्ञानिकों को समुचित हिस्सेदारी मिलनी चाहिए, जिसका इस प्रक्रिया मेंअभाव पाया जाता है। यही कारण है जिसके अभाव में नियोजन अपनी सर्वव्यापकता सिद्ध नहीं कर पाता।
8. **परिवर्तन की समस्या** – तीव्र गति से परिवर्तन होने वाली अवस्था में नियोजन करना एक जटिल कार्य है। क्योंकि आने वाले परिवर्तन को प्रकृति एवं सीमा का सूक्ष्म ज्ञान करना कठिन है, इसलिए नियोजन की शुद्धता भी संदिग्ध हो जाती है। यह कार्य उस समय और कठिन हो जाता है जब दीर्घकालीन योजना का निर्माण करना हो।
9. **लोचहीनता** –नियोजनकर्ता को प्रदान की गई स्थितियों में नियोजन करना होता है। सामान्यतया इन घटकों में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। इससे लोचहीनता पैदा होती है जो कि आन्तरिक एवं बाहरी हो सकती है।

इसी प्रकार प्रबन्धकों को अनेक बाहरी वातावरण जैसे राजनैतिक दर्शन श्रम–संघों एवं तकनीकी परिवर्तनों के तत्वों का मुकाबला करना होता है जो कि बाहरी लोचहीनता पैदा करते हैं। परिणामस्वरूप नियोजन करना का कठिन हो जाता है।

नियोजन के लाभ

नियोजन प्रबन्ध का प्राथमिक कार्य है। इसकी आवश्यकता न केवल व्यवसाय में वरन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में अनुभव की जाती है। अतः यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक ही है कि प्रत्येक क्षेत्र में सम्पन्न किये जाने वाले कार्यों का प्रारम्भ नियोजन से ही क्यों होता है? इसके उतर में कहा जा सकता है कि नियोजन के अनेक लाभ हैं। नियोजन के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं

1. **उपलब्ध संसाधनों का प्रभावी उपयोग**–नियोजन का मुख्य लाभ यह है कि इसके द्वारा संगठन के उपलब्ध संसाधन अधिकतमव प्रभावशाली ढंग से सदुपयोग किये जा सकते हैं क्योंकि नियोजन समस्त उपलब्ध संसाधनों के बीच उचित समन्वय व सामंजस्य बिठाये रखता है। नियोजन से ही संगठन की विभिन्न क्रियाओं जैसे संगठनात्मक, क्रियात्मक, संचालनात्मकआदि में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग संभव हो पाता है।

2. **व्यवसायी को दिशा बोध**–नियोजन कदम–कदम पर व्यवसायी का मार्गदर्शन करता है, भावी कठिनाइयों एवं खतरों केप्रति सजग करता है तथा उन्हें दूर करना सुगम बनाता है। नियोजन के अभाव में सारा व्यवसाय अस्त–व्यस्त हो जायेगा। बिना नियोजन के एक व्यवसायी की ठीक वही स्थिति होती है जो बिना उपर्युक्त हथियार के सैनिक की बिना लक्ष्य निर्धारितकिये नाविक की बिना कलम के लेखक की।

3. **मितव्ययता**–नियोजन द्वारा, संगठन में कार्य करने की सर्वश्रेष्ठ प्रणाली का चयन करके उसके अनुसार ही सारा कार्यकिया जाता है। विभिन्न कार्यों में समन्वय व सामंजस्य स्थापित करने का पूरा प्रयत्न किया जाता है। सभी निर्णय पर्याप्त विचार–विमर्श एवं विवेकपूर्ण ढंग से लिये जाते हैं। साथ ही नियोजन के माध्यम से श्रम, सामग्री, आदि के होने वाले अपव्यय . पर रोक लगाकर मितव्ययता प्राप्त की जाती है।

4. **प्रबन्धकीय कार्यों के निष्पादन में सहयोग**–नियोजन प्रबन्ध के अन्य कार्यों जैसे संगठन, समन्वय, नियंत्रण, आदि में सहायता प्रदान करता है। नियोजन के माध्यम से संस्था का संगठनात्मक ढांचा पूर्व–निर्धारित हो जाता है, परिणामस्वरूप कर्मचारी निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप ही आवश्यक प्रयत्न करते हैं। नियोजन संस्था

के विभिन्न कर्मचारियों की विभिन्न क्रियाओं में एकरूपता स्थापित कर प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है। नियोजन प्रभावी नियंत्रण की स्थापना में भी सहायक होता है। नियोजन उद्देश्यों एवं प्रमापों को निधारित करता है और वास्तविक निष्पादन से इनकी तलना कर उचित नियंत्रण स्थापित करने का प्रयत्न करता हैं।

5. **अनिश्चितताओं में कमी**– भविष्य अनिश्चित एवं परिवर्तनशील है, अतः व्यसाय, जोखिमों से पूर्ण रहता है। नियोजन इन अनिश्चिताओं में कमी करने के साथ–साथ व्यावसायिक जोखिमों को भी कम करता है। नियोजन के आधार–पूर्वानुमान द्वारा अनिश्चितताओं को पर्याप्त सीमा तक कम करने का प्रयत्न किया जाता है। उर्विक के शब्दों ''यदि निर्णयों का कोई संबंध रखना है तो ये कुछ पूर्वानुमानों पर आधारित होने चाहिए। पूर्वानुमान नियोजन प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। जो भावी परिस्थितियों का अनुमान लगाकर अनिश्चितताओं को कम करता है। इसके अतिरिक्त अनिश्चितताओं एवं अस्थिरताओं का सामना करने के लिए नियोजन में पर्याप्त व्यवस्था की जाती है।''

6. **प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि**–नियोजन संस्था की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति को बढ़ाता है। नियोजन के माध्यम से एक संस्था एक ही व्यवसाय में संलग्न अन्य संस्थाओं से स्वस्थ प्रतिस्पर्धा बनाये रखने में सक्षम होती है। मेक्फरलैंड के अनुसार, "नियोजन के माध्यम से नए उत्पादों का निर्माण किया जा सकता है, संयंत्र क्षमता में वृद्धि की जा सकती है, कार्यविधियों में परिवर्तन किया जा सकता है, उत्पाद की किस्म में सुधार किया जा सकता है, उत्पाद की आकृति में परिवर्तन किया जा सकता है जिससे संस्था की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि की जा सकती है।''

7. **परिवर्तन के अनुसार योग्यता में सुधार**–डी.ई. दुसे के अनुसार, ''नियोजन का एक प्रमुख लाभ यह है कि इसके माध्यम से परिवर्तनों का सामना करने के लिए एक कम्पनी की योग्यता में सुधार या वृद्धि की जाती है।'' यद्यपि एक कम्पनी का नियोजन व्यावसायिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों को रोक नहीं सकता तथापि कम्पनी के प्रबंधकों को होने वालेपरिवर्तनों से सजग कर देता है और कम्पनी को इन परिवर्तनों से लाभ प्राप्त करने का सुअवसर प्रदान करता है।

नियोजन के तत्व

1. **उद्देश्य**–नियोजन का प्रथम कार्य उद्देश्य या लक्ष्य निर्धारित करता होता है। उद्देश्य परिणाम होते हैं जिनकी प्राप्ति केलिए क्रियाएं की जाती हैं। ये न केवल नियोजन के अन्तिम बिन्दु को ही स्पष्ट करते हैं, अपितु प्रबन्धकीय क्रियाओं जैसे संगठन, कर्मचारियों की नियुक्ति, निर्देशन, समन्वय, अभिप्रेरणा व नियंत्रण आदि के सभी अन्तिम बिन्दु होते हैं। इस प्रकार संस्था के उद्देश्यों का निर्धारण करना नियोजन का प्रथम चरण है। आजकल 'उद्देश्यानुसार प्रबन्ध' किया जाता है। बिना पूर्व नियोजन उद्देश्यों के एक संस्था की ठीक वही स्थिति होती है जैसे कि एक नौका वाहक बिना यह सोचे उड़ान भर ले की, उसे लन्दन जाना है या हांगकांग या जेम्सबर्ग। इसलिए उद्देश्य सभी प्रकार के नियोजन एवं अन्य प्रबन्धकीय कार्यों के प्रारम्भिक बिन्दु होते हैं।
2. **नीतियां**–वर्तमान युग बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा व्यापार का युग है। जैसे–जैसे व्यापार एवं उद्योग बढ़ता है, प्रबन्धकों की जिम्मेदारियां भी बढ़ती हैं। उच्च प्रबन्ध अपने आप सभी निर्णय तो ले सकते हैं लेकिन उन सभी को कार्यान्वित नहीं कर सकते। ऐसी दशा में उन्हें अपने सहायक अधिकारियों की सहायता लेनी पड़ती है, लेकिन सहायक अधिकारी किस आधार पर कार्य करें, उनके मार्ग–दर्शक तत्व क्या होंगे, यह समस्या उत्पन्न हो जाती है। इस दृष्टि से यह आवश्यक हो जाता है कि उच्च प्रबन्धकों के विचार, उद्देश्य तथा निर्देश कुछ संक्षिप्त, स्पष्ट मार्गदर्शक सूत्रों को कार्य–सिद्धान्तों में बदल दिया जाए। यही मार्ग–दर्शक सूत्र या सिद्धान्त नीतियां कहलाते हैं।

एक व्यावसायिक संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के साधन के रूप में नीतियों का प्रयोग किया जाता है। प्रबन्धकों द्वारा प्रबन्ध कार्य में अपनाएं जाने वाले सिद्धान्त तथा विचारों को हम नीतियां कह सकते हैं। जिनके आधार पर सहायक अधिकारी कार्य करते समय निर्णय लेते हैं तथा अपनी क्रियाओं को एक उचित दिशा प्रदान करते हैं। नीतियों को विभिन्न विद्वानों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है–

1. शार्विक के अनुसार, ''नीतियां एक सदैव चलते रहने वाले निर्णय निर्देश हैं, जो बड़े प्रबन्धकों द्वारा मध्य स्तर पर एवं लघु–स्तर के प्रबन्धकों की सहायता के लिए प्रारम्भ में ही निश्चित कर दिए जाते हैं।''
2. कण्ट्ज तथा ओ' डोनेल के शब्दों, "नीतियां सामान्य कथन अथवा समझने वाली बातें है जो निर्णय लेने के विचार–तत्वऔर कार्य का पथ–प्रदर्शन करती हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह बात स्पष्ट होती है कि नीतियां एक सामान्य कथन या समझने वाली बातें हैं जो कि एकसंगठन के सदस्यों को अपने कार्य करने के दौरान मार्गदर्शन प्रदान करती है।

3. **कार्यनीति या मोर्चाबन्दी**–अंग्रेजी का शब्द मूलतः ग्रीक भाषा का है। यह शब्द युद्ध में शत्रु की व्यूहरचना के स्तर में अपनी व्यूहरचना तथा सेना को एक विशिष्ठ ढंग से खड़े करने की रणनीति के विषय में प्रयुक्त होता था। आज मोर्चाबन्दी का उद्देश्य प्रतिस्पर्धा करने वाले व्यवसायों को ध्यान में रखकर कुछ इस प्रकार की कार्य योजना को तैयार करता है जिससे व्यापार में किसी प्रकार की असुविधा का सामना न करना पड़े। विस्तृत रूप से लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधनों को जुटाने तथा कार्य की अपेक्षित क्षमता को बढ़ाने में मोर्चाबन्दी बहुत सहायक होती हैं।

4. **नियम** – नियम भी नियोजन के आवश्यक तत्व होते हैं। एक नियम यह स्पष्ट करता है कि एक विशिष्ट परिस्थिति में एक विशिष्ट कार्य को कैसा किया जाए। कून्ट्ज एवं ओ डोनेल के अनसार, ''नियम योजना जो कि आवश्यक क्रिया इनका चयन अन्य योजनाओं की भांति विभिन्न विकल्पों में से होता है। सामान्यतः नियम योजना के सरलतम रूप हाते हैं। नियम सामान्यतः अपने ऊपर स्वयं लागू किए गए कार्य के सिद्धान्त हैं। नियमों में कोई ढील या छूट की लोचशीलता नहीं होती। उनमें स्वाधिकारी या निर्णय लेने का कोई स्थान नहीं होता। किसी एक कार्य हुए उससे इधर–उधर होने की भी इसमें लोचशीलता नहीं होती। ''धूम्रपान न करो'' यह नियम का उदाहरण है। एक नियम का सारांश है कि वह किसी विशेष कार्य को करने या न करने में प्रबन्धकीय निर्णय को स्पष्ट करता है। नियम सदा कठारे होते है और उनका सख्ती से पालन होता है। नियम का पालन न करने पर दण्ड की व्यवस्था होती है।

5. **बजट** – साधारण शब्दो में बजट का अर्थ किसी विशेष कार्यक्रम की पूर्ति में सम्मिलित उसके लक्ष्यों, प्रयत्नों और लागतों की पहले से ही सोच–समझकर निर्धारित की गई योजना से लगाया जाता है। इसमें निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समय, सामग्री धन तथा अन्य साधनों से उपयोग की एक ठोर योजना बनाई जाती है। दूसरे शब्दों में बजट ऐसी योजनाहै जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के समयबद्ध लक्ष्य निश्चित और मापनीय इकाइयों में तय किए जाते हैं और इन्हें प्राप्त करने के लिए समय, धन और अन्य साधनों के व्यय के अनमान निश्चित आंकड़ों में दिए जाते हैं । लन्दन की चाटर्ड इन्स्टीटयूट ऑफ मैनेजमेंट के अनुसार इसका अर्थ है–''निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक निश्चित समय अवधि के आरम्भ होने स पहले ही, उस समय अवधि में क्रियान्वित की जाने वाली नीतियों की वित्तीय अथवा गणनात्मक विवेचना करना।''

कून्ट्ज तथा ओ' डोनेल के अनुसार, "एक योजना के रूप में बजट अपेक्षित परिणामों की गणनात्मक शब्दों में विवेचना है।''

6. **कार्यक्रम** –कार्यक्रम भी नियोजन का आवश्ययक अंग है। कन्ट्ज एवं ओ' डोनेल के अनुसार, ''कार्यक्रम नीतियों, कार्यविधियों, विधियो, नियमों, सौंपे गए कार्य और क्रिया–समूह का संचालन करने के लिए आवश्यक तत्वों का एक सम्मिश्रम है जिन्हेंसामान्यतः आवश्यक पूंजी और क्रियान्वित बजटों का समर्थन प्राप्त होता है।'' लुइस ए. ऐलन के अनुसार, ''कार्यक्रम एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक प्रयासों की श्रेणी है जो प्राथमिकता के क्रम में व्यवस्थित होते हैं।'' कार्यक्रम किसी संस्था में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु किए जाने वाले कार्यों के क्रम का निर्धारण करते हैं। ये किसी कार्य की संक्षिप्त योजना है जिसे निर्धारित क्रम में लक्ष्यों के अनुरूप नीतियों के आधार पर, कार्यविधियों के अनुसार तैयार किया जाता है।

निर्णयन

निर्णयन का अर्थ

निर्णयन का अर्थ जानने से पहले हमें एक कहावत को अवश्य पढ़ना चाहिएय जो इस प्रकार हैः''प्रत्युत्तर देने से पूर्व एक व्यक्ति को सुनिए, निर्णय लेने से पूर्व कई व्यक्तियों को सुनिए'' उपरोक्त कहावत निर्णय के स्पष्टीकरण के लिए अपने आप में पूर्ण है। फिर भी सरल शब्दों में, किसी कार्य को करने के लिए . अनेक उपलब्ध विकल्पों में से एक उपयुक्त विकल्प के चुनने के कार्य को निर्णयन कहते हैं। निर्णयन की महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित हैंः

1. **जार्ज आर. टेरी**–''निर्णयन किसी मापदण्ड पर आधारित दो या अधिक संभावित विकल्पों में से किसी एक का चयन है।'' टिप्पणी–निर्णयन की आवश्यकता वहीं होती है जहां किसी कार्य को करने के लिए एक पूर्व निर्धारित आधार हो तथा अनेक विकल्प हों।

2. **कून्ट्ज एवं ओ' डोनेल**–''निर्णयन किसी कार्य को करने के विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का वास्तविक चयन करना है।'' टिप्पणी–किसी भी कार्य को करने के लिए कितने संभव विकल्प हो सकते हैं और फिर उन विकल्पों में से एक सर्वोत्तम विकल्प हो चुना जाए।

निर्णयन की उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि निर्णयन या निर्णय लेना एक क्रिया है जिसके द्वारा किसी कार्य को करने के संभावित विभिन्न विकल्पों में से किसी एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है। यह चयन कुछ कसौटियों पर आधारित होता है।

निर्णयन की विशेषताएं

1. **सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव**–निर्णय में विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है। प्रत्येक समस्या के समाधान की अनेक विधियां हो सकती है। प्रबन्धक द्वारा उनमें से सबसे अच्छी विधि को छांटा जाता है।
2. **विकल्पों का मूल्यांकन**–निर्णयन के लिए प्रबन्धों के पास अनेक विकल्प होते हैं। जब अनेक विकल्प होंगे तो निर्णय के माध्यम से उनका मूल्यांकन करके अर्थात् उनके गुणों व दोषों की तुना करके सर्वश्रेष्ठ को चुना जाता है।
3. **विवेकपूर्ण चिंतन**–निर्णय एक विवेकपूर्ण चिंतन प्रक्रिया है क्योंकि निर्णयन के माध्यम से जो फैसले किए जाते हैं उनकीसफलता चिन्तन अथवा सोच–विचार पर निर्भर होती है।
4. **मानवीय क्रिया**–निर्णय प्रक्रिया मूलरूप से मानवीय क्रिया है जिसके लिए पर्याप्त बुद्धि, ज्ञान, विवेक एवं अनुभव कीआवश्यकता होती है।
5. **निरन्तरता**–निर्णय का कार्य किसी न किसी रूप में भूत, वर्तमान और भविष्य सभी से जुड़ा होता है। कोई समस्या एक समय उत्पन्न होती है, दूसरे समय में उस समस्या के समाधान के लिए विचार विमर्श किया जाता है। अतः यह क्रम निरन्तर चलता रहता है।

6. **वचनबद्धता**–निर्णय लेने वाला व्यक्ति कोई भी निर्णय लेने के बाद अपने निर्णय से वचनबद्ध हो जाता है कि वह अपनेसभी कार्य अपने निर्णय के अनुसार ही करे।
7. **उद्देश्य**–निर्णय लेने का कार्य बेकार में ही नहीं किया जाता बल्कि इसके द्वारा संस्था के लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।
8. वायदे के रूप में प्रबन्धक द्वारा किया गया प्रत्येक निर्णय एक वायदा होता है अर्थात् निर्णयन के माध्यम से प्रबन्धक यह कहता है कि उसके द्वारा लिए गए निर्णय के अच्छे परिणाम होंगे।
9. **सार्वभौमिक**–निर्णयन प्रबन्धक की सार्वभौमिक पहचान होती है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रबन्धक जो भी करता है वह निर्णयन पर ही आधारित होता है और यह विशेषता सभी स्थानों पर व सभी प्रबन्धकों में पाई जाती है।
10. **नकारात्मक रूप**–निर्णयन सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह के हो सकते हैं। सकारात्मक निर्णयन का भविष्य कुछ करने का निर्णय लेने से है जबकि नकारात्मक निर्णय का अभिप्राय कुछ न करने का निर्णय लेना है।

निर्णयन प्रक्रिया

निणयन प्रक्रिया का पहला कदम उस समस्या की जानकारी प्राप्त करना है जिसके संदर्भ में निर्णय लिया जाना है। सबसे पहले यह दखना होगा कि समस्या की बात कहाँ से शुरू हुई। प्रायः पूर्ण–निर्धारित उद्देश्यों एवं वास्तविक कार्य प्रगति में अंतर आ जान के कारण ही समस्या प्रारंभ होती है। अब यह देखना होगा कि परिणामों में अन्तर का क्या कारण है ? यदि इस अतर का सही कारण पता लग जाए तो समस्या का समाधान ढूँढ़ना सरल हो जाता है।

1. **समस्या का कारण**–समस्या के कारण को समालोचक तत्व के नाम से जाना जाता है। वास्तव में देखा जाए तो समालोचनतत्व की जानकारी प्राप्त करना ही निर्णयन का आधार है। व्यवसाय के संबंध में समस्या एवं समालोचन तत्व को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। माना कि एक संस्था में किसी वस्तु का विक्रय लक्ष्य 1,00,000 इकाइयों का निर्धारित किया गया था लेकिन वास्तविक विक्रय 80,000 इकसयों का हआ अब विक्रय प्रबन्धक के सामने विक्रय में कमी की समस्या है। विक्रय में कमी के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे माल की घटिया किस्म, विज्ञापन पर कम खर्च, वस्तु का अधिक मूल्य, प्रतियोगी संस्थाओं का बाजार में प्रवेश आदि। यदि जांच–पड़ताल के बाद पता चलता है कि माल की किस्म ही विक्रय में कमी का कारण है तो यहा पर माल की किस्म समालोचक के तत्व होगा। समस्या को परिभाषित करने में समालाचक तत्व की मुख्य भूमिका रहती है। यदि इसकी सही जानकारी प्राप्त हो जाए तो समझो की समस्या का 50% समाधान हो गया। दूसरी ओर, यदि इसकी गलत जानकारी मिले तो एक के बाद एक अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाएंगी।

2. **समस्या का विश्लेषण**–समस्या को परिभाषित कर लेने के बाद प्रबन्धक द्वारा इसका विश्लेषण किया जाता है। विश्लेषण के अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि समस्या के संबंध में किन–किन सूचनाओं की जरूरत होगी और ये सूचनाएं कहाँ से उपलब्ध होंगी। उदाहरणार्थ, विक्रय में कभी की समस्या के लिए समालोचक तत्व माल की किस्म माना गया है। अब यहाँ पर माल की घटिया किस्म का विश्लेषण करने के लिए जिन सूचनाओं की आवश्यकता होगी वे इस प्रकार हो सकती हैं–क्या घटिया किस्म के कच्चे माल का क्रय किया गया था, क्या मशीनों ने ठीक प्रकार से काम नहीं किया, क्या पूर्तिकर्ताओं ने जानबूझ कर घटिया कच्चा माल भेजा है, क्या कर्मचारियों में प्रशिक्षण की कमी है, क्या किस्म नियंत्रण अधिकारी ने लापरवाही की है आदि। माना कि समस्या के विश्लेषण के आधार पर यह जानकारी प्राप्त हुई कि मशीनों के ठीक प्रकार से काम न करने के कारण माल वांछित किस्म का तैयार नहीं हो सका। समस्या के

विश्लेषण के संबंध में यह समझ लेना जरूरी है कि सभी सूचनाओं का प्राप्त होना इतना महत्वपूर्ण नहीं हैं जितना कि यह जाना कि कौन–कौन–सी सूचनाएं उपलब्ध नहीं हुई हैं ताकि अंतिम निर्णय लेते समय उपलब्ध न हुई सूचनाओं को निर्णय की सीमाओं के रूप में स्वीकार कर लिया जाए और इन्हीं सीमाओं को लेकर निर्णय में जोखिम का निर्धारण किया जा सके अर्थात् यदि कोई सूचना उपलब्ध न हो सके तो इसका अभिप्राय यह नहीं की निर्णय नहीं लिया जा सकता। निर्णय तो लिया हो जाएगा लेकिन उसमें वांछित सूचनाओं की कमी के कारण सर्वोत्तम निर्णय न लिए जाने का जोखिम रहेगा। अतः यदि केवल यह पता ल जाए कि कौन–कौन–सी सूचनाएं प्राप्त नहीं हुई हैं तो उनके महत्व को देखते हुए निर्णय में जोखिम की मात्रा निर्धारित की जा सकती है।

3. **विकल्पों का विकास**–निर्णयन प्रक्रिया का तीसरा कदम विभिन्न विकल्पों का विकास करना है। जब समस्या को परिभाषित किया जा चका है और उसके कारणों का गहन अध्ययन भी हो चुका है तो अब प्रश्न उठता है कि समस्या के समाधान के रूप में केवल एक विधि उपलब्ध है तो फिर निर्णय लेने की आवश्यकता ही नहीं होगी, क्योंकि वह विधि अपने–आप में निर्णय ही है।

निर्णयन प्रक्रिया में लिए गए उदाहरण को विकल्पों के विकास के संदर्भ में आगे बढ़ाते हए यह देखना होगा कि माल सनिया किरम के लिए जिम्मेदार मशीनों की कमी को दूर करने के लिए क्या–क्या विकल्प हो सकते हैं। मशीना का कमी को दर करने के संभावित विकल्प इस प्रकार हो सकते हैं–यदि मशीनें बहत परानी नहीं है तो उनकी मरम्मत करवा कर काम चल सकता है, यदि मशीन पुरानी है तो नई मशीनें क्रय की जा सकती है, यदि मशीनें अधिक लागत की हान के कारण उनको क्रय करना संस्था की पहुंच से बाहर हो तो उन्हें किराए पर लिया जा सकता है आदि। विकल्पों काविकास करते समय सीमित घटकों को ध्यान में रखा जाना जरूरी है। मशीन की अधिक लागत वाले विकल्प में वित्त सीमित घटक है जो प्रबन्धक को इस विकल्प को छोड़ने पर मजबूर कर सकता है। एक प्रबन्धक विकल्पों की खोज करते समय अनेक स्रोतों का प्रयोग कर सकता है, जैसे–अपना पूर्व का अनुभव, दूसरो । द्वारा अपनाए गए तरीके, तथा एकदम नया विचार। प्रस्तुत उदाहरण में प्रबन्धन नए विचार के रूप में यह सोच सकता। है कि क्या यही माल अच्छी क्वालिटी में अन्य फर्मों से सस्ते दामों पर उपलब्ध हो सकता है ? यदि हां, तो मशीनों की मरम्मत कराना, मशीनों को क्रय करना या किराए पर लेने का विचार छोड़ा जा सकता है।

4. **विकल्पों का मूल्यांकन**–विभिन्न विकल्पों को ढूंढने के बाद अगला कदम विकल्पों का मूल्यांकन करना है ताकि सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव किया जा सके। विकल्पों के मूल्यांकन के अंतर्गत उनके गुणों एवं दोषों का अध्ययन किया जाता है। मुल्यांकन करने पर प्रबन्धक को विभिन्न विकल्पों में निहित जोखिम की जानकारी प्राप्त होती है। विकल्पों का मूल्यांकन समय एवं मुद्रा के संदर्भ में किया जाना चाहिए और केवल उस विकल्प का ही चयन करना चाहिए जो सर्वाधिक मितव्ययी हो। मूल्यांकन का कार्य सरल हो जाता है यदि एक विशेष विकल्प अन्य विकल्पों की अपेक्षा अधिक अच्छा हो। दूसरी ओर, एक ही स्तर के अधिक विकल्प प्राप्त होने पर समस्या गम्भीर हो जाती है। ऐसी स्थिति में उनका और अधिक गहराई से अध्ययन किया जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि कोई भी विकल्प स्वीकार्य न हो। किसी विकल्प को स्वीकार न करना भी अपने आप में एक महत्वपूर्ण निर्णय है। ऐसी स्थिति में प्रबन्धक को किसी और उपयुक्त विकल्प की खोज करनी चाहिए।

प्रस्तुत उदाहरण में बताए गए सभी संभावित विकल्पों के गुणों एवं दोषों की जांच की जाएगी। जैसे–पहले विकल्प में यह देखा जा सकता है कि मरम्मत पर कितना व्यय होगा और इसका प्रभाव कितने समय तक रहेगा। दूसरे विकल्प में यह देखा जा सकता है कि क्या मशीनें किराए पर उपलब्ध हैं, किराया कितना होगा, मशीनें कितने समय तक किराए पर मिल सकेंगी। इसी प्रकार तीसरे विकल्प में देखा जा सकता है कि तैयार माल ही खरीदा जाए तो संस्था के स्वयं माल न तैयार करने का ग्राहकों पर क्या प्रभाव रहेगा।

इस प्रकार इन सभी बातों की जानकारी एकत्रित की जाएगी। सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन–विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक विकल्प प्रस्तुत समस्या के समाधान में कहाँ तक सहायक हो सकता है। निर्णयन प्रक्रिया के पांचवें चरण पर विभिन्न विकल्पों के संभावित परिणामों की तुलना करके सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है।

5. सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करते समय प्रबन्धक अपने अनुभव एवं प्रयोग की सहायता लेता है। प्रबन्ध अपने अनुभव की सहायता तब ले सकता है जबकि उसे पहले कभी इसी तरह की समस्या का सामना करना पड़ा हो। कई बार विकल्पों को व्यवहार में प्रयोग करके देखा जाता है और अनुकूल परिणाम प्राप्त होने पर ही उनके बारे में विचार किया जाता है। प्रस्तुत उदाहरण में, माना की माल की किस्म को सुधारने के लिए मशीनों की मरम्मत करवाने वाले विकल्प को चुना गया। इस प्रकार किसी विकल्प का अंतिम चयन कर लेने को निर्णय कहते हैं। यहाँ पर निर्णय तो ले लिया गया है लेकिन निर्णयन प्रक्रिया अभी समाप्त नहीं हुई है। इसके बाद भी निर्णय को लागू करना और उसके प्रभाव को देखना जरूरी होता है।

6. **निर्णय को लागू करना**–जब एक बार विकल्प का चयन कर लिया गया है इसके पश्चात अगला कदम उसे प्रभावशाली ढंग से लागू करना है। क्योंकि निर्णय को प्रभावशाली बनाने के लिए अन्य लोगों की कार्यवाही की आवश्यकता है इसलिए निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

   1. **प्रभावशाली संदेशवाहन**–निर्णय का प्रभावशाली संदेशवाहन जरूरी है। इसकी स्पष्ट सूचना उन सभी व्यक्तियों तक पहुंचा देनी चाहिए जो इसको कार्यवाही में परिवर्तित करेंगे अर्थात् निर्णय को वास्तविक रूप देंगे।

   2. **कर्मचारियों की स्वीकृति प्राप्त करना**–निर्णय को प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिए संबंधित कर्मचारियों से स्वीकृति लेना भी जरूरी है। कर्मचारियों की स्वीकृति एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न विकल्पों का विकास करते समय उनसे सलाह कर ली जाए।

   3. **निर्णय लागू करने का ठीक समय**–प्रत्येक निर्णय कुछ न कुछ परिवर्तन लाता है और कर्मचारियों का स्वभाव परिवर्तन का विरोध करना होता है। इसलिए निर्णय उसी समय लागू करना चाहिए जब सब कुछ ठीक–ठाक हो अर्थात् उसके विरोध किए जाने का कोई डर न हो।

7. अनुसरण–निर्णयन प्रक्रिया का अंतिम चरण अनुसरण करना है। जैसे ही निर्णय को कार्यवाही में बदला जाता है तो परिणामप्राप्त होने शुरू हो जाते हैं। ये परिणाम आवश्यक रूप से इच्छित परिणामों के अनुकूल होने चाहिए। वास्तविक और इच्छित परिणामों के अन्तर को देखने से यह पता चलता है कि निर्णय को उचित रूप से लागू कर दिया गया है या नहीं। यदि परिणाम अच्छे नहीं है तो इसका अभिप्राय यह है कि फिर से एक समस्या आ खड़ी हुई है और निर्णयन प्रक्रिया को पुनः प्रारंभ करना होगा। इस प्रकार पहले लिए गए निर्णय में संशोधन करना होगा। पुनः उसके परिणम की जांच की जाएगी और यदि परिणाम अनुकूल है तो निर्णय को लागू रहने दिया जाएगा। लेकिन विपरीत परिणाम आने पर पुनः संशोधन की जरूरत होगी। अतः अनुसरण भी निर्णयन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है।

निणयन प्रक्रिया के उपरोक्त चरणों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि एक आदर्श निर्णय लेने के लिए कौन–कौन सी क्रियाएं की जानी आवश्यक है। परन्तु यहां विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रत्येक निर्णय में उपरोक्त सभी चरणों को पराक निर्णय के विभिन्न चरणों को समस्या की प्रकृति के अनुसार कम–ज्यादा किया जा सकता है।

निर्णयन का महत्व

छोटे एवं बड़े सभी व्यवसायों में परिस्थिति कर्मचारियों एवं वातावरण में परिवर्तन होता रहता है तथा विभिन्न प्रकार की आकस्मिक घटनाएँ घटती हैं। इन बदलती हुई परिस्थितियों में व्यवसाय को चालू रखने के लिए निर्णयन अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए यही यह कहा जाता है कि व्यवसाय की सफलता प्रायः निर्णयन पर निर्भर करती है। इस कार्य को प्रबन्धक का मुख्य कार्य कहा जाता है कि व्यवसाय की सफलता प्रायः निर्णयन पर निर्भर करती है। इस कार्य को प्रबन्धक का मुख्य कार्य कहा गया है। जॉर्ज आर, टैरी के मतानुसार, ''प्रबन्धक होने की यदि कोई एक सर्वव्यापक कसौटी है तो वह णयन के महत्व को बतलाते हए कोपलैण्ड ने प्रबन्ध को मख्यतः निर्णय लेने की प्रक्रिया कहा है। जो कछ भी। एक प्रबन्धक करता है, वह विभिन्न निकायों में से सर्वोत्तम विकल्प के चनाव से ही सम्बन्धित होता है। जहाँ भी गणना तथा सोच–विचार की आवश्यकता होती है, निर्णयन आवश्यक हो जाता है। आधुनिक व्यावसायिक प्रबन्ध में इसका बहुत महत्व है –

1. प्रबन्ध के आधारभूत कार्यों का निष्पादन निर्णय लेना प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण पहलू है। बिना निर्णय लिए किसी संगठन में कोई भी कार्य निष्पादित नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक उपक्रम के नियोजन से नियन्त्रण तक के समस्त कार्यो में निर्णयन आवश्यक है। निर्णयन के अभाव में नियोजन. संगठन, उत्प्रेरण, समन्वय और नियन्त्रण के कार्यों का सम्पादक नही किया जा सकेगा। इसलिए ही तो टैरी निर्णयन को प्रबन्ध कि समानार्थक माना है।

2. प्रबन्धको की सफलता का मापक–किसी भी संस्था के प्रबन्धक की सफलता एवं कार्यक्षमता निर्णय से ही मापी जा सकती है। क्या संस्था के प्रबन्धक कार्यकुशल, योग्य तथा विवेकशील है? इसका आधार निर्णयन ही है। प्रबन्धक जितने श्रेष्ठ निर्णय लेता है उसे उतना ही सफल, विवेकशील, योग्य तथा दूरदर्शी प्रबन्धक माना जाता है। यदि प्रबन्धकों द्वारा लियेगये निर्णयों से उपक्रम को नुकसान होता है, तो उन्हें असफल करार दिया जा सकेगा।

3. प्रबन्ध के पेशाकरण पर बल–निर्णयन एक मानवीय मानसिक क्रिया है। प्रभावशाली निर्णयन, निर्णयनकर्ता की दक्षतातथा कुशलता पर निर्भर करता है। व्यवसाय की सफलता का मापक होने के कारण आवश्यक है कि निर्णय अच्छे हों और अच्छे एवं प्रभावशाली निर्णय वे ही प्रबन्धक ले सकते हैं जो इस कार्य के विशेषज्ञ हों, इसलिए यह प्रबन्ध के पेशाकरण पर बल देता है। जॉन मैक्डोनाल्ड के इन शब्दों से कि एक व्यावसायिक प्रबन्धक एक पेशेवर निर्णयनकर्ता होता है। प्रबन्ध के पेशाकरण की बात स्पष्ट होती है।

4. उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग–श्रम, मुद्रा मशीन, सामग्री आदि के जो साधन उपक्रम के पास उपलब्ध है, उनका श्रेष्ठतम तथा अधिकतम उपयोग निर्णयन की प्रभावशीलता पर निर्भर करता है। यदि निर्णय प्रभावशाली तथा व्यावहारिक है तो इन साधनों का अधिकतम विदोहन किया जा सकेगा और यदि निर्णय भ्रमात्मक तथ्यों तथा अविवेक पर आधारित है तो उपलब्ध साधनों का सदुपयोग सम्भव नहीं हो सकेगा। इसलिए यदि समस्त साधनों के उपयोग को अधिकतम करना है तो प्रभावशाली निर्णयन की प्रक्रिया का निर्माण करना होगा। बान्त विवेचन से स्पष्ट है कि उपक्रम का स्वरूप कैसा भी हो, उसे अपने निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उपलब्ध साधना के अधिकतम उपयोग के लिए, प्रबन्धको की सफलता को मापने के लिए तथा प्रबन्ध के विभिन्न कार्यों के निष्पादन के निर्णयन को आधार बनाना होता है। यही कारण है कि निर्णयन को प्रबन्ध की आत्मा कहा गया है।

निर्णयन में सीमित विवेकयुक्ता
(Counded Rationality in Decision Making)

यदि किसी भी चुनाव वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता तो इस निर्णय को हम विवेकपूर्ण निर्णय कहते है। कुछ बातों के समान रहने पर ही हम यह कह सकते है कि कोई भी व्यक्ति विवेकपूर्ण ढंग से कार्य पर रहता है। इस सम्बन्ध में पहली बात होती है लक्ष्य की व दूसरी बात होती है वैकल्पिक उपायों की पूरी समझ और तीसरी बात होती है विकल्पों का विश्लेषण तथा मूल्यांकन और अन्तिम महत्वपूर्ण बात उन विकल्पों में से किसी एक सर्वश्रेष्ठ को चुनने की है इस प्रकार, यदि कोई भी निर्णय लिया जाता है तो उसे हम विवेकपूर्ण निर्णय कहेंगे। लेकिन निर्णयन की इस विशेषता को लेकर आर्थिक प्रबन्ध विशेषज्ञों में मतभेद है। इस संबंध में दो विचारधाराएं प्रचलित हैं–i. आर्थिक मानव मॉडल ii. प्रशासनिक मानव मॉडल। iii. आर्थिक मानव मॉडल पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं है।

प्रशासनिक मानव मॉडल या परिबद्ध विवेकी मॉडल

चूँकि एक व्यक्ति के समक्ष अनेक प्रकार की समस्याएँ आती है' प्रभावित होती है। इसलिए वह सीमित विवेक के आधार पर लिए गए निर्णयों पर समझौता कर लेता है। हरवर्ट ए. साइमन ने इसे परिबद्ध विवेकी मॉडल या प्रशासनिक मॉडल का नाम दिया है। इस मॉडल की यह मान्यता है कि जो मानव श्रेष्ठ हल खोजने का प्रयास करता है वह समान्यता कुछ कम श्रेष्ठ हल पर ही अपने को सन्तुष्ट महसूस करता है।

यह प्रतिरूप पूर्णतया विवेकपूर्ण निर्णय करना इसलिए सम्भव नहीं मानता क्योंकि मानव में अनेक बौद्धिक, भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक सीमाएँ विद्यमान रहती हैं। सभी समस्याओं को वैज्ञानिक ढंग से परिभाषित किया जाना सम्भव नहीं है। वह परिवर्तनशील है। सभी प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त किया जाना सम्भव नहीं है और प्रबन्धकों के पास समय का अभाव पाया जाता है। अतः प्रबन्धक पूर्ण विवेकपूर्ण निर्णयन के स्थान पर अनुकूलतम विवेकपूर्ण निर्णयन पर सन्तुष्ट हो जाता है। इसी को परिबद्ध या सीमित विवेकपूर्णता की अवधारणा मानते हैं इस अवधारणा के अन्तर्गत निर्णयन प्रतिक्रिया की निर्धारण में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई है।

प्रथम–व्यक्तियों द्वारा सम्भावित विकल्पों के विकास एवं उनके मूल्यांकन के आधार पर एक विकल्प के चुनाव के स्थान पर एक समय में प्राथमिकता के आधार पर एक विकल्प का ही मूल्यांकन किया जाता है। अतः विकल्प का मूल्यांकन क्रमबद्ध तरीकेसे होता है।

द्वितीय–यह सन्तोषजनक हलों की उच्च सम्भावना वाले क्षेत्रों में से ही विकल्पों की खोज करती है। यह समस्या के निदान के लिए स्वतःशोध नियम को अपनाती है।

तृतीय–यह मॉडल निर्णयनकर्ता को सन्तोषी मानता है वह दी हुई परिस्थितियों में ऐसा विकल्प खोजता है जो सन्तोषजनक हो। सन्तोषजनक विकल्प वह विकल्प है जो उचित हो। इस प्रतिरूप से निर्णयन में निम्नलिखित कदम निहित माने जाते हैं।

1. समस्या की परिभाषा
2. अपेक्षाओं के उचित स्तर का निर्धारण
3. स्वतःशोध नियम को अपनाना
4. उचित विकल्प न विकसित किये जाने की स्थिति के स्तर में कमी लाना तथा नये वैकल्पिक हल की तलाश करना
5. विकल्प की स्वीकार्योक्ति का मूल्यांकन ।

6. पहचाने गये विकल्प के स्वीकार न किये जाने की स्थिति में नये विकल्प की खोज करना तथा उसकी व्यवहारिकता कामूल्यांकन करना, समाधान का कार्यान्वयन तथा

7. कार्यान्वयन का अनुवर्तन करना।

यह मॉडल विवरणात्मक है जो कि स्पष्ट करना है कि निर्णयन वास्तविकता में कैसे लिए जाते हैं। यह मॉडल इसलिए भी अच्छा माना जाता है क्योंकि यह स्वभाव में सन्तोषजनक हल का पक्षधर है। इसमें निर्णयनकर्ता न तो पूर्णतया भावुक होता है और न ही पूर्ण विवेकी। यह लोचशील मॉडल है जिसमें व्यापक खोज की आवश्यकता नहीं होती है। इसे मितव्ययी भी माना जाता है।

उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध

एम.बी.ओ. का अर्थ एवं परिभाषाएँ

वर्तमान में प्रबन्ध के क्षेत्र में जिन नवीन तकनीकों का प्रयोग किया जाने लगा है। उनमें से एम.बी.ओ. भी एक प्रमुख तकनीक है आज यह तकनीक सर्वाधिक चर्चा का विषय बनी हुई है। साधारण शब्दों में एम.बी.ओ. का अर्थ है प्रत्येक क्रिया उद्देश्य परकहो अर्थात् सर्वप्रथम सामान्य उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए किसी और तत्पश्चात् उनकी प्राप्ति हेतु आवश्यक प्रयास करना–बुद्धिमतापूर्ण कदम नहीं होता है। इससे असफल उसके उद्देश्य निर्धारण करना और उनकी प्राप्ति हेत उपयुक्त प्रबन्ध व्यव विद्वानी द्वारा इस तकनीक के सम्बन्ध में निम्न विचार प्रकट किये गए जॉर्ज एस. ऑर्डियन के अनुसार, ''संक्षिप्त में उद्देश्यानुसार सकता है। जिसके द्वारा एक संगठन के प्रवर सब अवर अप प्रत्यक के अपेक्षित परिणामों के सन्दर्भ में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के विस्तृत संचालित करने एवं उसके प्रत्येक सदस्य के योगदान करने हेतु इन उपाय टौसी एवं कैशल के अनुसार, ''उद्देश्यानुसार प्रबन्ध कहलाता है। विभिन्न विद्वानों द्वारा इस तकनीक के सम्बन्ध में निम्न प्रकट किये गए हैं –

जॉर्ज एस. ऑर्डियर्न के अनुसार, "संक्षिप्त में उद्देश्यानुसार प्रबन्ध अथवा इस पद्धति का एक प्रक्रिया के रूप में वर्णन किया जा सकता है। जिसके द्वारा सगठन के प्रवर सब अवर प्रबन्धक संयक्त रूप से उनके सामान्य लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं, प्रत्येक के अपेक्षित परिणामों के सन्दर्भ में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के विस्तृत क्षेत्र को परिभाषित करते हैं तथा उस इकाई को सचालित करने एवं उसके प्रत्येक सदस्य के योगदान करने हेतु इन उपायों को मार्गदर्शन के रूप में प्रयोग करते हैं।''

टौसी एवं कैशल के अनुसार – "उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की एक एक प्रक्रिया है जिसमें प्रबन्ध त या एव उद्देश्यों के समूह के संबंध में मिलकर सहमत होते हैं जो अधीनस्थों के कार्य–निष्पादन एव मूल्यांकन हेतु आधार (मापदंड) के रूप में प्रयोग में लाये जाऐगें।''

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों से विचारों के स्पष्ट हो जाता है कि उद्देश्यानुसार प्रबन्ध एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी संस्था के प्रबन्धक एवं अधीनस्थ आपस में मिलकर सामान्य उद्देश्यों के अनरूप, विभिन्न क्रियाओं के उद्देश्यों का निर्धारण करते है और फिर उनकी प्राप्ति हेतु प्रबन्धकीय क्रियाओं का संचालन करते हैं जिससे संसाधनों का प्रभावकारी उपयोग किया जा सके और व्यक्ति, संगठन तथा पर्यावरण में एकीकरण स्थापित किया जा सके।

यहाँ यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि उद्देश्य सामान्य और विशिष्ट हो सकते हैं। सामान्य उद्देश्य व्यापक तथा दीर्घकालीन होते हैं जबकि विशिष्ट उद्देश्य, सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्धारित अल्पकालीन अथवा मध्यवती अन्तिम परिणाम होते है। सर्वप्रथम दीर्घकालीन उद्देश्यों का निर्धारण करना होता है । मध्यवर्ती अथवा अल्पकालीन उद्देश्य, दीर्घकालीन उद्देश्यों की पृष्ठभूमि में निर्धारित किये जाते हैं।

एम. बी. ओ. की विशेषताएं निम्नलिखित हैं

1. **वाछित उद्देश्यों का निर्धारण**–प्रबन्ध की इस व्याख्या में सर्वप्रथम संस्था के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है जिन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उस संस्था की स्थापना की जाती है। इतना ही नहीं, कर्मचारी वर्ग के भी लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं। जिससे कर्मचारी उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्ष प्रयत्न कर सकें।

2. **कर्मचारियों को प्रेरणा देना**–इस विधि में कर्मचारियों का प्रेरणा देने का भी प्रावधान होता है अतः कर्मचारियों को समय–समय पर आवश्यकतानुसार एवं अवित्तीय प्रेरणाएं दी जाती है। इन प्रेरणाओं से प्रभावित होकर कर्मचारी अपनी शक्ति से कार्यअधिक करने का प्रयत्न करते हैं।

3. **टीम भावना**–संस्था के सभी अधिकारी एवं कर्मचारियों एक टीम भावना से कार्य करते है अतः इन दोनों स्तरों के बीच का अन्तर अपने आप समाप्त हो जाता है। क्योंकि दोनों ही पक्ष समन्वित योजनाओं के आधार पर कार्य करते हैं।

4. **उत्तरदायित्व की भावना जागृत होना**–जब किसी व्यक्ति में उत्तरदायित्वों की भावना जागृत हो जाती है तब वह अपनेकार्यों को अच्छी प्रकार से कर सकता है और यह विधि इस कार्य में पूर्ण योगदान देती है।

5. **प्रयोगकर्ता को अधिक महत्व**–इस विधि में इनका प्रयोग करने वाले व्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाता है। इसलिए प्रत्येक स्तर पर परीक्षण की व्यवस्था की जाती है क्योंकि इस विधि के समर्थक इस बात को मानते हैं कि कोई भी नवीन विधि इसके प्रयोग कर्ता से अधिक अच्छी भी हो सकता।

6. **क्रियात्मक उद्देश्य**–किसी संस्था के कार्यकरण में उसके क्रिया उद्देश्यों का विशेष महत्व होता है और इस विधि में क्रियात्मक उद्देश्य और संस्था के उद्देश्यों में इस प्रकार से सामन्जस्य स्थापित किया जाता है कि यदि क्रियात्मक उद्‌देश्यों की प्राप्ति में कोई संदेह होता है तो उसमें तुरन्त परिवर्तन कर दिया जाता है।

7. **कार्यकरण के पूर्व निर्धारण स्तर**–इस विधि में कार्यकरण के स्तर परक स्तर पर इस प्रकार निर्धारित किए जाते है कि संस्था के मूल उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त कर लिया जा सके।

8. **संगठन**–संरचना–इस विधि में इस प्रकार को संगठन संरचना की जाती है कि सभी प्रबन्धकों को अपने–अपने स्तर परसभी का आवश्यक निर्णय लेने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है और इतना ही नहीं वे किसी भी समय किसी भी स्तर परस्वतंत्रतापूर्णक निर्णय ले सकते हैं।

10. **प्रबन्धक के कार्यों का मूल्यांकन**–इस विधि में प्रबन्ध के कार्यों का भी समय–समय पर मूल्यांकन किया जाता है जिससे किसी भी समय आवश्यक सुधार किया जा सके।

एम. बी. ओ. की प्रक्रिया

सौद्देश्य प्रबन्ध की अवधारणा का कार्य रूप प्रदान करने की व्यवस्था को ही सौद्देश्य प्रबन्ध की प्रक्रिया कहा जाता है। सौद्देश्य प्रबंध की प्रक्रियां इस अवधारणा में निहित उन कदमों को स्पष्ट करती है जिनकी मदद से सौद्देश्य प्रबन्ध का व्यापक प्रबन्ध को एक तंत्र के रूप में कुशलपूर्वक काम में लिया जा सकता है इस प्रक्रिया में उद्देश्यों का प्रारिम्भक निर्धारण, महत्वपूर्ण परिणाम क्षेत्रों की पहिचान, अधीनस्थों के उद्देश्यों का संयुक्त रूप से निर्धारण, विशिष्ट कार्य योजना तैयार करना तथा निष्पादन की समीक्षा करने के कदम सम्मिलित किए जाते है। सौद्देश्य प्रबन्ध की प्रक्रिया को चित्र की सहायता से समझा जा सकता है।

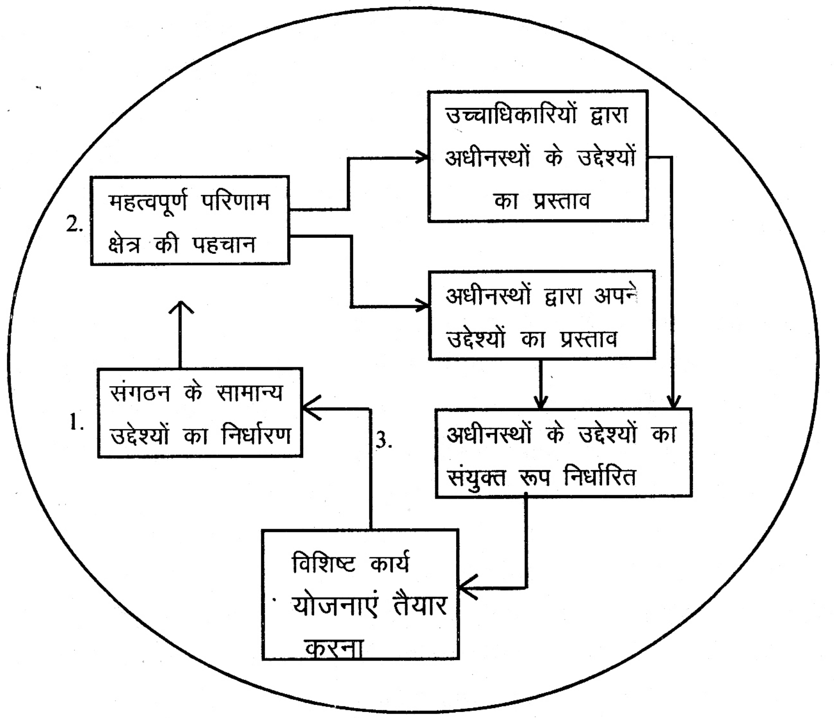

सौद्देश्य प्रबन्ध की प्रक्रिया

1. संगठन के उद्देश्यों का प्रारम्भिक निर्धारण–संगठन के उद्देश्यों का प्रारम्भिक निर्धारण करना सौद्देश्य. प्रबन्ध की प्रक्रिया का प्रथम चरण है। उद्देश्यों का आशय अपेक्षित परिणामों से है। हमारा व्यवसाय क्या है' तथा 'हमारा व्यवसाय क्या होना चाहिए' इसका सार उद्देश्यों के निर्धारण में निहित है। संगठन के उद्देश्यों, नियोजन की मान्यताओं एवं संगठन के प्रयोजनों में निहित माने जाते हैं। यह उच्च प्रबन्धकों की जिम्मेदारी है कि उपक्रम की अच्छाइयों, कमियों, अवसरों एवं धमकियां या आशंकाओं का विश्लेषण कर यह विचार बनाए कि हम क्या करना चाहते हैं उद्देश्यों का निर्धारण निर्धारित अवधि में प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों के रूप में किया जाता है। सामान्यता उद्देश्यों का निर्धारण उच्च स्तर से प्रारम्भ होता है और निम्न स्तरीय प्रबन्ध तक चलता है। ये उद्देश्यों का निर्धारण प्रारम्भिक है। जिसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन, संशोधन एवं सुधार किया जा सकता है।

2. महत्वपूर्ण परिणाम क्षेत्रों की पहचान–प्रत्येक प्रबन्ध कुछ परिणामों की प्राप्ति के लिए कार्य करता है वे परिणाम क्षेत्र जो उपक्रम की उत्तरजीविता, विकास एवं स्थायित्व के लिए नाजुक हैं उन्हें ही महत्वपूर्ण परिणाम क्षेत्रों (KRA) (KRAS)के नाम से जाना जाता है। उदाहरण के लिए उत्पादन के नाम से जाना जाता है। उदाहरण के लिए उत्पादन प्रबन्ध के लिए किस्म, मात्रा, सामग्री की लागत श्रम शान आदि महत्वपूर्ण परिणाम क्षेत्र हैं तो विपणन प्रबन्ध के लिए विक्रय, नवीन ग्राहक बनाना, बाजार अनुसंधान, मला नाति वितरण तंत्र, विज्ञापन के महत्वपूर्ण परिणाम क्षेत्र हो सकते है।

कुछ महत्वपूर्ण परिणाम क्षेत्र सभी व्यवसायों के समान होते हैं पीटर ड्रकर के अनुसार ऐसे महत्वपूर्ण परिणाम क्षेत्र हैं। I. लाभदायकता, II. बाजार स्थिति, III. नवाचार, IV. उत्पादकता, V. कर्मचारियों की कार्यक्षमता, VI. वितीय एवं भौतिक साधन, VII. प्रबन्धकों की कार्यक्षमता एवं विकास तथा VII.लोक उत्तरदायित्व। गुजरात औद्योगिक विकास निगम नेयाग, लागत में कमी, साधनों का उपयोग संगठन विकास. ग्राहक सेवा, साधन योजना एवं विकास विविधी उपक्रम की संकल्पना तथा ग्रामीण औद्योगिक साधनों को महत्वपूर्ण परिणाम क्षेत्र के रूप में

स्वीकार किया था। सद्दिश्य प्रबन्ध के लिए यह चरण महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे संगठन अपने सीमित साधनों को उन क्षेत्रों में उपयोग कर सकेगा। सभी प्रबन्धकीय कार्य परिणामों की प्राप्ति के लिए समान योगदान नहीं करते हैं।

3. अधीनस्थ के उद्देश्यों का संयुक्तरूप से निर्धारण–सामान्य उद्देश्यों के निर्धारण एवं महत्वपूर्ण परिणाम क्षेत्रों की पहचान कर लेने के पश्चात् अधीनस्थों के उद्देश्यों के निर्धारण का कदम आता है। उपक्रम के सामान्य उद्देश्यों को क्योंकि अधीनस्थों द्वारा कार्य रूप दिया जाता है। इसलिए इनके उद्देश्यों का स्पष्ट निर्धारण किया जाना सौद्देश्य प्रबन्ध के विचार के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है। इसके लिए उच्चाधिकारी अधीनस्थों के लिए उद्देश्यों का प्रस्ताव करते हैं और अधीनस्थों द्वारा अपने उद्देश्य स्पष्ट किये जाते है इसके पश्चात इन पर विचार विमर्श किया जाता है और पारस्परिक सहमति के आधार पर अधीनथों के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। चंकि सौद्देश्य प्रबन्ध, प्रबन्ध का प्रजातंत्रीय दर्शन है, इसलिए अधीनस्थों के उद्देश्यों का निर्धारण उच्च अधिकारियों एवं अधीनस्थों द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता है। अधीनस्थों में प्रतिबद्धता आय और उद्देश्यों का निर्धारण वास्तविकता से परे हो इसलिए भी उद्देश्यों का संयुक्त रूप से निर्धारण किया जाना आवश्यक है।

4. विशिष्ट कार्य योजनायें तैयार करना–उद्देश्य की वास्तविकता प्राप्ति के लिए उन्हें विशिष्ट कार्य योजना में परिवर्तित करना आवश्यक हो। यह वे योजनाएं हैं जो यह स्पष्ट करती है कि उद्देश्यों की प्राप्ति कैसे हो सकेगी? इसके लिए इन योजनाओं में क्या क्रियाएं सम्पन्न की जानी हैं तथा किस समयवधि में सम्पन्न की जानी है? का स्पष्ट उल्लेख किया जाता है। प्रत्येक कार्य योजना में I. उपर्युक्त व्यूहरचनाओं का निर्धारण करना II. उत्तरदायित्वों का बतलाना III साधनों का आवंटन करना तथा IV अनुसूचित करने के कदम सम्मिलित होते है।

उपर्युक्त व्युहरचना का आशय व्यापक कार्य योजना से है। जिससे उद्देश्यों की प्राप्ति आसान हो। संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के उतर दायित्वों को बतलाना तथा सीमित साधनों का इस तरीके के आंबटन करना ताकि उनका अनुकूलतम उपयोग किया जा सके। अनुसूचियन करने का अभिप्राय सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओं की क्रमबद्धता को स्पष्ट करने से है। निष्पादन की समीक्षा–निष्पादन की समीक्षा में अपेक्षित परिणामों में वास्तविक परिणामां की तुलना करने, विचलनों का पता लगाने उनका विश्लेषण करके, सुधार के कदम सुझाने एवं सुधारों को कार्यान्वित करके कदम सम्मिलित किये जा सके हैं इसे निम्न चित्र के माध्यम से भी स्पष्ट किया जा सकता है।

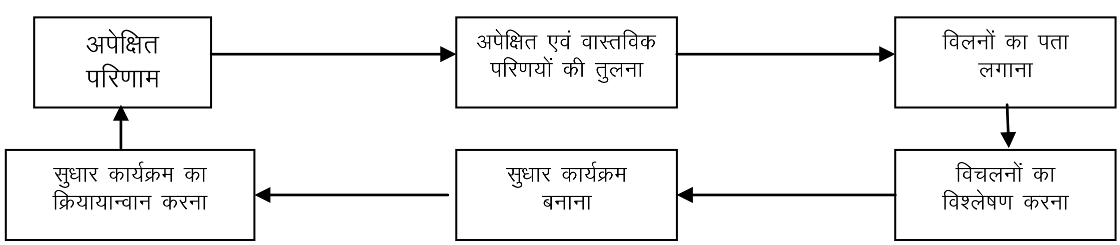

निष्पादन की समीक्षा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया जिससे न केवल हम प्राप्त किये गये परिणामों का पता लगा सकेंगे बल्कि उनमें सुधार की आवश्यकता हो उसे जान भी सकेंगे तथा उन्हें लागू भी कर सकेंगे तथा उन्हें लाग सकेंगें। निष्पादन की समीक्षा उद्देश्य निर्धारण, संगठन के ढाचे तथा प्रक्रिया में किये जाने वाले परिवर्तन, महत्वपूर्ण परिणाम क्षेत्र की पहचान तथा कार्य योजनाओं के पुनः निर्धारण के लिए आधार के रूप में कार्य करेगा। इसे बहुत से विद्वान उद्देश्य की पुनः 'चक्रीय' बनाने के नाम से पुकारते हैं।

एम. बी. ओ. द्वारा लाभ

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध आजकल व्यवसायिक प्रबन्ध के क्षेत्र में एक चर्चा का विषय है। इसकी लोकप्रियता दिन प्रति–दिन बढ़ती जा रही है। व्यवहार में भले ही इसका प्रयोग कम किया जाता है। प्रबन्ध की यह प्रणाली बहुत अधिक लाभप्रद मानी जाती है कन्टज तथा 'डोनेल के अनुसार इसके प्रमुख लाम निम्न प्रकार हैं

1. **अच्छा प्रबन्धन**–प्रबन्धन की यह प्रणाली प्रबन्धकों की कार्यकुशलता बढ़ाती है। नियोजन के बिना कार्यान्वित किए जासकने योग्य उद्देश्य का निर्धारण नहीं किया जा सकता और नियोजन का परिमाण युक्त होना ही अर्थ पूर्ण हो पाता है। इससे प्रबन्धक नियोजन कार्य करने के लिए न कर परिमाण मुक्त नियोजन पर विचार करने के लिए बाध्य हो जाते है एवं उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है यह निश्चित करने के लिए बाध्य हो जाते हैं एवं उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। जिनसे इच्छित परिणाम प्राप्त हो सकते है उन्हें संगठन के प्रकार और व्यक्ति की आवश्यकताओं पर तथा उपलब्ध साधनों और सहायता पर विचार करना होता है फिर न तो इससे अच्छा और कोई उपाय नियंत्रण के लिए हैऔर न ही नियन्त्रण के स्तर करने के लिएध्यह लक्ष्यों का स्पष्ट रूप से निर्धारण करता है।

2. **संगठन की स्पष्टता**–उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध का एक दूसरा बड़ा लाभ है की यह संगठन की भूमिका एवं संरचना को भी स्पष्ट करने के लिए बाध्य करता है जहां तक सम्भव हो मुख्य परिणाम क्षेत्रों को एक अधिकारी के सुपुर्द कर देना चाहिए जिससे वह लक्ष्य पूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सके जिन कम्पनियों ने इस कार्य क्रम को प्रभाव पूर्ण ढंग से अपनाया है उन्हें प्राप्त संगठन से सम्बन्धित कमियों का अनुभव हुआ है। एक बात जो प्रायः अनदेखी कर कर दी जाती है। वह यह है कि लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अधिकारों का हस्तांतरण किया जाना आवश्यक होता है। अधिकार हस्तांतरण की सीमा लक्ष्यों के परिमाणों पर निर्भर करती है। हनीवैल कम्पनी के एक अधिकारी ने कहा था, ''दो बाते ऐसी हैं जो उपक्रम में मूल रूप से विचारणीय होनी चाहिए–प्रबन्ध को विकेन्द्रीत किया जाना चाहिए और कार्यों को विकेन्द्रीकरण करने के लिए उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध को अपनाना चाहिए।''

3. **परिणामों पर अधिक ध्यान**–सौद्देश्य प्रबन्ध क्रिया–परक प्रबन्ध को परिणाम–परक में बदलता है। फलस्वरूप क्रियाओंके स्थान पर परिणामों पर अधिक ध्यान दिया जाना संभव होता है। परिणामों की प्राप्ति पर व्यक्ति की सफलता निर्भर आत करती है। कार्य करना एक क्रिया है लेकिन अच्छा कार्य करना एक प्राप्त की जाने वाला प्रबन्धकीय चातुर्य है। सौद्देश्य प्रबन्ध क्योंकि परिणाम पर अधिक ध्यान देता है इसलिए अच्छा कार्य करने की प्रबन्धकीय प्रतिभा को सीखा जा सकेगा। इससे प्रबन्धकों के कार्य करने के तरीके में अनुकूल परिवर्तन आयेगा।

4. **प्रभावी नियन्त्रण का विकास**–उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध जिस प्रकार एक योजना को प्रभावी बनाता है उसी प्रकार से नियन्त्रण के विकास में भी सहायता पहुचाता हैं नियन्त्रण की मुख्य समस्या होती है कि हम क्या देखें? उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति एवं विभाग के उद्देश्यों निर्धारित कर दिये जाते हैं और नियन्त्रण में हम देखते हैं कि उन कर्मचारियों एवं विभागों ने इन उद्देश्यों को सर्वश्रेष्ठ विधि से मितव्ययता के साथ प्राप्त किया या नहीं। यदि कोई कमी पाई जाती है तो सुधारात्मक कदम उठाते हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन प्रभावी नियन्त्रण के विकास से सहायता पहुचाते है।

   निष्ठापूर्वक कार्य करना–इस पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक कर्मचारी व प्रबन्धक अपने–अपने लक्ष्यों व उद्देश्यों से परिचित होता है। लक्ष्यों के स्पष्ट ज्ञान के कारण वे अधिक निष्ठा व परिश्रम से काम करते हैं। चूंकि कार्य–निष्पादन के अनुसारही उनका मूल्यांकन होता है अतः वे मन लगाकर काम करते हैं।

6. **व्यक्तिगत पहलपन में वृद्धि**–इस पद्धति के अन्तर्गत कर्मचारियों को नियत सीमाओं के भीतर समस्याओं को स्वयं हलकरने तथा आवश्यक निर्णय ले की स्वतन्त्रता होती है। अतः उनकी वैयक्तिक पहल शक्ति बढ़ जाती है।
7. **टीम भावना**–समूह के सभी सदस्य अपने उद्देश्यो का निर्धारण अपने अधिकारियों के साथ मिलकर करते है। इसके उनमेंटीम भावना विकसित होती है। जिससे संस्था को लाभ होता है प्रबन्ध एवं संगठन को भागीदारी की भावना भी पनपती है। जिससे कुशल निष्पादन सम्भव होता है।
8. **स्व–अभिप्रेरणा**–उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध में कर्मचारियों को भी भागीदारी निर्णयन की स्वतन्त्रता तथा प्राप्त परिणामों के आधार पर मूल्यांकन के कारण सभी कर्मचारी स्व–अभिप्रेरित होकर काम करते है। जिसका सुपरिणाम बढ़ती हुई उत्पादकता के रूप में संस्था को मिलता है।

एम. बी. ओ. की सीमाएं

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के अनेक लाभ होते हुए भी इसकी कुछ सीमाए हैं। इनका अध्ययन किया जाना आवश्यक है । एम. बी. औ की मुख्य सीमाएं निम्नलिखित है:

1. **कर्मचारियों पर अधिक दबाव** एम बी ओ के अन्तर्गत संगठन के सभी स्तरों पर उद्देश्यों प्राप्ति के लिए दबाव डालासा करने से कर्मचारी अपने–अपने को स्वंत्र महसस नहीं करते बल्कि हर समय दबाव में रहते है बल्कि से उनकी कार्य कुशलता में कमी आती है।
2. **समय की बर्बादी**–एम. बी. ओ. के अन्तर्गत परे वर्ष सभाओं व प्रति वेदनों के लेन–देन का दौर ही चलता रहता है प्रबन्धकोंक समय सभाओं में उपस्थिति रहने व रिपोर्ट तैयार करने में ही लग जाता है। परिणामस्वरूप कुछ मुख्य बातों की और ध्यान न दिये जाने के कारण उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है अतः कहा जा सकता है कि एम ओ. के लागू करने से समय की बर्बादी होती है।
3. **अमूल्य साधनो की बर्बादी**–भागीदारी से जिम्मेदारी का बढना, एम. बी. ओ. की एक आधारभत मान्यताओं में से है। एक पण पर ता यह बात बिल्कुल ठीक है और इससे लाभ प्राप्त होता है लेकिन कई बार कर्मचारी अपनी जिम्मेदारी की कुछ ज्यादा ही महत्व देने लग जाते हैं ऐसी स्थिति में वे अपना काम पूरा करने के प्रति अधिक उतावले हो जाते हैं। उनके उतावले पन के कारण साधनों का दुरूपयोग होने लगता है।
4. **उच्च प्रबन्ध का अपूर्ण समर्थन**–एक संगठन में अधिकारों का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर चलता है। अर्थात उच्च प्रबंध क आधिकार सर्वाधिक होते हैं। उच्च प्रबंध अपने निर्णयों को अधिनस्थों पर थोपते है ऐसा करना उन्हें अच्छा लगता है। दूसरी ओर एम. बी. ओ. में आधीनस्थों की भागीदारी बढ़ जाती है। अधीनस्थों की भागीदारी से उच्च प्रबन्धकों के अधिकारों के अवसरों में कमी आती है जिससे वे पसन्द नहीं नहीं करते । अंततः एम. बी. ओ. को लागू करने से बाधा उत्पन्न होती है।
5. **उद्देश्य निर्धारण में कठिनाई**–एम. बी. ओ. केवल उसी दशा में सफल होता है। जबकि अधिकारी व अधीनस्थ दोनों एक दूसरे की सीमाओं को ध्यान में रखकर उद्देश्यों का निर्धारण करें। प्रायः देखा जाता है कि वरिष्ठ अधिकारी ही उद्देश्यों का निर्धारण कर लेते हैं। और अधिनस्थों को तो मात्र औपचारिकता वश बुलाया जाता है। उन्हें इतना समय नहीं दिया जाता कि वे अपने सुझाव दे सके और यदि वे अपने सुझाव देते भी है तो उन्हें अनदेखा कर दिया जाता है इस प्रकार उद्देश्य निर्धारण में कठिनाई उत्पन्न होती है। इसका प्रभाव यह होता है कि उन्हें पूरा करना कठिन हो जाता है।
6. **अल्पावधि उद्देश्यों को अधिक महत्व**–एक उपक्रम को सफलता की चरम सीमा तक पहुचाने के लिए आवश्यक है कि दीर्घ कालीन एवं आपातकालीन दोनों प्रकार के उद्देश्यों को बराबर महत्व दिया जाए। लेकिन एम. बी. ओ. के अन्तर्गत देखा जाता है कि अल्पकालीन उद्देश्यों पर दीर्घकालीन उद्देश्यों की अपेक्षा

अधिक ध्यान दिया जाता है। अर्थात् प्रबन्धक अल्पकाल के बारे में अधिक चिंतित रहते हैं वे किसी भी कीमत पर अल्पकाल में सफल होना चाहते हैं प्रबंधकों की ऐसी विचारधारा दीर्घकाल में हानिप्रद होती है।

7. **निपुण स्टॉफ की कमी**–एम. बी. ओ. को लागू करना कोई सरल प्रक्रिया नहीं है इसके लिए प्रबंधकों का एक कुशल मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञ होना जरूरी है समय–समय पर होने वाली सभाओं में उन्हें अधीन स्थान की भावनाओं को पढ़ना होता है और उनकी समस्याओं को दूर करना होता है लेकिन प्रायः देखा जाता है कि अधिकतर प्रबन्धकों में इस कुशलता का अभाव होता है। परिमाणतः एम. बी. ओ. के वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होते।

8. **अधीनस्थों की की भागीदारी का अभाव**–एम. बी. ओ. को सफल बनाने के लिए अधीनस्थों की पर्याप्त भागीदारी का होना जरूरी है प्रायः देखा जाता है कि अधीनस्थों अपने बास के साथ भागीदारी में कोई रूचि नहीं रखते। अधीनस्थों की आदत पका पकाया खाने की आदत होती है। लेकिन एम. बी. ओ. के अन्तर्गत कुछ प्रयास करने पड़ते हैं तभी सफलता मिलता है। अतः एम. बी. ओ. को केवल उन्हीं संस्थाओं में लागू किया जा सकता है। जहां अधीनस्थों को कामचोरी की आदत नहीं। .

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की कुशलता को बढ़ाने के सुझाव

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध कार्यक्रम को सफलता पूर्वक लागू करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं –

1. **कर्मचारियों पर दबाव में कमी**–उद्देश्य निर्धारण करने एवं उन्हें पूरा करने के लिए वरिष्ट प्रबन्धकों द्वारा जो दबाव अधीनस्था पर डाला जाता है। उसमें कमी की जाती चाहिए अर्थात अधीनस्थों में विश्वास व्यक्त करते हुए या मविश्वास व्यक्त करने हुए उन्हें अकेला छोड़ देना चाहिए।

2. **समय की कीमत को समझना**–एम. बी. ओ. के अन्तर्गत सभाओं व प्रतिवेदनों पर अधिक जोर दिया जात है। इससे समय की बर्बादी होती है। प्रबन्धकों को चाहिए कि सभाओं को एक दिनचर्या न बनाएं बल्कि बहुत आवश्यक होने पर ही सभा करें। इसी प्रकार आवश्यक प्रतिवेदन नहीं मांगने चाहिए ऐसा करने से वरिष्ठ अधिकारियों एवं अधिनस्थों दोनों का कीमती समय बचेगा। बचे हुए समय का उपयोग रचनात्मक कार्यों के लिए किया जा सकेगा।

3. **अमूल्य साधनों की बचत करना**–प्रायः देखा जाता है कि कुछ कर्मचारी संस्था के प्रति अधिक समर्पित हो जाते है ये कर्मचारी अति शीघ्र व अच्छा काम करते हैं लेकिन साधनों की बर्बादी की ओर विशेष ध्यान नहीं देते ऐसे कर्मचारियों पर सख्त नियन्त्रण रखकर साधनों की बर्बादी को रोका जा सकता है।

4. **उच्च प्रबंधक द्वारा पूर्ण समर्थन करना**–यदि उच्च प्रबंधक एम. बी. ओ. को सफल बनाना चाहते हैं तो उन्हें अपने अधिकारोंसे लगाव का त्याग करना होगा। उन्हें चाहिए कि अपने अधीनस्थों की भागीदारी के महत्व का समझे।

5. **अधीनस्थों के महत्व को समझना**–प्रायः देखा जाता हैं कि उद्देश्य निर्धारण में भी अधीनस्थो की भूमिका को अनदेखाकर दिया जाता है। वरिष्ठ अधिकारियों को चाहिए की एम. बी. ओ. की भागीदारी की मुख्य मान्यता को अमली जामा पहनाए । अर्थात् उनका पालन करें यदि वरिष्ठ अधिकारी अधीनस्थों की भागीदारी के लिए तैयार नहीं है तो एम. बी. ओ.की भागीदारी की तैयारी अपने दिमाग से निकाल देना चाहिए।

6. **दीर्घकालीन उद्देश्यों को महत्व देना**–एम. बी. ओ. सफलता के लिए प्रबन्धकों को चाहिए कि अल्पकालीन उद्देश्यों केसाथ–साथ दीर्घकालीन उद्देश्यों के महत्व को भी समझें ऐसा करने से अल्पकाल के साथ–साथ दीर्घ काल में भी संस्था की सफलता व विकास की उम्मीद बनी रहेगी।

7. **स्टॉफ के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करना**–निपुण स्टाफ की कमी एम. बी. ओ. की सफलता प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व है। अतः इस कमी को दूर करना अति आवश्यक है। इसके लिए जरूरी है कि एम. बी. ओ. कार्यक्रम प्रारम्भ करने से पूर्व ही संस्था के काम करने वाले हर व्यक्ति को इसकी बारीकियों

से परिचित करवा दिया जाए। प्रशिक्षण के दौरान ही कर्मचारियों के एम. बी. ओ. के सम्बंध में सभी को दूर कर देना चाहिए। प्रायः कर्मचारी भी नए कार्यक्रम को लागू किये जाने का विरोध करते हैं प्रशिक्षण के माध्यम से कर्मचारियों को मानसिक रूप से तैयार किया जाता है।

8. **भागीदारी प्रकृति का विकास करना**–प्रायः देखा जाता है कि अधीनस्थों की प्रकृति भागीदारी की नहीं होती वे निर्णय लेने से डरते हैं इस समस्या को दूर करने के लिए अधीनस्थों को यह समझाया जाना चाहिए कि वे संस्था के मुख्य अंग हैं। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा दिये गए सुझावों को निर्णयों में उचित स्थान देना चाहिए। यदि एक बार उनके सुझाव को स्वीकार कर लिया गया तो वे बार–बार नये–नये सुझावों के साथ आयेगें। इस प्रकार भागीदारी की समस्या को समाप्त किया जा सकता है।

समामेलित नियोजन

समामेलित योजनाएं व योजनाएं होती हैं जो किसी कम्पनी के विकास एवं विस्तार के लिए स्वयं उद्योगपतियों या उच्च प्रबन्ध द्वारा दीर्घकालीन रणनीति के आधार पर बनाई जाती है। अतः ये योजनाएं दीर्घकालीन होती हैं और उच्च प्रबन्ध द्वारा बनाई जाती हैं। यद्यपि हमारे देश में इन योजनाओं को पहले कोई महत्व नहीं दिया जाता था लेकिन वर्तमान समय में नियोजन के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण स्थान माना जाने लगा है। सम्पूर्ण देश के औद्योगिक विकास के लिए सरकार द्वारा अनेक समयबद्ध निर्धारित किए जाते हैं जिन्हें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के उद्योगों को एक निश्चित समय में पूरा करना आवश्यक होता है।

समामेलित नियोजन के लक्षण

समामेलित नियोजन के निम्नलिखित प्रमुख लक्षण हैं

1. **नियोजन का समय**–नियोजन का एक निश्चित समय होता है। भारतीय परिस्थितियों के सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की संस्थाओं का योजनाकाल पृथक–पृथक होता है अर्थात एक समान नहीं होता। सार्वजनिक कम्पनियों का योजनाकाल प्रायः पंचवर्षीय योजनाओं के अनुकूल होता है अर्थात् इसकी अवधि पांच वर्ष होती है लेकिन कुछ कम्पनियों इससे हटकर भी अपनी योजना का निर्धारित करती है अर्थात पांच वर्ष से अधिक के लिए भी योजनाएं बनाती हैं अधिक अवधि की योजनाएं प्रायः कागज, सीमंट, लोहा एवं इस्पात, जूट और पैट्रोलियम आदि के क्षेत्र में बनाई जाती है। निजी क्षेत्र की योजनाएं प्रायः दो वर्ष से अधिक और पांच वर्ष से कम की अवधि की होती हैं। इसका मुख्य कारण यह कि हमारे देश के औद्योगिक वातावरण में सदैव अनिश्चितता है है। इस सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि हमारे यह भी कहा जा सकता है कि हमारी सरकारी समय–समय पर नई–नई योजनाओं और उनसे सुविधाओं की घोषणा करती रहती है इसलिए दीर्घकालघोषणा करती रहती है इसलिए दीर्घकालीन योजनाएं नहीं बनाई जा सकती।

2. **नियोजनन के लिए पृथक संगठन**–बडे व्यवसायों में योजना विभाग बड़े अधिकारी के अधीन होता जो इस विभा प्रगति एवं प्रसार के लिए पूर्णरूपेण उत्तरदायी होता है। योजना विभाग के प्रधान द्वारा एक समिति का गठन किया जाता है और इस इस समिति में सभी विभागों के बड़े अधिकारियों को सदस्य मनोनीत किया जाता है।

3. **योजना निर्माण के लाभ**–हमारे देश में दीर्घकालीन योजना बनाते समय उसके लाभों पर विशेष ध्यान दिया जा है। इस प्रकार की योजनाओं के निम्नलिखित प्रमुख लाभ हैं

   1. समय–समय पर योजना बनाने के स्थान पर एक लम्बी अवधि की योजना अधिक हितकर एवं लाभदायक जाती है।

2. दीर्घकालीन योजना के आधार पर हम अपने उपलब्ध साधनों का अधिकतम कुशलतापूर्वक प्रयोग कर सकते है।
3. संगठन प्रणाली में उचित नियन्त्रण द्वारा पर्याप्त सुधार किया जा सकता है।
4. समय–समय पर कार्यवाही का अवलोकन किया जा सकता है और इसमें आवश्यक सुधार किए जा सकते हैं।
5. संस्था के कार्य–कलापों की गति में वृद्धि होती है।
6. पूर्व–निधारित उद्देश्यों की प्राप्ति और अपने बचाव के लिए मोर्चाबन्दी करने में अधिक सहायता मिलती है।
7. उत्पादन का श्रेष्ठ प्रमाप निर्धारित कर उसे प्राप्त करने का प्रयास किया जा सकता है।

4. **नियोजन में प्राचल**–योजना निर्माण में निम्नलिखित प्राचलों का प्रयोग किया जाता है
   1. पर्याप्त विकास की सम्भावना वाले क्षेत्रों का निर्धारण।
   2. वर्तमान समय में, जिन क्षेत्रों में कार्य किया जा रहा है उनके विकास की सम्भावनओं को निर्धारित करना।
   3. तकनीकी ज्ञान के सहयोग वाले क्षेत्रों का निर्धारण ।
   4. संस्था के उज्जवल भविष्य के लिए किए जाने वाले कार्य अर्थात् पृथक–पृथक विभागों के लिए पृथक–पृथक योजनाएंबनाना।

5. **योजनाओं का क्रियान्वयन** –हमारे देश में दीर्घकालीन योजनाओं को क्रियान्वित करने में अनेक समस्याओं का सामनाकरना पड़ता है। इन कठिनाइयों को मुख्य रूप से दो भागों विभक्त किया जा सकता है–1. योजना की कमियां, और 2. संस्था के बाहरी वातावरण में समय–समय पर होने वाले तीव्र परिवर्तन। इस सन्दर्भ में डी. एम. कोहली का यह कथन उल्लेखनीय है कि भारत में समामेलित योजनाएं प्रथम तो इसलिए असफल होती हैं कि उन्हें आधुनिक विधियों से प्रारम्भ न करके परम्परागत विधियों से प्रारम्भ किया जाता है और दूसरे उनके उद्देश्य वास्तविकता से कहीं ऊंचे निर्धारित किए जाते हैं। दीर्घकालीन योजना तैयार करते समय इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि अल्प कालीन योजनाएं जोदीर्घकालीन योजनाओं का ही अंग है, किस प्रकार लागू की जा सकती हैं।

भारत में समामेलित योजनाओं की असफल के कारण

1 हमारे देश में प्रतियोगिता अधिक है क्योंकि भारत प्राचीन काल से विक्रेताओं का बाजार माना जाता है।

2. भारतीय व्यापारियों के पास दीर्घकालीन योजनाओं के लिए पर्याप्त साधन नहीं होते अतः वे इस प्रकार की योजना बनानेमें संकेच करते हैं और इससे बचना भी चाहते हैं।

3. हमारे देश के कर्मचारी प्रबन्ध की नीतियों में अधिक कमियां हैं जो दीर्घ–कालीन योजनाओं के निर्माण में बाधक होती हैं। भारतीय व्यापारी शीघ्र से शीघ्र या तुरन्त लाभ की आशा करता है जो दीर्घ–कालीन योजनाओं में किसी प्रकार की सम्भव नहीं है।

4. हमारे देश में एकाधिकारी और बड़े व्यवसायों की स्थापना पर अनेक सरकारी प्रतिबन्ध हैं जिससे दीर्घकालीन योजनाए सरलता से नहीं बनाई जा सकती।

व्यावसायिक वातावरण

अर्थ – व्यावसायिक वातावरण का अभिप्राय उन घटकों के योग से जो व्यवसाय को प्रभावित करते है और जिन पर, कम से कम अल्प काल में, व्यवसाय का कोई नियंत्रण नहीं होता। इन घटकों में मुख्यतः ग्राहक, पर्तिकर्ता, प्रतियोगी सरकारी नीतियों, राजनैतिक ढाचा, वैधानिक नियम आदि को सम्मलित किया जाता है यह सभी घटक ऐसे है जो व्यवसाय के नियन्त्रण से बाहर होते हैं इन्हें व्यवसाय को प्रभावित करने वाले बाहरी घटक कहते हैं। इसके अतिरिक्त

को व्यवसाय के अन्दर भी कुछ ऐसे घटक होते हैं जो व्यवसाय के निर्णयों को प्रभावित करते है इन्हें व्यवसाय को प्रभावित करने वाले आन्तरिक घटक कहते हैं इसमें मुख्यतः व्यवसाय उद्देश्यो, नीतियों, संगठन प्रबन्ध, सूचना, प्रणाली उत्पादन, क्षमता वित्तीय नीतियों आदि को सम्मिलित किया जाता है। ये घटक प्रायः व्यवसाय के नियन्त्रण में होते हैं। व्यवसायिक वातावरण के विभिन्न अंगों को आगे चित्र में दर्शाया दिखाया गया है।

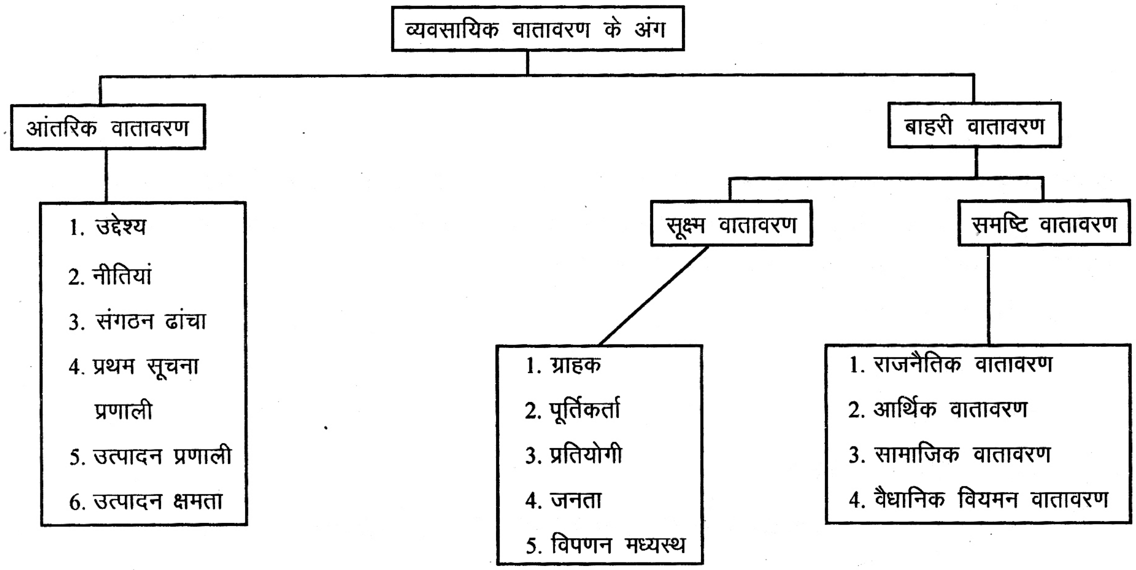

(अ) आंतरिक वातावरण

आंतरिक वातावरण में व्यवसाय को प्रभावित करने वाले उन घटको को सम्मिलित किया जाता है तो व्यवसाय के अंदर ही उपस्थित होते हैं। ये घटक प्रायः व्यवसाय के नियंत्रण में होते हैं। आंतरिक वातावरण के अध्ययन के लिए आंतरिक घटकों की जानकारी महत्वपूर्ण है ये घटक निम्नलिखित हैं:

1. व्यवसाय के उद्देश्य,
2. व्यवसाय की नीतियां,
3. उत्पादन क्षमता,
4. रागिनी पणाली,
5. प्रबन्ध सूचना प्रणाली,
6. प्रबन्ध में भागीदारी.
7. संचालन मंडल की रचना,
8. प्रबंधकीय दृष्टिकोण,
9. संगठनात्मक ढांचा,
10. मानवीय संसाधन की विशेषता ।

(ब) बाहरी वातावरण

व्यवसाय के बाहरी वातावरण में व्यवसाय को प्रभावित करने वाले बाहर उन घटकों को सम्मिलित किया जाता है। जो व्यवसाय के बाहर उपस्थित होते हैं। इन घटकों की जानकारी महत्वपूर्ण है कि इन घटकों में कुछ ऐसे घटक है जिनके साथ किसी विशेष कम्पनी का गहरा सम्बंध होता है। जबकि कुछ अन्य घटक ऐसे हैं जिनसे पूरा व्यवसाायिक समुदाय प्रभावित हैं।

1. **सूक्ष्म वातावरण** –सूक्ष्म वातावरण का अभिप्राय ऐसे वातावरण से है जिसके अन्तर्गत उन सगठनों को सम्मिलित किए जाता है। जिसमें व्यवसाय का नजदीकी सम्बन्ध होता है तथा ये घटक प्रत्येक व्यवसायिक इकाई को अलग–अलग दंग से प्रभावित करते है ये घटक निम्न है–

   1. ग्राहक,
   2. पूर्तिकर्ता,
   3. प्रतियोगी,
   4. जनता,
   5. विपणन।

2. **समष्टि वातावरण**–इस वातावरण का अभिप्राय ऐसे वातवरण से है जिसमे उन घटकों को मिलाया जाता है जिनका व्यवसाय के साथ दूर का सबंध होता है। इन घटको की मुख्य विशेषता यह है कि ये एक ही समय पर लगभग सभी व्यवसायिक इकाइयों को प्रभावित करते है। इसके मुख्य घटक निम्न है :

   1. राजनैतिक वातावरण,
   2. आर्थिक वातावरण,
   3. सामाजिक वातावरण,
   4. वैधानिक नियमन वातावरण।

व्यावसायिक वातावरण की विशेषताएं

1. **व्यवसायिक वातावरण जटिल होता है**–वातावरण अनेक घटको से मिलकर बनता है ये सभी घटक आपस में एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं इससे व्यवसाय पर पड़ने वाले प्रभाव को स्वतन्त्रा रूप से नहीं पहचाना जाता है यही कारण है कि व्यवसाय के लिए इसका सामना करना बहुत कठिन है।

2. **व्यावसायिक वातावरण गतिशीलता होता है**–जैसा कि स्पष्ट है कि वातावरण अनेक घटकों का मिश्रण होता है इन घटकों में से किसी न किसी में परिवर्तन होता रहता है। घटको की इस प्रवृत्ति के कारण ही कहा जाता है कि वातावरण गतिशील होता है।

3. **व्यावसायिक वातावरण–**अलग–अलग फर्मो को अलग तरह से प्रभावित करता है। यह जरूरी नहीं है कि किसी विशेष परिवर्तन का सभी व्यवसायों पर एक जैसा प्रभाव पड़े। वातावरण में परिवर्तन का एक व्यवसाय स्वागत कर सकता है। जबकि दूसरा उस परिवर्तन को लेकर दुखी हो सकता है। अतः वातावारण की यह विशेषता है कि यह विभिन्न व्यवसायों को अलग–अलग रूप से प्रभावित करता है।

4. **वातावरण का दीर्घ प्रभाव होता है**–वातावरण में होने वाले किसी भी परिवर्तन का व्यवसाय पर दीर्घ प्रभाव पड़ता है क्योंकि परिवर्तित वातावरण की लाभदायकता, उत्पादकता एवं विकास को प्रभावित करता है।

व्यावसायिक वातावरण का महत्व

मात्र यह जान लेना कि व्यावसायिक वातावरण का अर्थ क्या है पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता यह जानने है कि हम इनका अध्ययन करना चाहते हैं। अर्थात इसका महत्व क्या है। व्यावसायिक वातावरण को महत्त्व निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता है।

1. व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन से हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि वातावरण से होने वाले परिवर्तन में व्यवसाय का कोई अच्छा अवसर प्राप्त होता है तो यह व्यावसायिक के लिए कोई खतरा पैदा करेगा।

2. व्यवसायिक वातावरण का अध्ययन करने से व्यावसायिक को यह जानकारी प्राप्त होती है कि उसका व्यवसाय वातावरण का सामना करने में कितना सुदृढ़ अथवा कमजोर है।
3. मोर्चाबन्दी के अन्तर्गत पहले देखा जाता है कि वातावरण का लाभ उठा रहा है और फिर उनके अनुरूप ही अपनी योजनाएं तैयार की जाती है इस प्रकार मोर्चाबन्दी करके ही हम सफल प्रतियोगी बन सकते हैं।
4. व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन से वातावरण में सम्पूर्ण प्रभाव को अलग–अलग भागों में विभाजित किया जा सकता है अर्थात व्यवसाय को प्रभावित करने वाले प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों की अलग–अलग पहचान की जा सकती है ऐसा करने के बाद ही वातावरण के विरूद्ध प्रतिक्रिया करने अथवा इसे अनदेखा करने का निर्णय लिया जाता है।
5. प्राय देखा जा सकता है कि जब भी कोई व्यापारिक इकाई बन्द होती है तो उनका मुख्य कारण वातावरण के साथ मिलान होता है अर्थात जब कोई इकाई अपने आप को वातावरण के साथ समयोजित नहीं कर सकती हो उसका अंत निश्चित है व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन से यह समस्या दूर हो जाती है।

विश्लेषण

व्यावसायिक वातावरण में परिवर्तन के महत्व को समझ लेने के बाद अब यह जानने की जरूरत है कि प्रबन्धक इनका सामना कैसे करते है इनका सामना करने के लिए प्रबन्धकों द्वारा वातावरण का विश्लेषण किया जाता है।

1. **सुदृढ़ता एवं कमियां**– सुदृढ़ता एवं कमियों का सबंध व्यवसाय के आंतरिक वातावरण से हैं आंतरिक वातावरण का विश्लेषण व्यवसाय की सुदृढ़ता एवं कमियों को पहचाने में मदद करता है। इसके अंतर्गत यह देखा जाता है कि व्यवसाय के पास वित्तीय साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है अथवा नहीं। संगठनात्मक ढाचा कैसा है। प्रबन्धकीय कुशलता का स्तर कैसा है, उत्पादन विधियां कैसी हैं उत्पादन क्षमता कितनी है आदि।

2. **अवसर एवं डर**– इनका सम्बन्ध व्यवसाय के बाहरी वातावरण से हैं बाहरी वातावरण से परिवर्तन में अच्छे अवसर भी प्राप्त हो सकते है और खतरा भी पैदा हो सकता है। यह जानकारी बाहरी वातावरण के विश्लेषण से प्राप्त होती है। बाहरी वातावरण में परिवर्तन से पैदा होने वाले खतरों के उदाहरण इस प्रकार है। प्रतियोगिता में वृद्धि, मांग में कमी, उत्पादों का फैशन से बहार होना आदि। इस प्रकार बाहरी वातावरण में परिवर्तन से ये अवसर प्रदान हो सकते है–नये बाजारों का विकास, ब्याज दर में कमी, पूर्तिकर्ताओं द्वारा अधिक समय के लिए उधार सुविधा। अधिनियमों का पक्ष मेंहोना आदि।

जो व्यवसायिक इकाइयां अपनी सुदृढ़ता एवं कमियां तथा बाहरी वातावरण से प्राप्त होने वाले अवसरों एवं डर को समय रहते पहचान लेती हैं। वे इकाईयां लम्बे समय तक जीवित रहती है और इनका विकास भी होता है।

निदान

जब तक विश्लेषण के परिणामों का निदान न किया जाए वातावरण विश्लेषण पूरा नहीं होता। यहां निदान का अर्थ वातावरण विश्लषण के दौरान पहचाने गए अवसरों एवं खतरों से निपटने के लिए रणनीति तैयार करना है। वातावरण विश्लेषण का आधार वातावरण से एकत्रित किए गए आकडे होते हैं। बडी कम्पनियों के आकड़े इतने अधिक होते है कि इनका विश्लेषण करना बहुत काठन हो जाता है निदान का काम मख्य प्रबन्धक एवं विभागीय प्रबन्धकों की टीम के द्वारा दिया जाता है संचालक मण्डल टीम का निदान के संबंध में अपना पमरार्श दे सकता है। इस काम को अन्तिम रूप देने के लिए पेशेवर सलाहाकारों की मदद भीली जा सकती है।

वातावरण विश्लेषण का निदान कितने अच्छे ढंग से होता है यह निम्न वातावरण निर्भर करता है

1. रणनीति बनाने वालों का अनुभव
2. अभिप्रेरणा स्तर,
3. रणनीति बनाने वालों का आशावादी अथवा निराशावादी दृष्टिकोण,
4. परिवर्तन को स्वीकार करने की मनोवैज्ञानिक तैयारी आदि।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि व्यावसायिक वातावरण परिवर्तनशील है इस व्यवसाय की नितियां ही काना चाहिए ताकि बदलते वातावरण का सफलतापूर्वक सामना किया जा सके। नीतिया का निर्धार वातावरण के विश्लेषण के आधार पर करना चाहिए।

मोर्चाबन्दी

इन्हें कार्य नीति, रणनीति या दाव–पेंच भी कहते हैं। ये शब्द सेना से लिए गए है जहां इनका अभिप्राय शत्रु की तैयारी अपनी तैयार करना है ताकि शत्रु को लड़ाई के मैदान में हराया जा सके। इसी प्रकार व्यवसाय में भी प्रतियोगी सामना करने के लिए योजना बनाई जाती है। इसे मोर्चाबन्दी कहते है। उदाहरण के लिए, यदि कोई प्रति माल की बिक्री बढ़ाने के लिए वस्तुओं के मूल्य में कमी करने जा रही हैं या विज्ञापन के नए तरीकों को कर रही है या उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए कोई गिफ्ट स्कीम निकाल रही है तो इन सब बातों को हमें भी अपनी मोर्चाबन्दी करनी होगी।

मोर्चाबंदी दो प्रकार की होती है–i. बाहरी मोर्चाबन्दी तथा ii. आंतरिक मोर्चाबन्दी। जब प्रतियोगियों की योजना रखकर हम अपनी योजनाएं बनाते हैं तो इसे बाहरी मोर्चाबन्दी कहते है यदि किसी परिवर्तन से संस्था के अन्दर ही नही उत्पन्न होने वाली है तो उसका सामना करने के लिए पहले ही तैयारी करने को आंतरिक मोर्चाबन्दी कहते हैं. जैसे में कम्प्यूटर लगाना–जिससे अनेक व्यक्तियों की छंटनी हो सकती है। इस व्यवस्था के लागू करने पर कर्मचारियों को का सामना करने के लिए पहले से ही तैयारी होगी ताकि नई व्यवस्था भी लागू हो जाए और कर्मचारी भी नाराज न हो।

मोर्चाबन्दी की परिभाषाएं

1. **कूण्ट्ज एवं ओ डोनेल** के अनुसार, ''मोर्चाबन्दी का अभिप्राय उन दिशाओं से है जिनमें मानवीय तथा भौतिक साधनों का, कठिनाइयों के रहते हुए, चुने हुए उद्देश्य को प्राप्त करने की संभावना को अधिकतम बनाने के लिए विनियोग एवं प्रयोग किया जाना है।''

2. **डेल्टन ई, मैक्फारलैंड** के अनुसार, "मोर्चाबन्दी को अधिकारियों के व्यवहार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उद्देश्य प्रतियोगी वातावरण में संस्था के अथवा निजी उद्देश्य में सफलता प्राप्त करना है तथा जिसका आधार दूसरों के वास्तविक या संभावित कार्यों का पूर्वानुमान लगाना होता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि मोर्चाबन्दी वे योजनाएं है जो प्रतियोगियों की क्रियाओं को ध्यान में रखकर तैयार की जाती हैं और जिसका उद्देश्य उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग संभव बनाना है।

मोर्चाबन्दी की विशेषताएं मोर्चाबन्दी की मुख्य विशेषताए निम्नलिखित हैं:

1 **उच्चस्तरीय प्रबन्धकों द्वारा निर्धारण**–मोर्चाबन्दी कार्यनीति उच्चस्तरीय प्रबन्धकों द्वारा तैयार की जाती है। शेष इन्हें लागू करने का काम करते हैं।

2. **लोचशील प्रकृति**–मोर्चाबन्दी लोचशील होती है। अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर इसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

3. **विशेष परिस्थितियों में आवश्यक**–मोर्चाबन्दी की आवश्यकता प्रायः सामान्य परिस्थितियों में नहीं पड़ती। इसकी आवश्यकता उस समय पड़ती है जब कोई विशेष खतरा संस्था के ऊपर मंडरा रहा हो। उन विशेष परिस्थितियों में व्यावस की प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए मोर्चाबन्दी तैयार की जाती है।
4. **संसाधनों के उचित प्रयोग पर जोर**–मोर्चाबन्दी के अन्तर्गत केवल दिशा–निर्देश ही नहीं दिए जाते है। के उचित प्रयोग की भी व्यवस्था की जाती है।
5. **उचित ढंग से लागू करना जरूरी**–मोर्चाबन्दी के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि केवल उचित मोर्चाबन्दी निर्धारणकरना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसे ठीक ढंग से लागू करना भी जरूरी है।

मोर्चाबन्दी का निर्धारण

मोर्चाबन्दी का निर्धारण अनुकूल परिस्थितियों का लाभ उठाने तथा प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए किया जाता है। मोर्चाबन्दी निर्धारण की प्रक्रिया निम्नलिखित हैः

1. **उद्देश्यों की जानकारी**–मोर्चाबन्दी निर्धारित करते समय सबसे पहले संस्था के उद्देश्यों की जानकारी होनी चाहिए क्योंकि उद्देश्यों की सीमा में रहते हुए कि मोर्चाबन्दी का निर्धारण किया जाता है।
2. **बाहरी वातावरण का विश्लेषण**–अनेक ऐसे बाहरी तत्व होते है जो संस्था के निर्णयों को प्रभावित करते हैं। बाहरी तत्वोंमें राजनैतिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, वैधानिक स्थिति, ग्राहक, पूर्तिकर्ता, जनता आदि को सम्मिलित किया जाता है। ये सभी तत्व सामूहिक रूप से 'व्यवसाय का बाहरी वातावरण' कहलाते हैं। बाहरी वातावरण में परिवर्तन से अच्छे अवसर भी प्राप्त हो सकते हैं और खतरा भी पैदा हो सकता है। बाहरी वातावरण में परिवर्तन से प्राप्त होने वाले अवसरों के उदाहरण इस प्रकार है : नये बाजारों का विकास, ब्याज दर में कमी, पूर्तिकताओं द्वारा अधिक समय के लिए उधार सुविधा, सकारात्मक सरकारी नीतियां आदि। इसी प्रकार बाहरी वातावरण में परिवर्तन से पैदा हो सकने वाले खतरों के उदाहरण इस प्रकार हैं–प्रतियोगिता में वृद्धि, मांग में भारी कमी, उत्पादों का फैशन से बाहर होना, तकनीकी का फैशन से बाहर होना आदि। अतः स्पष्ट है कि मोर्चाबन्दी का निर्धारण करते समय व्यवसाय के बाहरी वातावरण का विश्लेषण जरूरी है क्योंकि इससे व्यवसाय को प्राप्त हो सकने वाले अवसरों तथा खतरों की जानकारी प्राप्त होती है।
3. **आंतरिक वातावरण का विश्लेषण**–मोर्चाबन्दी का निर्धारण करने के लिए तीसरा महत्वपूर्ण कदम होता है व्यवसाय के आन्तरिक वातावरण का विश्लेषण करना । व्यवसाय के आन्तरिक वातावरण में नीतियां, संगठन ढांचा, प्रबन्ध सूचना प्रणाली, उत्पादन प्रणाली, उत्पादन क्षमता आदि को सम्मिलित किया जाता है। आन्तरिक वातावरण का विश्लेषण व्यवसाय की सुदृढ़ता एवं कमियों को पहचानने में मदद करता है। इसके अन्तर्गत यह देखा जाता है कि व्यवसाय के वितीय साधन . पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है अथवा नहीं, संगठनात्मक ढांचा कैसा है, प्रबन्धकीय कुशलता का स्तर कैसा है, उत्पादन विधियां कैसी है, उत्पादन क्षमता कितनी है आदि । व्यवसाय आंतरिक वातावरण का विश्लेषरण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि बाहरी वातावरण द्वारा प्रदान किए गए अवसरों का लाभ किस प्रकार उठाया जा सकता है तथा पैदा हुए खतरों का सामना कैसे किया जा सकता है।
4. **विकल्पों का विकास**–व्यवसाय के बाहरी एवं आन्तरिक वातावरण का विश्लेषण करने के बाद यह देखा जाता है किसमस्या के संभावित समाधान क्या–क्या हो सकते हैं। प्रायःSwot Analysis के दौरान ही अनेक विकल्प सामने आ जाते हैं। उदाहरण के लिए, व्यवसाय के बाहरी विश्लेषण से यह जानकारी प्राप्त हुई कि प्रतियोगी कम्पनियां अपने उत्पादों की बिक्री बढ़ाने के लिए अनेक नई स्कीम जारी करनी वाली हैं। प्रतियोगी कम्पनियों द्वारा पैदा किए इस खतरे का सामना अनेक तरीकों से किया जा सकता है, जैसे–यदि कोई प्रतियोगी कम्पनी दो के साथ एक मुक्त देने की स्कीम निकाल रही है तो 'दो के साथ दो मुफ्त' की

स्कीम निकाली जा सकती है, अथवा अपने उत्पाद के मूल्य में भारी कमी की जासकती है अथवा. प्रतिस्थापित वस्तुओं को बाजार में लाया जा सकता है आदि।

5. **विकल्पों का मूल्यांकन**–इस चरण पर सभी उपलब्ध विकल्पों का मूल्यांकन किया जाता है ताकि सर्वश्रेष्ठ विकल्प काचयन किया जा सके। विकल्पों के मूल्यांकन के अन्तर्गत सभी विकल्पों के गुणों एवं दोषों का अध्ययन किया जाता है।
6. **विशेष मोर्चाबन्दी का चयन**–इस चरण पर यह निर्णय लिया जाता है कि विभिन्न विकल्पों में से कौन सा विकल्प सर्वाधिकबढ़िया ढंग से समस्या का समाधान कर सकता है। उस विकल्प को ही मोर्चाबन्दी, कार्यनीति का नाम दिया जाता है।सबसे अंत में मोर्चाबन्दी को लागू करने का निर्णय लिया जाता है।

सही मोर्चाबन्दी निर्णय को निर्धारित करने वाले तत्व

एक सही मोर्चाबन्दी निर्णय को निर्धारित करने वाले तत्व निम्नलिखित हैं:

1. **आन्तरिक संगतता**–मोर्चाबन्दी संस्था के उद्देश्यों के अनुरूप होनी चाहिए। यदि यह संस्था के उद्देश्यों के विरुद्ध है तो इसके लागू करने में बाधा उत्पन्न होगी।
2. **बाहरी संगतता**–मोर्चाबन्दी आन्तरिक तत्वों के साथ–साथ बाहरी तत्वों अथवा वातावरण के अनुकूल भी होनी चाहिए। इसका निर्धारण इस ढंग से किया जाना चाहिए ताकि बाहरी वातावरण में परिवर्तन के समय इसे आसानी से बदला जा सके।
3. **उपलब्ध संसाधनों के समरूप**–मोर्चाबन्दी का निर्धारण उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए। संसाधनाके का अभिप्राय मानव–शक्ति, धन, माल आदि से है।
4. **जोखिम को सहन करने योग्य मात्रा** क्योंकि मोर्चाबन्दी भविष्य के लिए बनाई जाती है इसलिए इसमें जोखिम तो हो ही है, लेकिन जोखिम इतना होना चाहिए जिसे संस्था आसानी से सहन कर सके। उदाहरण के लिए, यदि प्रतियो कम्पनी के मुकाबले में हम 'दो के बदले दो मुफ्त' की स्कीम निकालते हैं तो हमें यह देख लेना चाहिए कि क्या हम ऐसा करने में सक्षम है अर्थात् क्या हमारी आय इतनी हो सकेगी जो नई स्कीम की लागतों को पूरा कर सके।
5. **सही समय**–मोर्चाबन्दी में समय तत्व का बहुत महत्व है। सही समय पर निर्धारित की गई एवं लागू की गई मोदी से ही उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। गर्म लोहे पर चोट करने वाली कहावत मोर्चाबन्दी के में पूरी तरह से लागू होती है। इसका अभिप्राय यह है कि अनुकूल परिस्थितियां आते ही मोर्चाबन्दी को लागू कर देना चाहिए अन्यथा इसका कोई लाभ नहीं है।

लघु प्रश्नः

1. नियोजन को परिभाषित करें।
2. उद्देश्यों से प्रबंधन का क्या मतलब है?
3. कॉर्पोरेट योजना को परिभाषित करें।

लंबे प्रश्नः

1. प्लानिंग से आपका क्या मतलब है। इसकी प्रक्रिया और प्रकार भी स्पष्ट करें।
2. निर्णय लेने की प्रक्रिया को परिभाषित करें। इसकी प्रक्रिया का भी विस्तार से वर्णन करें।
3. सामरिक सूत्रीकरण पर एक व्याख्यात्मक नोट लिखें।
4. उद्देश्यों के बारे में विस्तार से प्रबंधन शब्द का वर्णन करें। और इसकी प्रासंगिकता और अवगुण भी बताए।

यूनिट–III

आयोजनः संकल्पना प्रकृति; प्रक्रिया और महत्व; प्राधिकरण और जिम्मेदारी संबंध; केन्द्रीयकरण बनाम विकेंद्रीकरण; Departmentation; संगठन संरचना प्रपत्र और आकस्मिक कारक।

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, छात्र निम्नलिखित में सक्षम होंगे:

1. आयोजन की अवधारणा, प्रकृति, प्रक्रिया और महत्व को समझें।
2. प्राधिकरण और सामयिकता संबंध, केंद्रीयकरण और विकेंद्रीकरण और विभाग की अवधारणा को समझें।
3. संगठनात्मक संरचना और इसके विभिन्न रूपों, और आकस्मिक कारकों से खुद को परिचित कराएं।

Unit–III

संगठन

(Organisation)

संगठन का अर्थ

किसी भी उपक्रम के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यक है कि दो या दो से अधिक व्यक्ति संगठित हो। संगठन व्यक्तियों या समूहों के द्वारा किये जाने वाले कार्यों के संयोजन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उपलब्ध साधनों के प्रयोग के लिए शित रचनात्मक एवं समन्वयपूर्ण क्रिया क्षेत्र तैयार करने का प्रयत्न किया जाता है। यह व्यक्तियों तथा समूहों में कार्यों की कर्तव्यों को विभाजित करने की ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। मूने ने कहा है कि "संगठन उसी समय प्रारम्भ हो जाता है जब दिये गये उद्देश्य की पूर्ति हेतु लोग अपने प्रयास मिल जलकर करते हैं।'' प्राचीन समय में इस दृष्टिकोण से संगठन का जो स्वरूप था, वह अत्यन्त सरल था तथा कुछ ही व्यक्ति ऐसे संगठन का निर्माण करते थे जो वास्तव में श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित था। संगठन के प्रादुर्भाव के संबंध में यह कहा जा सकता कि इसकी आवश्यकता उस यम से ही महसूस की गयी जब से मनुष्यों ने साथ मिलकर कार्य करना प्रारम्भ उपर्युक्त विचारों के विश्लेषण की निम्नलिखित विशेषताएं

1 **संगठन संबंधों को एक ढांचा है**—संगठन के विभिन्न पदों पर कार्य करने वाले व्यक्तियों में कौन किसका अधिकारी होगा और कौन किसका अधीनस्थ, यह निश्चित कर दिया जाता है। सबसे उच्चतम एवं न्यूनतम पद को छोड़कर सभी व्यक्ति किसी के अधिकारी होते है तो किसी के अधीनस्थ उच्चतम पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति का कोई अधिकारी नहीं होताऔर न ही न्यूनतम पद कार्य करने वाले व्यक्ति का कोई अधीनस्थों।

2. **संगठन प्रबन्ध का यंत्र है**—संगठन के प्रबन्ध का यंत्र माना जाता है क्योंकि प्रबन्ध के अन्य सभी कार्यो की कुशलता प्रभावपूर्ण संगठन पर ही निर्भर करती है। संगठन के अभाव के कोई भी कार्य व्यवस्थित ढंग से नहीं हो सकता संगठन का प्रबन्ध का यंत्र कहना इस आधार पर भी उचित प्रतीत होता है यह एक ऐसी मशीन है जिसमे यदि एक पुर्जा भी खराब हो जाता है सही जगह पर न लगाया जाए तो मशीन काम नहीं करेगी अर्थात् यदि क्रियाओं के विभाजन के गलती हो जाए या पदों की स्थापना ठीक प्रकार से न हो तो सम्पूर्ण प्रबन्ध व्यवस्था फेल हो जाएगी।

3. **संगठन एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है**—संगठन की आवश्यकता केवल व्यवसाय में नहीं होती बल्कि गैर व्यावसायिक संस्थाओं में भी होती है इतना ही नहीं बल्कि जहां भी दो या दो से अधिक मिलकर किसी कार्य को करेगें संगठन की आवश्यकता होगी अतः संगठन में सार्वभौमिकता का गुण विद्यमान है।

4. **कार्य–विभाजन**—कार्य विभाजन संगठन का आधार होता है। कार्य विभाजन के अन्तर्गत व्यवसाय के पूरे भाग को अनेक भागों में बांटा गया है। प्रत्येक विभाग के कार्य को पुनः उपकार्यों में विभाजित कर दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति या विभाग को बार–बार एक ही काम करना पड़ता है और धीरे–धीरे वह उस काम का विशेषज्ञ बन जाता है।अतः संगठन के अन्तर्गत कार्य विभाजन द्वारा संस्थाओं उद्देश्य को कुशलतापूंक प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

5. **समन्वय**–संगठन के अन्तर्गत विभिन्न लोगों को अलग–अलग काम सौपे जाते है लेकिन सभी का लक्ष्य एक ही होता है–उपक्रम के उद्देश्यों को पूरा करना, संगठन ऐसी व्यवस्था करता है कि सभी लोगों का काम अलग–अलग होते हुए भी एक दूसरे पर निर्भर हो, जहां एक व्यक्ति का काम खत्म हो वहां दूसरे का शुरू हो जाए। क्योंकि एक व्यक्ति के काम की कमी अन्य सभी को प्रमाणित करती है। इसलिए सभी व्यक्ति अपने काम को ठीक समय पर पूरा करते है और एक–दूसरे के काम में अड़चन नहीं बनते। अतः स्पष्ट है कि संगठन की प्रकृति उपक्रम की सभी क्रियाओं अथवा विभागों अथवा पदो में समन्वय स्थापित करने की होती है।

6. **अनेक व्यक्ति**–संगठन अनेक व्यक्तियों का समूह होता है जो सामान्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए एकत्रित होते है। एक अकेला व्यक्ति संगठन का निर्माण नहीं कर सकता।

7. **सामान्य उद्देश्य**–संगठन के अनेक अंग होते है। सभी के अलग–अलग कार्य करते है लेकिन सभी एक सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने की ओर अग्रसर रहते है।

8. **स्पष्टतः परिभाषित अधिकार एवं दायित्व**–संगठन के अन्तर्गत ऊपर से नीचे तक विभिन्न पदों की एक श्रृखलाकी जाती है। प्रत्येक पद के क्या–क्या अधिकार एवं दायित्व होगे। यह भी स्पष्ट कर दिया जाता है। अर्थात संश कार्यरत प्रत्येक कर्मचारी को अपना काम कुशलतापूर्वक पूरा करने का अधिकार दिए जाते है। यह भी निश्चित कर जाता है कि कार्य निष्पादन ठीक प्रकार न होने पर उसका क्या उत्तरदायित्व हो।

संगठन के आवश्यक कदम

एक स्वस्थ संगठन के निर्माण के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाना आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य हैः

1. **उद्देश्य निश्चित करना**–सर्वप्रथम संस्था के उद्देश्य निर्धारित किए जाने चाहिए। संस्था के उद्देश्य तर्क संगत एवंहोने चाहिए और इसके साथ–साथ इसय बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त कि जा सके। उदाहरण के लिए एक यातायात कम्पनी की व्यवस्था एक प्रकाशक अथवा कागज बनाने वाली कम्पनी से सिर होगी और इसी प्रकार डेरी उद्योग की संरचना रेडियो व टेलीविजन उद्योग से भिन्न होगी।
2. **आवश्यक क्रियाएं निर्धारित करना**–किसी संस्था के उद्देश्य निर्धारित करने के बाद सबसे आवश्यक कार्य उन उपयों का प्राप्त करने के लिए की जाने वाली क्रियाओं का निर्धारण करके, प्रत्येक क्रिया के उद्देश्य, आकार प्रकृति और उत्तरदायित्व के आधार पर क्रियाओं का उप–विभाजन कर उनके विभिन्न वर्ग बनाए जाने चाहिए।
3. **क्रियाओं का श्रेणीबद्ध करना**–श्रेणीबद्ध का अर्थ इस प्रकार की या एक विभाग से संबंधित क्रियाओं को पृथक–पृथकविभागों में विभक्ति करना है। वर्गीकरण के प्रारम्भिक आधारों में उत्पादन, क्रय–विक्रय, वित्तीय साधन और कर्मचारी प्रबन्ध आदि उल्लेखनीय है।
4. **उत्तरदायित्व सौंपना**–क्रियाओं का श्रेणीकरण करने के बाद उनहें कर्मचारियों के सुपुर्द किया जाता है। किसी कर्मचारी को काम देते समय उसकी कार्य के प्रति रुचि और योग्यता का ध्यान रखता आवश्यक है और यदि वह इसके योग्य नहीं है तो उसे आवश्यक प्रशिक्षण देना चाहिए। इसके बाद सभी कर्मचारियों का उत्तरदायित्व निर्धारित कर देना चाहिए।
5. **अधिकार अन्तरण**–जिन कर्मचारियों का कर्तव्य दिए जाते है उन्हें उनसे संबंधित आवश्यक अधिकार भी दिए जाने चाहिएजिससे वे अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन कर सकें और जिन व्यक्तियों से उन्हें काम कराना है उने काम करा सकें।

6. **समन्वय**–एक सफल संगठन के लिए यह आवश्यक है कि संस्था के सभी विभाग एवं उपविभागों में समन्वय किया जाए।
7. **उचित कार्य के लिए उचित व्यक्ति का चुनाव**–संगठन प्रक्रिया में प्रबन्धकों का यह देखना चाहिए कि सभी कार्यों पर योग्य एक अनुभवी व्यक्ति नियुक्त किए जाएं इसके लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारियों का चुना निष्पक्ष होना चाहिए और किसी व्यक्ति विशेष का वही कार्य किया जाना चाहिए जिसे वह अच्छी तरह से पूरा कर सके। इसके लिए कर्मचारियोंकी तकनीकी योग्यता रूचि और रूझान पर विशेष ध्यान जाना चाहिए।
8. **कार्य के लिए उचित वातावरण की सुविधा**–प्रबन्धकों को कार्य का उचित वातावरण तैयार करना पड़ता है जैसे उचित एवं सुविधाजनक स्थान पर फैक्टरी लगाना, कर्मचारियों को आवश्यक कच्चा माल, साजों सामान एवं उपकरणों की व्यवस्था करना और समय समय पर उनका मनोबल बढ़ाना आदि।

संगठन का महत्व

अमरीका के श्री एण्ड्र्यू कार्निगी ने 1901 में जब अपनी विशाल सम्पत्ति को ''अमरीका के इस्पात निगम को बेचा उसी समय का उनका यह कथन इस संदर्भ में विशेष महत्वपूर्ण है–''हमारा सब धन, महान कार्य, खाने आदि सब कुछ ले जाओं, किन्तु हमारा सगठन हमारे पास छोड़ दो। कुछ वर्षों में ही हम स्वयं को पुनः स्थापित कर लेंगे।'' उनके इस शब्दों से संगठन की महत्ता स्पष्ट होती है। श्री लोनन्सबरी फिश क अनसार ''संगठन की उपयोगिता चार्ट से कहीं अधिक होती है। यह वह तत्र हाजसका सहायता से प्रबन्ध व्यवसाय का संचालन समन्वय तथा नियंत्रण करता है। यह वास्तव में प्रबन्ध तथा आधारशिला है। याद सगन का योजना में कोई दोष रह जाता है तो प्रबन्ध व्यवस्था का कार्य कठिन एवं प्रभावहीन दी जाती है। इसके विपरीत यदि वह विद्यमान आवश्यकताआ की पूर्ति करने के लिए स्पष्ट, तर्क संगत एवं पर्व नियोजित है तो वह समझना चाहिए कि स्वस्थ प्रबन्ध की प्राथमिक आवश्यकता की प्राप्ति की जा चुकी है।''

कुशल एवं प्रभावी प्रबन्ध के लिए एक ठोस संगठन का विशेष महत्व है। प्रबन्धक इसी संगठन के माध्यम से संस्था का प्रबन्ध ते हैं आवश्यक आदेश व निर्देश देते हैं, भिन्न–भिन्न कार्यों में तालमेल एवं सामंजस्य पैदा करते हैं, तथा संस्था की सुदृढ़ता मा निर्भर करती है। सस्था का समस्त याजनाए केवल कल्पना बनकर रह जाएंगी जब तक प्रबन्धक इन्हें लाग कराने क लिए, एक ठोस संगठन की रचना न कर सके।

संगठन के महत्व को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है:

1 **प्रबन्धकीय कार्यकुशलता में वृद्धि**–एक सुदृढ़ संगठन प्रबन्धों की कार्यकशलता बढाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करताहै। विभिन्न कार्यों को वैज्ञानिक आधार पर बंटवारा, कार्य की आवश्यकता के अनुरूप कर्मचारियों की भर्ती, विकेन्द्रीय के कारण निम्न प्रबन्धकों को महत्वपूर्ण विषयों पर विचार एवं मनन के लिए अधिक समय का उपलब्ध होना, कार्य का पुनावृत्ति को रोकना, कर्मचारियों में मधुर संबंध स्थापित करना, मितव्ययता की प्राप्ति आदि अनेक ऐसे कारण हा प्रबन्धकीय कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। प्रबन्ध सुचारू रूप से चलता है. यदि संगठन की स्पष्ट रूप में व्याख्या की गई हो विधिवत हो, निश्चित हो तथा प्रबन्धकों की सहायतार्थ उपयक्त क्रियात्मक समह उपलब्ध किया गया हो। श्रेष्ठ सगठन उपक्रम के समस्त कर्मचारियों, उनकी योग्यताओं एवं गुणों का पूरा–पूरा लाभ उठाता है। साथ ही साथ निम्न प्रबन्ध स्तर के लोगों में कार्य का विभाजन करके उच्च प्रबन्ध को अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण कार्य करने का सुअवसर प्रदान करता है।
2. **कार्यों को व्यवस्थित करना**–व्यक्तियों का समूह छोटा ही क्यों न हो उसके कार्यों को व्यवस्थित करने के लिए एक संगठन की आवश्यकता होती है। संगठन, उपक्रम में प्रत्येक व्यक्ति का कार्य तथा स्थान निर्धारित करता है। जिससे बड़े–बड़े उपक्रमों में हजारों कर्मचारियों के कार्यरत होते हुए भी समस्त काम व्यवस्थित

ढंग से चलता रहता है। व्यवस्था का ही दूसरा नाम संगठन है। संगठन का अभाव अव्यवस्था को जन्म देता है।

संगठन के तत्व

संगठन के तत्वों के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये है जिनमें से निम्न प्रमुख है—चेस्टर आई बरनार्ड—ने संगठन में निम्न तत्वों को बताया है:

1. सम्प्रेषण
2. सेवा की दाल
3. समान उद्देश्य

हॉज तथा जानॅसन ने निम्न तत्व बताये हैं –

1. उद्देश्य
2. समूह सदस्यता
3. कार्य विभाजन
4. भौतिक सम्पतियां
5. नीतियां एवं कार्य—विधियां

फेलिक्स एन लेपिज ने निम्न तत्व बताये है—

1. उद्देश्य
2. व्यक्ति
3. क्रियांए

ऐलन के अनुसार प्रत्येक संगठन द्वारा तीन कार्यो का निष्पादन किया जाता है –

1. श्रम विभाजन
2. व्यक्तिगत सदस्यों द्वारा विभाजन
3. संबंधों की स्थापना।

कुन्ट्ज तथा ओ' डोनेल ने संगठन प्रक्रिया में निम्न चरणों को शामिल किया है

1. उद्देश्यों का निर्धारण
2. मोर्चाबन्दी, नीतियों तथा योजनाओं का निर्माण
3. उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए क्रियाओं का निर्धारण
4. क्रियाओं का अंकित करना व वर्गीकृत करना
5. क्रियाओं का समूहीकरण करना
6. प्रत्येक समूह को उसके अध्यक्ष के माध्यम से क्रियाओं के निष्पादन हेतु आवश्यक अधिकार प्रदान करना।
7. समय—समय पर इन कार्यों का परीक्षण करना।

ब्रेच के अनुसार संगठन प्रक्रिया में निम्न प्रमुख कदम शामिल किए जाने चाहिए—

1. विभिन्न पदों के साथ संलग्न किये जाने वाले उत्तरदायित्वों का निर्धारण ।
2. प्रबन्धकीय पदों पर नियुक्त होने वाले व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों का आबंटन।
3. प्रबन्धकों के मध्य कुछ औपचारिक संबंधों का निर्धारण।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि एक संगठन प्रक्रिया में निम्न तत्वों का होना आवश्यक है–

1. **कार्य विभाजन**–प्रत्येक उपक्रम के लिए यह एक महत्वपूर्ण कार्य है। प्रबन्धक किसी भी कार्य के लिए समूह विशेष कोउस कार्य का दायित्व सौंपता है। ऐसे दायित्व का विभाजन करते समय प्रत्येक कर्मचारी को कार्यक्षमता को ध्यान मेंरखा जाता है। ऐसा कार्य पूर्ण तत्परता के साथ पूरा कि जाता है।

2. **पारस्परिक संबंधों की स्थापना**–संस्था के विभिन्न विभागों, उप–विभागों तथा विभिन्न स्तरों के मध्य पारस्परिक संबंधीका निर्धारण किया जाता है। निर्धारण करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसे संबंधों के निर्माण से सम्प्रेषण व्यवस्था में कोई बाधा उत्पन्न न हो।

3. **अधिकार स्रोत**–दायित्वों के निर्धारण के पश्चात् उन्हें पूरा करने हेतु पर्याप्त अधिकारों की भी आवश्यकता होती है। अतः कौन व्यक्ति किससे आदेश लेगा तथा किसको आदेश देगा, यह निर्णयन का विषय है। यह आवश्यक है कि अधिकार संगत के रूप में विभिन्न स्तर पर कार्यरत व्यक्तियों को अधिकार हस्तान्तरित कर उनकी जिम्मेदारी निर्धारित की जावे।

4. **संगठन का उद्देश्य**–संगठन का उद्देश्य ऐसा होना चाहिए जिसे उचित प्रयास के बाद प्राप्त किया, जा सके। ऐसे उद्देश्योंकी प्राप्ति के लिए समस्त स्तरों एवं क्रियाओं में प्रााली समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

5. **संगठन का संरचनात्मक पक्ष**–किसी भी संस्था के संगठनात्मक ढांचे को निर्धारित करते समय अधिकारों की सीमा,विशिष्टीकरण की दशा, उपलब्ध कर्मचारियों की योग्यता, संगठन की लागत तथा साधनों की पूर्ण रूप से ध्यान में रखनाचाहिए।

6. **कुशल कर्मचारियों का चयन**–बिना कुशल कर्मचारियों के एक संगठन अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकता है। अतःचयन प्रक्रिया का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि आवश्यक कार्यों को सम्पादित करने हेतु उपयुक्त एव कुराल व्यक्तियों का चयन किया जा सके।

7. **विभिन्न क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना**–संस्था की विभिन्न क्रियाओं में पूर्ण तालमेल का होना नितान्त आवश्यक है। इसके लिए जरूरी है कि कार्य का विभाजन इस प्रकार से किया जाय जिससे कि विभिन्न क्रियाओं में परस्पर बना रह सके। अतः संस्था के कर्मचारियों को उनकी योग्यता तथा क्षमता के अनुरूप ही कार्य सौंपा जाना चाहिए।

औपचारिक संगठन

औपचारिक संगठन–औपचारिक संगठन एवं संगठनों में से है जिनमें प्रत्येक स्तर पर स्थिति, अधिकार एवं उत्तरदायित्व को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर दिया जाता है। इस प्रकार के संगठनों में अधिकार उच्च स्तर से निम्न स्तर की और प्रत्य है और पूरी संगठन संरचना संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। बरनार्ड के अनुसार, ''जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों की क्रियायें एक दिये हुए उद्देश्य की तरफ जान–बूझकर समन्वित की जाती हैं, तब उसे औपचारिक संगठन कहा जाता अनुसार ही, ''औपचारिक संगठन के अन्तर्गत सयंत्र की पद्धति, नीतियां, नियम सम्मिलित होते हैं, जो यह अभिव्यक्त कि तकनीकी उत्पादन के कार्य को प्रभावी ढंग से पूर्ति के लिए एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ क्या संबंध होगा? यह मानव संगठन तथा तकनीकी संगठन के मध्य अपेक्षित संबंधों को निर्धारित करता है। अतः स्पष्ट है कि पद्धतियों, नियमों, नीतियों तथा कम्पनी के नियन्त्रणों द्वारा परिभाषित मानवीय पारस्परिक सम्बन्ध का स्वरूप ही औपचारिक संगठन का निर्माण जाता है। औपचारिक संगठन इस ठोस तक पर आधारित होता है कि उचित ढंग से संगठित व्यक्तियों के सम्मिलित प्रयास असंगठित व्यक्तियों के व्यक्तिगत प्रयासों के योग से कही ज्यादा अच्छे परिणाम देंगे।

औपचारिक संगठन के लाभ

हेन्स एवं मैसी ने औपचारिक संगठन के निम्नांक्ति लाभों का उल्लेख किया है–

1. अधिकारों और उत्तरदायित्वों की स्पष्ट व्याख्या होने के कारण आपसी मतभेदों के उत्पन्न होने की संभावना नहीं के बराबररहती है।
2. पूर्णतया नियोजन होने के कारण इससे किसी कार्य का दोहराव नहीं होता।
3. विभिनन व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों के निश्चित होने से उनके मध्य अन्तर स्वतः समाप्त हो जाता है।
4. इस संगठन में टाल–मटोल की संभावना नहीं रहती है, क्योंकि इसमें अधिकरों एव उत्तरदायित्वों की स्पष्ट व्याख्या करादी जाती है।
5. उद्देश्यों को प्राप्त करने या उन तक पहुंचने का यह महत्वपूर्ण एवं सरल साधन है।
6. इसमें किसी एक ही व्यक्ति का कोई महत्व नहीं होता है। उसका अत्यधिक महत्व स्वतः समाप्त हो जाता है।
7. इस संगठन में अवसरवादिता और पक्षपात के अवसर समाप्त हो जाते है।
8. इसमें कार्यों के सही प्रमापों का निर्धारण अधिक अच्छी तरह से किया जा सकता है।

औपचारिक संगठन के दोष

औपचारिक संगठन के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं

1. औपचारिक संगठन का सबे बड़ा दोष यह है कि यह उपक्रम में पहल शक्ति को समाप्त करता है।
2. इस प्रकार के संगठन में अधिकारी कई बार अपने अधिकारों को अनावश्यक रूप से अपने ही हित में प्रयोग करते है।
3. इस प्रकार के संगठन में कार्यरत व्यक्ति सामाजिक संगठनों की मान्यताओं व भावनाओं पर किसी भी प्रकार का ध्याननहीं देते हैं।
4. इस प्रकार के संगठन यत्रवत हाते हे जो कि मनुष्यों से ज्यादा अपने नियमों व नीतियों को महत्व प्रदान करते हैं।
5. औपचारिक संगठन अनौपचारिक सम्प्रेषण में बाधायें उपस्थित करता है।
6. इस प्रकार के संगठन में समन्वय की समस्या भयंकर रूप से निरंतर बनी रहती है।

औपचारिक संगठन के सिद्धान्त

प्रबन्ध के परम्परावादी लेखकों ने संगठन की निर्माण प्रक्रिया हेतु कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादव किया है। सिद्धान्तों की सची का अवलाकन करने से पहल यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि क्या ये सिद्धान्त मात्र औपचारिक संगठन से ही सम्बन्धित है। आधुनिक प्रबंध विद्वानों द्वारा इन सिद्धांतों की इस आधार पर कड़ी आलोचना की गई है कि ये सिद्धांत के लिए नहींय अपित मशीनों के लिए बनाए गए हैं। वर्तमान प्रबंध विचारक तर्क देते हैं कि एक अभियन्ता द्वारा पुल निर्माण करने हेतु डिजाइन बनानेऔर संगठन नियोजन द्वारा कंपनी ढांचे के निर्माण करने में जमीन आसमान का अंतर है.। इस तथ्य को नहीं नकारा जा सकता है कि संगठन के निर्माण का प्रयुक्त तत्व मानव है जिसका व्यवहार अनिश्चित है तथा इसके अनेक भावनात्मक एवं अनौपचारिक संबंधों की वैचारिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। अतएव इनके सिद्धांतों की आवश्यकता होती है।

सिद्धांत

1. **अधिकार का प्रभाव**–ऊपर से नीचे तक अधिकारों का स्पष्ट रेखांकन होना चाहिए। अधिकार जैसा कि हमें ज्ञात हैं निर्देश देने, समन्वय करने तथा निर्णय लेने से संबंधित होते हैं। संगठन में अधिकारों का एक एसा स्पष्ट रेखा होनी क सपूर्ण संगठन में कार्यशील हो तथा प्रत्येक को यह जानकारी होना चाहिए कि वह किसक नीचे कार्य कर मिलिट्री में कभी–कभी इसे आदेश की श्रृंखला के नाम से भी जाना जाता है।
2. **आदेश की एकता**–संगठन में किसी को भी एक से अधिक पर्यवेक्षक को प्रतिवेदन देना नहीं चाहिए कि उसे किस व्यक्ति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा? अन्य शब्दों, इसे आदेश की एकता जाता है और साधारण शब्दों में इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति का एक से अधिक अधिकारी या नायक नहीं होना चाहिए क्योंकि दो व्यक्तियों का एक ही अधीनस्थ होना, कई समस्यओं का जन्म देता है।
3. **उत्तरदायित्व एवं अधिकार की स्पष्ट व्याख्या**–प्रत्येक पर्यवेक्षक के उत्तरदायित्वों तथा अधिकारों को पहले से ही लिखित परिभाषित होना चाहिए। इस सिद्धान्त के कारण यह संभव होता है कि उत्तरदायित्व एवं अधिकारों का ऊपर से, संभव नहीं होता। यह सिद्धान्त इस बात का भी ज्ञान दिलाता है कि एक अधिकारी की अनुपस्थिति उसके अधीन द्वारा उसके कार्यों को किस प्रकार से निभाया जाएगा।
4. **उत्तरदायित्व तथा अधिकार का संयोजन**–उत्तरदायित्व तथा संबंधित अधिक साथ–साथ चलने चाहिए।
5. **अधीनस्थों के प्रति वरिष्ठ अधिकारियों के उत्तरदायित्व**–एक उच्च अधिकारी का उत्तरदायित्व निश्चित रूप से उसके अधीनस्थों द्वारा किए गए कार्यों के प्रति होना चाहिए।
6. **अधिकारों का प्रत्यायोजन**– अधिकारों का प्रत्यायोजन उस निम्न स्तर तक करना चाहिए जिस सीमा तक ऐसा किसी जाना संभव हो।
7. **अधिकार स्तरों का न्यूनतम होना**–अधिकार स्तरों की न्यूनतम संख्या रखनी चाहिए। यह सिद्धान्त संगठन में अधिकारोंके अधिकतम स्तर नहीं होने चाहिए' को मान्यता प्रदान करता है, क्योंकि जितने अधिक स्तर होंगे, उतनी ही बड़ी आदेश श्रृंखला होगी तथा संगठन में उतना ही अधिक समय दिए गए निर्देशनों तथा सूचनाओं के पहुंचाने में लग जाएगा। गिलमोर की इस संबंध में यह मान्यता है कि अधिकांश संगठनों ने छः से अधिक पर्यवेक्षक स्तरों की आवश्यकता नहीं है।'' यह सिद्धान्त सुझाता है कि संगठन में अत्यधिक पर्यवेक्षण स्तर निर्णयन कार्य में अनावश्यक देरी तथा व्यावधान उत्पन्न करते हैं।
8. **प्रत्येक व्यक्ति का कार्य सीमित होना**–प्रत्येक व्यक्ति का कार्य, जो कि संगठन में कार्यरत है, महत्वपूर्ण होना चाहिए तथा मात्र एक नेतृत्वपूर्ण कार्य के रूप में जहां तक संभव हो, आंका जाना चाहिए। यह विशिष्टीकरण का सिद्धान्त है।
9. **रेखीय कार्य का स्टाफ कार्य से अलग होना**–कई स्थितियों में एक ही अधिकारी द्वारा समन्वय स्थापित करने तथा पर्यवेक्षण करने की सीमाएं है। यह नियंत्रण के विस्तार का क्षेत्र के सिद्धान्त के नाम से समझा जाना चाहिए। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत किसी भी अधिकारी को कुछ निश्चित अधीनस्थों से अधिक का पर्यवेक्षण नहीं करना पड़ता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एक सीमित संख्या में ही अधीनस्थों की देखभाल कर सकता है। अन्य शब्दों में, इस सिद्धान्त के अनुसार उत्तरदायित्व या पर्यवेक्षण का क्षेत्र निश्चित तथा अधीनस्थों की सीमित संख्या होनी चाहिए। अतएव यह महत्वपूर्ण है कि जहां अधीनस्था के कार्य अंर्तसंबंधित हैं, वहां नियंत्रण का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत नहीं होना चाहिए अन्यथा एक व्यक्ति द्वारा अधीनस्थाको नियमित रूप से पर्यवेक्षित करना संभव नहीं होगा।
10. **संगठन का लोचशील होना**–संगठन परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुसार, परिवर्तनीय होना चाहिए, अर्थात् यह लोचशील का होना चाहिए। संगठन जितना संभव हो, सरल होना चाहिए जिससे परिवर्तन को समायोजित किया जा सके तथा उसका प्रकृति गत्यात्मक बनी रहे।

अनौपचारिक संगठन

यह एक सामान्य अनुभव है कि प्रत्येक संगठन में प्रायः लोग औपचारिक सीमाओं से निकलकर अनौपचारिक सामाजिक स. का निर्माण करते हैं। इसका प्रमुख कारण है कि अधिकांश व्यक्ति समूहों के सदस्यों के रूप में रहते एवं कार्य करते हैं। प्रत छोटे समह का अपना अनौपचारिक आचरण होता है। ऐसे समूह के विभिन्न सदस्यों को अपनी भमिकाएं अदा करनी होती है वे प्रत्येक सदस्य एक विशेष तरीके से अपनी प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करता है पवत्ति तथा आचरण को अधिक प्रभावित करते हैं द्य अनौपचारिक संगठन से आशय उन जो व्यक्तियों के एक दूसरे के साथ संगठित होने पर स्वतः उदय होते हैं।

बरनार्ड के अनसार "एक संगठन उस समय अनौपचारिक माना जाता उद्देश्यों के लिए स्थापित हो जाता है। ''प्रोफेसर डेविस" ''अनौपचारिक संगठन को ऐसे व्यक्तिगत एवं सामाजिक संबंधों के जालया तंत्र के रूप में मानते हैं जो औपचारिक संगठन द्वारा बनाया या स्थापित नहीं किया जाता है ''अनौपचारिक संगठन की अवधारणा को जोसिफ एल. मैसी ने'' ऐसे मानवीय समूह की प्रतिक्रियाओं के रूप में परिभाषित किया है जो स्वतः एक प्राकृतिक रूप से समय की लंबी अवधियों में उत्पन्न होती है। ऐसे अनौपचारिक संगठन इसलिए भी निर्मित हो जाते हैं क्योंकि एक व्यक्ति कार्यात्मक ढांचे में बांधा नहीं जा सकता जब तक कि उसे सामाजिक रूप में से महत्वहीन प्राणियों के स्तर तक न पहुंचा दिया जाए।

अब यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि जहां भी लोग साथ मिलकर काम करते हैं, सामाजिक संबंध तथा समूहों का उदय होना निश्चित हो जाता है। इस संबंध लोगों को एक दूसरे के साथ निरंतर संपर्क होने के कारण स्वतः उत्पन्न होते है। ऐसे अनौपचारिक संगठन इसलिए भी निर्मित हो जाते हैं क्योंकि एक व्यक्ति कार्यात्मक ढांचे में बांधा नहीं जा सकता जब तक कि उसे सामाजिक रूप में से महत्वहीन प्राणियों का स्तर तक न पहुंचा दिया जाए। औपचारिक संगठन का को अधिक प्रभावित करता है। ऐसे संगठन के सदसय प्रायः अपने प्रमाप निर्धारित कर लेते हैं। सामहिक हितों की बोल करते है और विचार विनिमय करते हैं। इन संगठनों का आधारभूत उद्देश्य मानवीय आवश्यकताओं को संतुष्ट करना है जिनकी पूर्ति औपचारिक संगठन संरचना से नहीं की जा सकती है।

औपचारिक संगठन सामाजिक संगठन की उन भावनाओं एवं मान्यताओं को धन में नहीं रखते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति व व्यक्तियों केसमह अनौपचारिक रूप से अतसंगठित होते हैं। अपने समुदाय में व्यक्ति एक साथ मिलकर व्यक्तिगत संबंधों का निर्माण करते हैं और अनौपचारिक समूहों में संगठित हो जाते हैंय जिनमें प्रत्येक व्यक्ति कोक एक निश्चित स्थान तथा महत्वपूर्ण पद प्राप्त होता है।

इस संबंध में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि सामाजिक जीवन में अनौपचारिक संगठन आधारभूत पक्ष है और उनका होना निश्चित है। **जोसफ ए० लिटरर** के शब्दों में, ''यह संगठन मानवीय जीवन का एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण अंग है और ऐसे विभिन्न अंग संपूर्ण संगठन का निर्माण करते है।'' स्ट्रोस एवं सैसल्स के अनुसार, "अनौपचारिक संगठन एक ऐसी वास्तविकता है जिसकी उपेक्षा प्रबंध केवल अपनी जोखिम पर ही कर सकता है।''

यह एक गलत धारणा है कि अनौपचारिक समूह औपचारिक संगठनों में बने नहीं रह सकते और इसलिए उनको समाप्त कर देना चाहिए, परन्तु ऐसे औपचारिक समूहों से छुटकारा पाना कठिन होगा, क्योंकि वे औपचारिक संगठन की प्राकृतिक स्वतः उत्पन्न एवं स्वभाविक शाखाएं हैं। सर्वोच्च प्रबंध की योग्यता और चातुर्य संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऐसे सामाजिक समूहों को लाभ उठाने पर निर्भर करती है। कभी–कभी औपचारिक संगठन के समुचित और प्रभावी ढंग से कार्य करने में ये समूह महत्वपूर्ण तंत्र के रूप में कार्य करते हैं । औपचारिक संगठन की कमियों को दूर करने में औपचारिक संगठन सहायक होते हैं। वस्तुतः एकऔपचारिक संगठन प्रत्येक आकस्मिक संकट के निवारणार्थ, अल्पकालीन कठिन परिस्थितियों, जिनके लिए नए संबंधों तथा नए तरीकों से व्यवहार करने

की आवश्ययकता होती है, का सामना करने में सफल नहीं हो सकता है। ऐसी परिस्थितयों में किसी अन्य व्यवस्था की अपेक्षा अनौपचारिक संबंध भी कम व्यय पर संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति में लोगों की सहायता कर सकते हैं। कीथ डेविस के अनुसार, अनौपचारिक संगठन कभी–कभी कार्य समूह में एक नकारक शक्ति के रूप में देखा जाता है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। यदि उसके हितों व लक्ष्यों को संस्था के हितों तथा लक्ष्यों के साथ समन्वित कर दिया जाए तो वह संस्था के उद्देश्यों के लिए, न कि उसके विरुद्ध कार्य करेगा। प्रबंधक का यह सबसे बड़ा उत्तरदायित्व है कि वह ऐसा समन्वय लाने का प्रयास करे जिससे कि दो समूह आपस में मिलकर काम करें, न कि उनमें पारस्परिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाए। यही प्रभावी प्रबंध है और उसका व्यापक परिणाम इसमें है कि अनौपचारिक संगठन किसी कार्य की पूर्ति में सहायता प्रदान करें।'' अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि बिना अनौपचारिक संगठन के औपचारिक संगठन अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल अप्रभावी होता है। आज प्रबंध के समक्ष यह महत्वपूर्ण कार्य है कि वह औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन में इस प्रकार का समन्वय स्थापित करे जिससे की संघर्ष में कमी हो तथा स्वस्थ समायोजना एवं समन्वय को प्रोत्साहन मिले यह लक्ष्यतभी प्राप्त हो सकता है जबकि प्रबंधक इस तथ्य के महत्व को स्वीकार करे कि अनौपचारिक समूह व्यक्तियों की प्रवृत्तियों तथा उनके मनोबल को प्रभावित करते हैं। पर्यवेक्षक को समूहों के निर्माण को प्रोत्साहित करना चाहिए। उस समूह के नायकों को उसे मान्यता देनी चाहिए तथा उनको ऐसे कार्य सौंपने चाहिएं जो उनकी समूह में स्थिति का आभव्यक्त करते हों से बना चाहिए कि ऐसे समह नायकों को संस्था की नीतियों तथा कार्यविधियों के संबंध में उचित सूचनाए निरन्तर उपन रहें। अतः स्पष्ट है कि यदि अनौपचारिक समूहों को समुचित प्रोत्साहन दिया जाता है तो ये रचनात्मक रूप में का लिए तत्पर हो सकते हैं।

अधिकार व उत्तरदायित्व संबंध

अधिकार या सत्ता की परिभाषा–प्रबन्ध साहित्य में अधिकार या सत्ता शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों के किया जाता है। कारण अधिकार के विभिन्न स्रोतों का कहना है विभिन्न विद्वानों ने सत्ता का अलग–अलग प्रकार से परिभाषित किया है, कुछ प्रमुख परिभाषाओं का उल्लेख किया गया है।

1. **हेनरी फेयोल** के अनुसार, ''आदेश प्रदान करने का अधिकार तथा आज्ञा पालन के लिए बाध्य करने की शक्ति को सत्ता कहते हैं।
2. **कुन्ट्ज एवं ओ'डोनेल,** ''अधिकारों से तात्पर्य वैधानिक या स्वत्वाधिकार से संबंधी शक्ति से होता है दूसरे शब्दों में आदेशदेने का कार्य करने का स्वत्व ही अधिकार है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से बात स्पष्ट होती है कि अधिकार या सत्ता प्रायः संगठन से प्राप्त होती है। इसे औपचारिक सत्ता सिद्धान्त कहा जाता है।

उत्तरदायित्व

प्रबन्ध साहित्य क्षेत्र में उत्तरदायित्व शब्द बहुत भ्रांतिपूर्ण है। क्योंकि विभिन्न प्रबन्धकों द्वारा इसे अलग–उलग अर्थों में प्रयोग किया गया हो उत्तरदायित्व शब्द को कर्तव्य कार्य तथा अधिकार के रूप में प्रयोग किया जाता है। उत्तरदायित्व की महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्न हैं–

1. **जार्ज आर. टेरी** के अनुसार, ''उत्तरदायित्व एक ऐसा आबंधन या दायित्व है जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति सौंपे गए कर्तव्योंको अपनी सर्वश्रेष्ठ क्षमता से सम्पन्न करता है।''
2. **कून्ट्ज एवं ओ' डोनेल** के अनुसार, ''उत्तरदायित्वों को एक अधीनस्थ कर्मचारी के ऐसे दायित्व के रूप में परिभाषितकिया जाता है। जिसको कोई कार्य सौंपा गया है और यह वह उसे पूरा करना है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि उत्तरदायित्व का आश्रय अपने उच्च अधिकारी के आदेशानुसार कार्य करने के दायित्व से कभी–कभी उत्तरदायित्व का आशय उस कार्य भी लगाया जाता है जो कार्य व्यक्ति के सुपुर्द किया जाता है। उदाहरण के लिये एक प्रबंधक अपने किसी अधीनस्थ कर्मचारी से यह कहता है कि तुम्हारा उत्तरदायित्व यह है रूप में प्रयोग किया गया है लेकिन यदि वह व्यक्ति उस कार्य को पूरा करने में असफल रहता है तो उस कार्य के असफल होने का दायित्व उसी व्यक्ति से सम्बधित होगा। इस प्रकार से वह भी उत्तरदायी कहलाएगा। अधिकार तथा उत्तरदायित्व वास्तव में एक ही सिक्के के दो पहलू है। यदि हम किसी व्यक्ति को केवल उत्तरदायित्व सौंपे और अधिकार प्रदान न करें तो वह व्यक्ति अपने कार्य को पूरा नहीं कर पाए। और केवल अधिकार प्रदान करने की बात भी उचित जान नहीं पड़ती। उत्तरदायित्व या जबावदेही या उत्तरदेयता इन स्थितिमा को प्रायः एक अर्थ में प्रयोग किया जाता है।

उत्तर देयता या जबावदेही तथा उत्तरदायित्व इन दोनों शब्दों में कुछ विद्वानों के अंतर किया जाता है। ऐलन के अनु'' उत्तरदायित्व का अभिप्राय किसी काम में शामिल तरह–तरह की जिम्मेवारियों से है। जबकि उत्तरदायित्व अपने उचित अधिकारके सामने स्पष्टीकरण देने में दिए गए जबाबदेह से है यदि इस अर्थ को ध्यान में रखा जाए तो कहा जा सकता है कि एक अधिकारी अपने दायित्व को नीचे बांट सकता है। लेकिन वह अपनी उत्तरदेयता को नीचे नहीं सौंप सकता। क्योंकि अधिकारी के सामने हो तो वह व्यक्ति जबाब देगा जिसे मूल के रूप में वह कार्य सौंपा गया था इसका अभिप्राय यह है अधिकारी अपने अधिकारों का अन्तरण तो कर सकता है लेकिन अपने उत्तरदायित्व का अन्तरण नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए एक सिनेमा हाल का प्रबंधक अपने सहायक प्रबंधक को यह उत्तरदायित्व सौंपता है अधीन किसी अन्य कर्मचारी को सौंप देता है। यदि यह कार्य पूरा नहीं होता तो प्रबंधक के समक्ष सह कर्मचारी को और सहायक प्रबंधक अधीनस्थ कर्मचारी के ऊपर बहाना डाल उत्तरदेता का आधार आदेश तथा अधीनस्थों से बह सम्बंधित मानेन सौंपे गए है। इस दृष्टि से और कोई अधिकारी कार्य के लिए होती है कि एक उच्च अधिकारी अपने सहायक अधिकारी को अपने कुछ अधिकारों एवं दायित्व देकर स्वयं इन दायित्वों से मुक्त नहीं हो सकता।

मोरिस हर्ले के शब्दों में, उत्तर देयता अधिकारों को प्रत्यायोजन द्वारा प्राप्त उत्तरदायित्वों को पूरा करने का अधिकार है व्यवहार में इन दोनों शब्दों में अन्तर करना बहुत कठिन है प्रायः उत्तरदायित्व शब्द का प्रयोग ही किया जाता है। जिसके अन्तर्गत किसी भी संस्था में पदाधिकारियों को अपने उच्च अधिकारियों से अधिकार या सत्ता प्राप्त होती है। जैसे अंशधारी या स्वामियों की पूंजी लगाने के कारण सत्ता प्राप्त होती है। सचालको का अंशधारियों में प्रबंधक संचालकों को संचालक से महाप्रबंधक को प्रबंध संचालक से अन्य विभागीय प्रबध को महाप्रबंधक से सत्ता या अधिकार प्राप्त होते हैं। चूंकि व्यवसाय एक संगठन है और इसमें व्यवसाय के प्रबंधकों को जो अधिकार या सत्ता प्राप्त होती है इसे औपचारिक अधिकार सा संगठनात्मक अधिकार कह सकते है ये ऐसे अधिकार होते है जिसके आधार पर अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को निर्देश दिए जाते हैं उनसे काम लिया जाता है और उनकी क्रियाओं पर उचित नियंत्रण रखा जाता है।

जबावदेही : अर्थ एवं परिभाषा

अर्थ – जबावदेही का अर्थ एक ऐसे वचन से है जिनके अन्तर्गत कोई व्यक्ति अपने अधिकारों की सीमा में कार्य करते हए किसी विशेष कार्य को पर्ण निश्चित आधारों के आधार पर पूरा करता है। जबावदेही किसी सम्पूर्ण समूह की न होकर किसी व्यक्ति विशेष की होती है। यहां जिसे कार्य सौंपा जाता है वही जबावदेही के लिए उत्तरदायी होता है।

परिभाषा

जबाबदेही की परिभाषा इस प्रकार है :

लुइस ए. ऐलन के अनुसार, जबाबदेही एक ऐसा दायित्व है जिसके अंतर्गत किसी विशेष फार्म से संबंधित उत्तरदायित्व को पूर्व निश्चित प्रमाणों के अनुसार पूरा किया जाता है तथा अधिकारों का प्रयोग भी किया जाता है। **जबाबदेही व उत्तरदायित्व में अंतर**—कुछ विद्वानों का मत है कि उत्तरदायित्व एवं जबाबदेही में कोई स्पष्ट अंतर नहीं है लेकिन वास्तव में इनमें निम्नलिखित अंतर है।

1. उत्तरदायित्व किसी कार्य को पूरा करने से संबंधित है जबकि जबाबदेही कार्य के परिणामों से संबंधित है।
2. उत्तरदायित्व की उत्पति कार्यों से होती है जबकि जबाबदेही की उत्पति अधिकारों से होती है।
3. उत्तरदायित्व एक दायित्व है जबकि जबाबदेही एक बंधन।

अधिकार एवं उत्तरदायित्व में अंतर

1. अधिकार वह शक्ति है जिसके द्वारा पूर्व निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उचित कार्य करने हेतु दूसरों को बाध्य किया जाता है जबकि उत्तरदायित्व सौंपे गये कार्य को अपनी श्रेष्ठतम योग्यता से करने का अधिनस्थ बंधन है।
2. अधिकारों का प्रत्यायोजन किया जा सकता है लेकिन उत्तरदायित्वों का प्रत्यायोजन नहीं किया जाता है।
3. अधिकार सदैव उच्च अधिकारी से संबंधित होते हैं जबकि उत्तरदायित्व अधीनस्थ शक्तियों से संबंधित होते हैं।
4. अधिकारों का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है जबकि उत्तरदायित्व का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर होता है।

भारार्पण

भारर्पण का अर्थ –प्रबंधकों का मुख्य कार्य व्यक्तियों के समह से कार्य लेना है। न कि स्वयं कार्य करना। इस तथ्य से यह स्पष्ट हाता है कि प्रबंधकों को कुछ ऐसे अधिकार प्राप्त होते हैं। जिनके आधार पर वे दूसरों से कार्य करवाते हैं। इसी अधिकार को हम सत्ता या अधिकार कह कर पुकारते है। सत्ता को प्रबंध की कुंजी माना जाता है जिसके आधार पर प्रत्येक प्रबंधक के कार्य एवं व्यवहार निर्देशित होते हैं।

अधिकार या सत्ता की परिभाषाएं— प्रबंध साहित्य में अधिकाकर या सत्ता का प्रयोग अनेक अर्थो के विभिन्न स्त्रोंतों का होना है। विभिन्न विद्वानों ने सत्ता को अलग–अलग प्रकार से परिभाषित किया है। यहां कुछ परिभाषाओं का उल्लेख किया गया है।

1. **प्रो. चियो हैमन** के अनुसार, ''अधिकार सौंपने या भारार्पण से आराम, केवल सहायकों को निर्दिष्ट सीमाओं के अंतर्गतकार्य करने का अधिकार प्रदान करना है।''
2. **लुइस ए. एलेन** के अनुसार, ''अधिकार सौंपना, प्रबंध की क्रियात्मक संचालक शक्ति है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसकापालन करते हुए प्रबंधक अपने कार्य को इस तरह विकसित करता है। जिससे वह संपूर्ण कार्य के उस भाग को निष्पादन कर जिसे वह केवल स्वयं ही, संगठन में अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण प्रभावशाली ढंग से कर सकता है और शेष कार्यको पूरा कराने में दूसरों की सहायता प्राप्त कर सकता है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि भारार्पण का अभिप्रायः अधीनस्थों को सौंपे गए दायित्व को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए आवश्यक अधिकार प्रदान करना है।

भारार्पण की विशेषताएं

1. भारापर्ण का आशय होता है कि एक प्रबंधक द्वारा स्वतंत्र रूप से अधिकारों का प्रयोग करना। इस संबंध में उच्च अधिकारी कुछ सीमाएं भी लगा सकता है। इन सीमाओं के अंतर्गत संस्था की नीतियों, नियमों तथा कार्यविधि को ध्यान में रखकरही कार्य किया जाना चाहिए।

2. भारार्पण का आशय यह नहीं होता है कि उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को कुछ अधिकार सौंपकर स्वयं उन अधिकारियों से वंचित हो जाए। उच्च अधिकारी भी वे अधिकार लिए रहते हैं।
3. जो अधिकार सौंपे गए हैं उन्हें आवश्यकता पड़ने पर कम किया जा सकता है, बढ़ाया जा सकता है या वापस भी लिया जा सकता है।
4. एक प्रबंधक ऐसे अधिकार अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को नहीं सौंप सकता है जो उसे स्वयं ही प्राप्त न हो।
5. अधिकारों के भरार्पण में यह ध्यान रखना चाहिए प्रायः सामान्यतः प्रकृति के कार्य ही अधीनस्थ कर्मचारियों को सौंपे जाए।
6. भारार्पण सामान्य तथा विशेष हो सकते है। विशेष भारार्पण के अंतर्गत अनेक कार्य विशेष रूप से सौंपे जाते हैं तथा सामान्य रूप भारार्पण में सभी कार्य सामान्य रूप से सौंप दिए जाते हैं।
7. भारार्पण मौखिक अथवा लिखित भी हो सकते हैं।
8. भारार्पण एक कला है इसलिए इसका प्रयोग करते समय कुछ नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।
9. अधिकार सौंपने वाले अधिकारी की उत्तरदेयता निम्न अधिकार के ऊपर नहीं जाती। दूसरे शब्दों में, उच्च अधिकारी कोअंतिम परिणाम के लिए अंतिम रूप से उत्तरदायी माना जाएगा।
10. अधिकार सौंपने की मूल प्रक्रिया में तीन बाते शामिल करते हैं :

    (अ) काम सौंपना
    (ब) अधिकार प्रदान करना तथा
    (स) उत्तरदायित्व निर्धारण करना

11. अधिकारों का भारार्पण ऊपर से नीचे की तरफ होता है।

भारार्पण की प्रक्रिया

अधिकारों का भारार्पण प्रत्येक संगठन का एक अनिवार्य भाग है। इसके बिना कोई भी संगठन सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता हैं विलियम न्यूर्मेन के अनुसार भारार्पण के निम्न मुख्य अंग है :

(अ) किसी कार्य को कार्याकारिणी द्वारा अपने निकट अधीनस्थों को कर्तव्य सौंपना।
(ब) साधन का प्रयोग करके तथा आवश्यक कार्य करने का अधिकार स्वीकृत करना।
(स) सौंपे गए कर्तव्यों को संतोषजनक ढंग से निष्पादित करने के लिए प्रत्येक अधीनस्थ पर उत्तरदायित्व रखना।

1. **भारार्पण योग्य कार्य का चयन** –किसी उपक्रम में संगठन के सभी कार्यों को एक प्रबंधक स्वयं संपन्न नहीं कर सकता। अतः निर्धारित उददेश्यों की प्राप्ति हेतू कार्य का कुछ भाग सपने अधीनस्थों को सौंपना चाहिए। कार्य का विभाजन करने के पश्चात प्रबंधक को यह निश्चित करना होता है कि वह किन विभागों की क्रियाओं को अपने पास रखना चाहता है और किन क्रियाओं का कार्यभार अपने अधीनस्थों को सौंपना चाहता है। कार्यों को सौंपने के संबंध में दो सामान्य नियमों का पालन किया जाना चाहिए। प्रथम कार्यों एवं कर्तव्यों का बंटवारा, द्वितीय अधीनस्थों द्वारा उनको भली प्रकार समझा जाना चाहिए।

2. **अधिकार प्रदान करना**–अधीनस्थ कर्मचारियो को कार्य सौपने के पश्चात उसे पूरा करने के लिए कछ आवश्यक अधिकार भी सौंपे जाने चाहिए। जिस प्रकार के अधिकारों की आवश्यकता स्वयं प्रबंधक को उन कार्यों को करने के लिए होती है। ठीक वैसे ही अधिकारों को प्रबंधक अधीनस्थों को सौंपेगा ताकि कार्य संपन्न किया जा सके। अतः यह स्पष्ट है कि तक अधीनस्थ को कार्यभार पूरा करने के लिए आवश्यक अधिकार प्राप्त नहीं होंगे तब तक वह भला कैसे अपने कर्तव्य को प्रभावी ढंग से निभा सकेंगे।

3. उत्तरदायित्व निर्धारित करना–अधिकारों का भारार्पण एक ऐसा कार्य है जिसके माध्यम से हम इच्छित परिणामों की पनि चाहते हैं। इसलिए अधीनस्थों को कार्यभार सौंपने तथा उन्हें आवश्यक अधिकार प्रदान किए जाने पर ही भारार्पण से संबंधित कार्य समाप्त नहीं हो पाता । अपितु इसके अंतर्गत यह भी देखना होता है कि अधीनस्थ अपना कार्य ठीक प्रकार से कर रहे हैं या नहीं। जो भी कार्यभार सौंपा जाता है उसे नियमित विधि से पूरा करना ही दायित्व अथवा जवाबदेही कहलाता है। इस प्रकार कार्यभार के भारार्पण में अधीनस्थ की ओर दायित्व अथवा जवाबदेही कहलाता है। इस प्रकार कार्यभार के भारार्पण में अधीनस्थ की ओर दायित्व या जवाबदेही भी सम्मिलित होती है। दायित्व अथवा जबावदेही सदैव एक व्यक्ति अथवा संस्था के प्रति होती है। इसके अतिरिक्त यह सदैव अपने से ऊपर के अधिकारी के प्रति होती है। नीचे के अधिकारी के प्रति नहीं।

भारार्पण के प्रकार

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से भारार्पण को विभिन्न आधारों पर निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है।

1. **विशिष्ट तथा सामान्य भारार्पण**–सामान्य भारार्पण के अंतर्गत किसी विभाग की समस्त क्रियाओं का कार्यभार किसी एकव्यक्ति को सौंप दिया जाता है। इसके विपरीत, जब किसी व्यक्ति को निश्चित कार्यभार सौंपा जाता है। तो वह 'विशिष्टभारार्पण' कहलाता है। जैसे–क्रय, प्रबंधक, उत्पादक प्रबंधक आदि को सौंपे गए कार्य–भार।

2. **लिखित तथा मौखिक भारार्पण**–लिखित रूप में सौंपे गए कार्यभार को लिखित भारार्पण कहते हैं। इसके विपरीत जबकेवल मौखिक रूप से ही भारार्पण किया जाता है तो वह 'मौखिक भारार्पण' कहलाता है। मौखिक भारार्पण की अपेक्षा लिखित भारार्पण अधिक निश्चित होता है।

3. **औपचारिक तथा अनौपचारिक भारार्पण**–सामान्य भारार्पण का रूप औपचारिक होता है। औपचारिक भारार्पण संगठन की अधिकार रेखाओं द्वारा निर्धारित सीमाओं के आधार पर होता है। इन सीमाओं का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। इसके विपरीत औपचारिक भारार्पण के अंतर्गत अधीनस्थ कर्मचारी उच्च अधिकारियों की आज्ञा पर नहीं, अपितु स्वतः प्रेरणा से कार्य करते हैं। इसका उद्देश्य लालफीताशाही को काटकर समय की बचत करना होता है। सार्वजनिक उद्योगों में लालफीताशाही का बोलबाला होता है क्योंकि वहां पर केवल औपचारिक विधियों से ही भारार्पण होता है। जबकि निजी उद्योग में औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही विधियों से भारार्पण होता है। जिसके कारण लालफीताशाही की आशंकानहीं रहती।

4. **अधोगामी, ऊर्ध्वगामी एवं समपार्श्विक भारार्पण**–अधिकांश भारार्पण उधोगामी होते हैं, क्योंकि उच्च अधिकारी अपने सेनिम्न अधिकारी को कार्यभार सौंपता है। लेकिन कभी–कभी एक अधिकारी के द्वारा अपने से उच्च अधिकारी को भी भारार्पण किया जा सकता है। इस प्रकार का भारार्पण ऊर्ध्वगामी भारार्पण कहलाता है। अनौपचारिक भारार्पण पाश्विक भी हो सकता है। जब कार्य संपादन के समस्तरीय अधिकारी की सहायता प्राप्त करना आवश्यक हो तो इस प्रकार के भारार्पण की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में बहुत कम कार्य स्वतंत्र (बिना अन्य व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त किए हुए) रूप से पूरे किए जा सकते हैं। अतः इस प्रकार के भारार्पण का महत्व कार्यों की जटिलताओं एवं उनके परम्परावलम्बी होने के कारण बढ़ता जा रहा है।

5. **प्रशासनिक, क्रियात्मक. भौगोलिक एवं तकनीकी भारार्पण**–जब केवल प्रशासकीय कार्यो का ही प्रत्योजन किया जात है तो उसे प्रशासकीय भारार्पण'' कहते हैं। ऐसे प्रत्यायोजन में कोई समस्या पदा नहीं होती क्योंकि आधकाशंतः दैनिक प्रकति के होते हैं। जब प्रत्यायोजन क्रियाओं के आधार पर किया जाता है

जैसे–क्रय विक्रय, विपणन वित्त व विज्ञापन आदि तो उसे क्रियात्मक या कार्यकारी प्रत्यायोजन कहते है। वृहत व्यावसायिक देशव्यापी स्तर पर होता है तो प्रबंधकीय अधिकारों एवं शक्तियों को क्षेत्रीय प्रबंधाधिकारियों को सौंप देते हैं। बीमा निगम के क्षेत्रीय कार्यालय को प्रभावशाली प्रबंध स्थापना करने में सहायता प्रदान करता है।

भारार्पण के मार्ग में बाधाएं या कठिनाइयां

भारार्पण के मार्ग में आने वाली बाधाओं को सामान्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है।

अ. उच्चाधिकारी के कारण बाधाएं

ब. अधीनस्थों के कारण बाधाएं

अ. उच्चाधिकारी के कारण बाधाएं

ये बाधाएं सामान्यतः मनोवैज्ञानिक होती हैं या वरिष्ठ अधिकारियों में भारार्पण के तकनीकी ज्ञान के अभाव में उत्पन्न होती है–

1. **प्रशासन की इच्छा**–प्रबन्धकों में प्रायः अपने अधीनस्थों पर रोब डालने का भूत सवार रहता है तथा इस कारण वह स्यं को सदा ही कार्य में जुटा हुआ दिखाना चाहते हैं। वह चाहते है कि अधीनस्थ उनके पास कार्य के लिए खशात इस कारण वे कार्यों को पूर्ण रूप से नहीं सौंपते।
2. **विश्वास का अभाव**–कई बार प्रबन्धकों में यह भावना घर पर जाती है कि उनके अधीनस्थ योग्य नहीं हैं तथा को योग्यता तथा कार्यकुशलता से नहीं कर सकते तथा वह स्वयं उसे अच्छी तरह कर सकते हैं। इस कारण वे अधिकारोंको नहीं सौंपते।
3. **अधीनस्थों से भय**–कभी–कभी अधिकारियों में यह डर घर कर जाता है कि अगर वे अपने अधीनस्थों को कार्य सौपेंगे तो उनकी योग्यता प्रकाश में आ जायेगी तथा उच्च प्रबन्धक उन्हीं की प्रशंसा करेंगे जिससे उनका महत्व कम हो जायेगा।इस डर के कारण भी बहुत से प्रबन्धक अधिकार नहीं सौंपते।
4. **जोखिम**–कार्य–गलत या न होने की दशा में प्रत्येक कर्मचारी अपने उच्चाधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है। इस रूपमें बहुत से प्रबंन्धकों को यह डर होता है कि यदि उसके अधीनस्थ कार्य पूरा या ठीक नहीं करेंगे तब इसका उच्चाधिकारीउसे डांटेगा न कि उस अधीनस्थ को। इस तरह प्रबन्धक कार्य के गलत होने की जोखिम नहीं लेना चाहते।
5. **अधीनस्थ कर्मचारी के हस्तांतरण का भय**–कई बार प्रबन्धक इस भय के कारण कि यदि वह अधिक अधिकार तथाकार्य सौपेंगे तो उनका उच्चाधिकारी योग्य सहायक की योग्यता प्रकाश में आने से उसे अन्य विभाग में पदोन्नति देकर भेज दिया जायेगा। जिससे उनके हाथ से एक कार्यकुशल तथा योग्य सहायक जाता रहेगा।
6. **अधिकार सौंपने की तकनीक का ज्ञान न होना**–कभी–कभी प्रबन्धकों को अधिकार सौंपने की तकनीकी का ज्ञान नहीं होता। ऐसी दशा में वे अधिकार सौंपने से झिझकते हैं। उन्हें मालूम नहीं होता कि कार्य का कौन–सा भाग सौंपा जाए तथा कौन–सा अपने हाथ में रखा जाए। इस अज्ञान के कारण भी वे अधिकार सौंपने से डरते हैं।

ब. अधीनस्थों की ओर से बाधाएं

क. **अपर्याप्त प्रेरणा**–यदि अधीनस्थों को नई जिम्मेदारियों तो दी जाएं लेकिन इसके लिए कोई नई प्रेरणा जैसे वेतन या पदवृद्धि न दी जाए तो साधारण अधीनस्थ स्वाभाविक रूप से इसको अच्छा नहीं समझेंगे और उचित विधि से काय मा करेंगे।

ख. **अधीनस्थों की अयोग्यता**–जब वास्तव में कर्मचारी किसी काम को करने के योग्य नहीं होते तब उन्हें कर्तव्य एवं आधव सौंपना उचित एवं न्याय संगत नहीं होता। क्योंकि अयोग्य, अकुशल और तकनीकी ज्ञान से शून्य कर्मचारी उत्तरदायित कार्यों को भली प्रकार से नहीं कर सकते। ऐसी दशा में वे अधिकार सौंपने से झिझकते है। उन्हें ज्ञान नहीं होत का कौन सा भाग सौंपा जाए तथा कौन सा भाग अपने हाथ में रखा जाए। इस अज्ञानता के कारण भी वे आधका से डरते हैं।

ग. **विश्वास का अभाव**–बड़े अधिकारियों को छोटे अधिकारियों और कर्मचारियों पर विश्वास नहीं होता। इसलिए वे अपने कर्तव्य और अधिकार दूसरों को सौंपना नहीं चाहते। इस संबंध में वे ये सोचते है कि उनके द्वारा ही सभी कार्य अधिक कार्यकुशलता के साथ किए जा सकते हैं। लेकिन इसका एक दूसरा पक्ष भी है जब दूसरों को काम सौंपा ही नहीं जाएगा बोगद कैसे कहा जा सकता है कि दूसरे इसे कर ही नहीं सकते। जबकि उन्हें काम करने का अवसर ही प्रदान नहीं किया जाएगा।

घ. **अधीनस्थों से भय**–सभी प्रबंधक योग्य एवं अनुभवी नहीं होते। अतः अयोग्य एवं न हो। और जिनमें प्रबंधकों की निजी योग्यता व प्रतिष्ठा आवश्यक हो।

ड. संगठन में अधीनस्थ कर्मचारियों को कार्यभार सौंपने की प्रथा एवं परंपराओं का न होना। अनुभवनहीन प्रबंधक भी अपने कशल एवं योग्य अधीनस्थ कर्मचारियों के कारण अपना कार्य सुचारू रूप से चलाते रहते हैं। लेकिन उन्हें अधिकार सौंपते समय सदैव इस का भय बना रहता है। कि उनकी अयोग्यता का पर्दा न उठ जाए, इसलिए वे तन, मन और धन से इसका विरोध करते हैं।

च. **आत्मविश्वास की कमी**–कई बार अधीनस्थों को स्वयं पर विश्वास नहीं होता कि वे सौंपे गए कार्य को भली भांति कर पाएंगे। फलस्वरूप वे सही जिम्मेदारी स्वीकार करने में टाल–मटोल करते हैं। नई जिम्मेदारियां स्वीकार करने पर अनेक बार असफल होने का डर तो लगा रहता ही है साथ ही उच्च्य अधिकारियों की आलोचना और प्रताड़ना का डर भी हो तो अधीनस्थ प्रायः सुरक्षावादी दृष्टिकोण पंसद करते है।

भारार्पण के सिद्धांत

1. **प्रत्याशित परिणामों के द्वारा अधिकार सौंपने का सिद्धांत**–संभावित परिणामों को प्राप्त करने के लिए उसी सीमा तकअधिकार सौंपने चाहिए। अधिकारों के अभाव में अधीनस्थ अपने दायित्वों का निष्पादन नहीं कर पाते हैं। कार्यों, अधिकारों तथा दायित्व के बीच स्पष्ट रेखा होनी चाहिए। अधीनस्थों को अधिकार अपेक्षित है।
2. **पूर्ण उत्तरदायित्व का सिद्धांत**–अधीनस्थों को अपने उच्चाधिकारी के प्रति पूर्ण जवाबदेही होती है। दूसरी तरफ यदि कोई उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थों को कोई सामान्य कार्य सौंप देता है तो वह अपनें उत्तरदायित्व से बच नहीं सकता। इस प्रकार, प्रत्येक उच्चधिकारी अपने अधीनस्थों द्वारा किए जाने वाले कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है।
3. **अधिकार एवं दायित्व का सिद्धांत**–अधीनस्थ कर्मचारियों को सौंपे गए कार्यों व उत्तरदायित्वों के अनुरूप ही अधिकारसौंपे जाने चाहिए। इस प्रकार अधिकार और दायित्व के बीच संतुलन होना चाहिए।
4. **आदेश की एकता का सिद्धांत**–अधिकार सौंपने का कार्य केवल एक ही वरिष्ठ अधिकारी होना चाहिए ताकि आदेशोंमें एकरूपता बनी रहे।
5. **अधिकार सौंपने में स्पष्टता का सिद्धांत**–भारार्पण सामान्य का विशिष्ट, लिखित या मौखिक हो सकता है। भारार्पण कीप्रकृति चाहे कुछ भी क्यों न हो। उसका स्पष्ट होना आवश्यक है। स्पष्टता के सिद्धांत की दृष्टि से लिखित एवं विशिष्ट अधिकार सौंपने की क्रिया उत्तम होती है।
6. **अव्यक्तिकरण का सिद्धांत**–भारार्पण शक्तियों के स्थान पर पदों के लिए किया जाना चाहिए। उच्चाधिकारी को चाहिएकि वह भारार्पण को जितना हो सके उतना अव्यक्तिगत बनाने का पूरा प्रयास करें।

7. **अपवाद का सिद्धांत**–भारार्पणकर्ता को चाहिए कि वह अपने अधीनस्थों को सौंपे गए कार्यों में हस्तक्षेप न करें। यहां तककि यदि अधीनस्थ कोई त्रुटि भी करे तो भी उसे. कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए। उच्चाधिकारी कोविशेष या बहुत आवश्यक परिस्थिति में अपवाद स्वरूप हस्तक्षेप करना चाहिए।
8. **निष्पादन के प्रमाप का सिद्धांत**–प्रभावी भारार्पण की दृष्टि से निष्पादन के स्तर निश्चित होने चाहिए। निष्पादन के स्तरसे अधिकारियों की जवाबदेही बनी रहेगी। नियंत्रणहीन भारार्पण बिना लगाम के घोड़े के समान होता है।
9. **सत्ता स्तर का सिद्धांत**–जो कार्य या विषय जिस अधिकारी या सत्ता की सीमा क्षेत्र में आता हो उसका निर्णय वहीं करे।वह विषय उच्च अधिकारी के पास नहीं भेजना चाहिए। अच्छा यह हो यदि स्वयं उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थों के निर्णय प्रकृति को स्वेच्छा से त्याग दें।
10. **उत्तरदायित्वों का भारार्पण नहीं होना चाहिए**–भारार्पण केवल अधिकारों का ही किया जा सकता है। उत्तरदायित्वों का नहीं। उच्चाधिकारी अपने अधिकारों का भारार्पण करके अधीनस्थों से कार्य करवा सकता है। लेकिन उन अधिकारों तथा कार्यों के लिए अंतिम रूप से दायित्व उच्चाधिकारी का ही होगा।

भारार्पण की कठिनाईयां

अधिकार सौंपने के कार्य की बाधाएं मुख्य रूप से निम्नलिखित वर्गो से संबंधित हैंअधिकार सौंपने वाले उच्च अधिकारियों की ओर से बाधाएं :

अ. **शासन की इच्छा**–प्रबंधकों में प्रायः अपने अधीनस्थों पर रोब डालने का भत सवार रहता है। इस प्रकार वह स्वय को सदा कार्य में जुटा हुआ दिखाना चाहते हैं। प्रबंधक चाहते है कि अधीनस्थ उनके पास कार्य के लिए खुशामद कर। इसअज्ञान का के कारण भी वे अधिकार सौंपने से डरते हैं।

ब. **अधिकार सौंपने के सिद्धांतों का ज्ञान न होना**–कभी–कभी प्रबंधकों को अधिकार सौंपने की तकनीक का ज्ञान नहीं होता।

विकेन्द्रीकरण

यह भारार्पण का ही एक विकसित रूप हैं जब किसी उच्चाधिकारी के द्वारा अधीनस्थ कर्मचारी को अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में अधिकारों का भारार्पण किया जाता है तो वह विकेन्द्रीकरण कहलाता है।

इसके द्वारा पहले करने से केंद्रों में वृद्धि होती है तथा प्रत्येक अधिकारी को अपना निर्णय लेने की स्वतंत्रता रहती है। इस प्रकार विकेंद्रीकरण एक प्रकार से प्रेरणा व उत्तरदायित्वों का वितरण है जिनके अंतर्गत निम्नतर स्तरों को भी लगभग समस्त अधिकार (महत्वपूर्ण को छोड़कर, जो केंद्रीय बिंदु द्वारा उत्तम तरीके से प्रयोग में लाए जा सकते हैं। व्यवस्थित रूप से सौंप दिए जाते हैं। अतः विकेन्द्रीकरण का क्षेत्र भारार्पण की तुलना में व्यापक होता है। क्योकि :

1. भारार्पण में सत्ता एवं दायित्व एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को सौंपे जाते हैं। जबकि विकेंद्रीकरण सत्ता का समस्त संगठनमें भारार्पण है।
2. विकेंद्रीकरण के लिए भारार्पण आवश्यक है लेकिन भारार्पण के लिए विकेंद्रीकरण नहीं।
3. भारार्पण सत्ता के सीमित वितरण के लिए होता है जबकि विकेंद्रीकरण विस्तृत वितरण को प्रकट करता है।
4. विकेंद्रीकरण की नीतियों में समरूपता होती है जबकि भारार्पण की नीतियों में समरूपता का पाया जाना आवश्यक नहीं है।

हेनरी फेयोल ने विकेंद्रीकरण को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''प्रत्येक कार्य जिससे अधीनस्थों की भूमिका का महत्व बढ़ता है, विकेंद्रीकरण कहलाता है।''

हैरोल्ड कुन्ज तथा ओ' डोनेल ने कहा है कि ''अधिकार का विकेंद्रीकरण भारार्पण का प्राथमिक पहलू है तथा जिस सीमा तक अधिकारों का भारार्पण नहीं होता है वे केंद्रित हो जाते है। इसी प्रकार के विचार को डेबिस, ब्रैच हइट तथा मैसी ने भी प्रस्तुत किए हैं।

इस प्रकार विकेंद्रीकरण अधिकारों को सौंपने की ऐसी विधि है जिसके अंतर्गत उच्चाधिकारियों द्वारा निम्नस्तरों के अधीनस्थों के दायित्वों के अनुरूप अधिकार सौंपे जाते हैं।

विकेंद्रीकरण की विशेषता

विकेंद्रीकरण को संगठन के स्वास्थ्य में गिरावट आने की स्थिति में औषध रूप बताया गया है। स्वास्थ्य लाभ के लिए औषध प्रयोग एक निश्चित मात्रा में ही लाभकर होता है। औषध की मात्रा में कमी अथवा आधिक्य की दशा में औषध लाभकर नहीं रहती, यही बात विकेंद्रीकरण के संबंध में ठीक उतरती है।

1. अधिक संस्था में निर्णय प्रबंध सोपान में निम्न स्तर पर लिए जाते हैं।
2. अधिक महत्वपूर्ण निर्णय प्रबंध सोपान में निम्न स्तर पर लिए जाते हैं। उदाहरण के लिये जितनी अधिक धनराशि पूंजीगतपर एक संयंत्र प्रबंधक बिना किसी के परामर्श के व्यय करने का अधिकार रखता है विकेंद्रीकरण की मात्रा उतना ही कि मानी जाएगी।
3. अधिक क्रियाओं को प्रभावित करने वाले निर्णय निम्न प्रबंध स्तर पर लिए जाते हैं। उस कम्पनी में विकेंद्रीकरण की मात्राकम मानी जाएगी। जहां भी समत्र प्रबंधक केवल परिचालन संबंधी निर्णय ले सकता है। जबकि उसकी तुलना में अन्य कम्पनियों में उस प्रबंध स्तर का अधिकारी परिचालन के अलावा वित्तीय एंव कार्मिक विषय संबंधी निर्णय लेने का भी अधिकार रखता है।
4. **निर्णयों की कम जांच पड़ताल**—निर्णयों की कम जांच पड़ताल की जाती है। यदि कोई जांच पड़ताल न की जाए तो विकेंद्रीकरण अधिक माना जायेगा। विकेंद्रीकरण की मात्रा थोड़ी मानी जाएगी यदि निर्णय लेने के बाद प्रवराधिकारी को निर्णय की सूचना प्रदान करना आवश्यक हो। दूसरी ओर यदि निर्णय लेने से पूर्व प्रवराधिकारी से परामर्श लेना आवश्यक हो तो विकेंद्रीकरण और भी कम माना जाएगा जितने कम और जितने निम्न स्तर पर व्यक्तियों से परामर्श करना आवश्यकहो विकेंद्रीकरण उतना ही अधिक माना जाएगा।

विकेंद्रीकरण प्रत्यायोजन से काफी मेल खाते हुए भी उससे बहुत भिन्न है। इसे प्रबंध एवं संगठन के एक दर्शन के रूप में समझा जाना चाहिए कि किस प्रकार के निर्णय किस स्तर पर लिए जाएं, नियंत्रण की व्यवस्था क्या हो, निर्णय के नीति निर्धारण सिद्धांत क्या है और अन्य बहुत से प्रश्नों का उत्तर विकेंद्रीकरण से पूर्व प्रदान करना आवश्यकता है।

विकेंद्रीकरण के लाभ

1. उच्च प्रबंधकों के कार्यभार में कमी होती है और वे महत्वपूर्ण कार्यों पर अधिक समय लगा सकते हैं।
2. अधीनस्थ कर्मचारियों के महत्व में वृद्धि होती है। उन्हें अपेक्षाकृत अधिक अधिकार प्राप्त होते हैं। जिससे कार्य में उनकी रूचि बढ़ती है और वे अधिक मेहनत से कार्य करते हैं।
3. अधीनस्थ कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि होती है क्योंकि वे अधिक स्वतंत्रता (विकेंद्रीकरण के कारण) से कार्य कर सकते हैं। जिससे उनमें पहलपन की शक्ति का विकास होता है।
4. क्रियाओं पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। क्योंकि इसके अंतर्गत प्रमापों का निर्धारण व कार्य के निष्पादन का मापन आसान हो जाता है।

5. विभिन्न क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने में सहायक है। क्योंकि इसमें विभिन्न क्रियाओं में विभागीय स्तरीय पर समन्वय स्थापित कर लिया जाता है। उन्हें उच्च स्तर तक ले जाने की आवश्यकता नहीं होती है।
6. कार्यों का शीघ्र निष्पादन किया जा सकता है।
7. संदेशवाहन में सुविधा रहती है।
8. कर्मचारियों में अनौपचारिक संबंधों को प्रोत्साहन मिलता है।
9. नई—नई विधियों को क्रियान्वित करना आसन हो जाता है।
10. सौद्देश्य प्रबंध को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

विकेंद्रीकरण की मात्रा को प्रभावित करने वाले कारक

एक संगठन में विकेंद्रीकरण की निम्नलिखित तत्वों से प्रभावित होती है

1. **संगठन का आकार**—संगठन का आकार विकेद्रीकरण की मात्रा को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख घटक है। संगठन क के आकार का निर्धारण विक्रय की मात्रा, कर्मचारियों की संख्या और मशीनों की संख्या आदि पर निर्भर करती है। संगठन नाम में इनकी मात्रा जितनी अधिक होगी संगठन का आकार उतना ही अधिक बड़ा होगा और वहां विकेंद्रीकरण की आवश्यकता पड़ेगी।
2. **प्रबंधकीय दृष्टिकोण**—विकेंद्रीकरण की मात्रा बहुत कुछ उच्च प्रबंधकों के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। यदि प्रबंधक तानाशाही प्रवृति के होते हैं तो वे अधिकतर अधिकार अपने पास ही रखना चाहेंगे और परिणामस्वरूप विकेंद्रीकरण कमहोगा। इसके विपरीत यदि वे प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण रखते हैं तो विकेंद्रीकरण अधिक होगा।
3. **संगठन का इतिहास**—यदि संस्था का कारोबार आरंभ से ही बड़े पैमाने पर स्थापित किया जाता है तो अधिक विकेंद्रीकरण पाया जाएगा। इसके विपरीत यदि संस्था का इतिहास धीरे—धीरे विकास करने का है तो विकेंद्रीकरण कम, व्यावसायिक प्रबंध पाया जाएगा क्योकि ऐसी संस्थाओं में उच्च अधिकारियों का हस्तक्षेप पहले से अधिक रहता है और उनकी यह आदतबन जाती है।
4. **योग्य अधीनस्थों की उपलब्धता**—यदि संस्था में योग्य एव प्रशिक्षित अधीनस्था उपलब्ध है तो विकेंद्रीकरण की मात्राअधिक रहेगी क्योंकि उच्च अधिकारी निर्णय लेने के अधिकार अधीनस्थों को सौंपने में कोई जोखिम नहीं समझेंगे। इसके विपरीत यदि योग्य अधीनस्थों की कमी है तो विकेंद्रीकरण कम होगा।
5. **नियंत्रण की तकनीक**—यदि संगठन में अच्छी नियंत्रण तकनीके लागू की गई है तो उच्च प्रबंधक विकेंद्रीकरण के इच्छुक होंगे क्योंकि अच्छी नियंत्रण व्यवस्था के कारण निर्णय गलत लेने की संभावना कम हो जाती है।
6. **निर्णयों में जोखिम**—यदि संस्था में लिए जाने वाले निर्णय अधिक जोखिमपूर्ण है तो उच्च प्रबंधकों में विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति कम पाई जाती है। इसके विपरीत यदि ज्यादातर जोखिम रहित है अर्थात सस्ते हैं तो विकेंद्रीकरण की मात्रा अधिक होगी।
7. **विभिन्नीकरण की समस्या**—एक ऐसी संस्था जिसमें अनेक वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है और उसके कारोबार का फैलाव अधिक है तो विकेंद्रीकरण अधिक होगा क्योकि अलग—अलग वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय हेतु अगल—अलग स्वतत्र इकाईयों अथवा विभागों का निर्माण करना होगा। ऐसा करने से निर्णय अच्छी एवं शीघ्रता से लिए जा सकेंगे।
8. **सरकारी हस्तक्षेप**—सरकारी हस्तक्षेप जितना अधिक होगा। विकेंद्रीकरण की मात्रा उतनी ही कम होगी। क्योंकि सरकारी नीतियों को केंद्रीय स्तर के प्रयास से सरलता से लागू किया जा सकता है।

9. **गतिशील वातावरण**–जिस संस्था के कारोबार में अधिक अनिश्चित्ता (तकनीक, मांग, बाजार आदि में लगातार परिवर्तन होना) पाई जाती है उनमें विकेंद्रीकरण का अधिक महत्व है, क्योंकि बदलती परिस्थितियों का सामना पूरा संगठन एक साथ मिलकर ही कर सकता है और संगठन में एकता तभी होगी जब सभी को निर्णयों के अधिकार दिये गये हों। इसके विपरीत, स्थाई वातावरण में चलने वाले व्यवसायों में विकेंद्रीकरण कम पाया जाता है।

10. **नीतियों से समरूपता की आवश्यकता**– विकेंद्रीकरण की मात्रा इस बात पर भी निर्भर करती है कि उच्च प्रबंधकों द्वारानीतियों की समरूपता को कितना महत्व दिया जाता है। यदि सभी विभागों के लिए एक जैसी नीतियों बनाना जरूरी हो तो विकेंद्रीकरण कम होगा।

विकेंद्रीकरण के सिद्धांत

संगठन में विकेंद्रीकरण के प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिए निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन करना जरूरी है

1. **अच्छे भारार्पण का सिद्धांत**–विकेंद्रीकरण की सफलता अच्छी भारार्पण पद्धति पर निर्भर होती है। यदि संस्था के उच्चाधिकारी भारार्पण कला का सही प्रयोग नहीं करते अथवा इसके आधारभूत सिद्धांतों की अवहेलना करते हैं तो विकेंद्रीकरण की सारी योजना पूरी तरह विफल हो जाएगी। इसलिए यह जरूरी है कि अधिकार सौंपने वाले अधिकारियों को भारार्पण की पूरी जानकारी हो। इसके लिए अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

2. **उपयुक्त संदेशवाहन एवं समन्वय का सिद्धांत**–विकेंद्रीकरण की सफलता में सबसे बड़ी समस्या उस समय उत्पन्न होती है जबकि स्वतंत्र निर्णय लेने वाली सभी इकाईयां उच्च प्रबंध को अनदेखा करके हर बात में आनी मनमानी करने लगती है। इन परिस्थितियों से बचने के लिए उपयुक्त संदेशवाहन एवं समन्वय के सिद्धांत का पालन किया जाना चाहिए। उपयुक्त संदेशवाहन का अभिप्राय एक विभाग द्वारा लिये गये किसी विशेष निर्णय की जानकारी सभी विभागों को देन से है ताकि वे भी वैसी ही परिस्थितियों में दूसरे विभागों के अनुभव का लाभ उठा सके। साथ ही उच्च अधिकारियों द्वारा बनाई गई नीतियों का पूरा प्रचार होना चाहिए। ताकि अन्य अधिकारी निर्णय लेते समय उन पर ध्यान दे सके। समा विभागों में समन्वय स्थापित करने के लिए एक समन्वय समिति बनाई जानी चाहिए।

3. **उपयुक्त नियंत्रण का सिद्धांत**–विकेंद्रीकरण का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उच्च स्तरीय प्रबंधक निम्न स्तरीय प्रबंधन को निर्णय लेने के अधिकार सौंप दे और स्वयं अलग हो जाएं तथा वे अपनी मनमानी करते रहे। बल्कि उन पर नि की जरूरत है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि अधीनस्थों द्वारा लिया गया प्रत्येक निर्णय संगठन के मूल उद्धरण अनुरूप है, उच्च स्तरीय प्रबंधकों को अपना नियंत्रण कायम करना चाहिए। यहां पर नियंत्रण का अभिप्राय यह । कि उनकी दैनिक कार्यवाही में ही हस्तक्षेप होने लगे बल्कि समय समय पर लिए गये कुछ विशेष निर्णयों पर नजर रखने की जरूरत है। नियंत्रण के उद्देश्य से अधीनस्थों की सफलता मापने के मापदंड स्थापित किये जा सकते हैं। जब स्थ प्रबंधकों को यह मालूम होगा कि उन्हें निर्धारित माप दंडों के अनुसार काम करके दिखाना है तो वे अपने काम को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हुए पूरे उत्साह के साथ काम करते हैं। अतः विकेंद्रीकरण में पूर्ण नियंत्रण के : समान पर उपयुक्त नियंत्रण के सिद्धात का पालन किया जाना चाहिए।

4. **विकेन्द्रीकरण का सिद्धांत**–विकेंद्रीकरण कभी भी केंद्रीयकरण से अलग नहीं हो सकता हैं। इस सिद्धांत के पार संगठन में एक केंद्रीय कार्यालय की स्थापना की जानी चाहिए जो पूरे संगठन को एक सूत्र में बांध

सके। इस कार्यालय द्वारा ही विभिन्न विभागों की मुख्य योजनाएं एवं नीतियां बनाई जाती हैं और इनके कार्यों में तालमेल बिठाया जाता है। एक शोध के अनुसार अमेरिका की जनरल मोटर कम्पनी में 95 प्रतिशत निर्णय निम्न स्तरों पर ही लिए जाते है जहां उन्हें लागू करना होता है तथा केवल 5 प्रतिशत निर्णय उच्च स्तर पर लिए जाते हैं। लेकिन ये 5 प्रतिशत निर्णय इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि कम्पनी के अधिकांश निर्णय किसी न किसी रूप में इनसे अवश्य प्रभावित होते हैं। अतः कुछ महत्वपूर्ण निर्णय केंद्रीय स्तर लिए जाने जरूरी हैं।

6. **उपयुक्त अभिप्रेरणा का सिद्धांत**—विकेंद्रीकरण में अधीनस्थों एवं उच्च प्रबंधकों के मध्य अधिक दूरी हो जाती है। इस दरी के कारण उन्हें निरंतर अभिप्रेरणा नहीं मिल पाती और परिणामस्वरूप उनके उत्साह में गिरावट आ जाती है। अतः विकेंद्रीकरण को सफल बनाने के लिए उच्च प्रबंधकों द्वारा अधीनस्थों की सफलता पर उन्हें उचित पुरस्कार एवं सम्मान प्रदान किया जाना चाहिए ताकि उनके उत्साह में गिरावट न आने पाए।

7. **न्यूनतम हस्तक्षेप का सिद्धांत**—न्यूनतम हस्तक्षेप विकेंद्रीकरण का आधार होता है अर्थात् अधिकार सौंपने के बाद अधीनस्थों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। बार—बार हस्तक्षेप करने से वे हतोत्साहित होते हैं और उनके आत्मविश्वास में कमी आती है। उच्च प्रबंधकों का हस्तक्षेप कुछ बहुत महत्वपूर्ण निर्णयों के संबंध में ही होना चाहिए।

विकेंद्रीकरण के दोष

विक्रेन्द्रीकरण में मुख्यतः निम्न दोष पाए जाते हैं

1. **अधीनस्थों की योग्यता पर निर्भरता**—विकेंद्रीकरण व्यवस्था में संस्था की सफलता पूरी तरह से अधीनस्थों की योग्यता पर निर्भर करती है। अधीनस्थों के दैनिक निर्णयों के साथ—साथ उनके महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार भी होते हैं। यदि अधीनस्थ अयोग्य सिद्ध हुए तो संस्था को काफी कीमत चुकानी पड़ सकती है।
2. **सहयोग में कमी**—सभी विभाग स्वतंत्र इकाई होने के कारण उनके प्रबंधक केवल अपने विभाग की प्रगति की बात सोचते हैं। कई बार तो दूसरे विभागों को नीचा दिखाने के लिए उनमें आपसी प्रतिस्पर्धा इतनी बढ़ जाती है कि एक दूसरे के साथ सहयोग करने के स्थान पर विरोध करने लगते हैं। यह समस्या उस समय और भी गंभीर हो जाती है जब दो एक दूसरे पर निर्भर विभाग प्रतिस्पर्धा करने लगें। उदाहरणार्थ उत्पादन विभाग विक्रय विभाग की स्थिति खराब करने के लिए वस्तुओं के उत्पादन में जान बूझ कर देरी कर सकता है।
3. **निर्णयों में एकरूपता का अभाव**—विकेंद्रीकरण में स्वतंत्र इकाइयां स्थापित हो जाने के कारण सभी विभाग अपनी अलग—अलग नीतियां निर्धारित करते हैं। यही कारण है कि कई बार एक जैसी समस्या का समाधान करने के लिए विभिन्न विभागों द्वारा एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत निर्णय भी लिए जा सकते हैं। इस प्रकार एक विभाग को सफल निर्णय कालाभ दूसरा विभाग नहीं उठा सकता।
4. **महंगी व्यवस्था**—विकेंद्रीकरण व्यवस्था को अपनाने का साहस केवल बहुत बड़ी संस्थाएं ही कर सकती हैं। क्योंकि यहएक महंगी व्यवस्था है इसके अंतर्गत प्रत्येक विभाग को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं प्रदान करना आवश्यक है जिसके लिए अनेक उपकरणों एवं कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ, यदि एक संस्था में एक ही समय पर अनेक वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय किया जाता रहा है तो इस व्यवस्था के अंतर्गत सभी वस्तओं के अलग—अलग विभाग बनाए जाएंगे और सभी उत्पादन विपणन, लेखाकंन, कर्मचारी नियुक्ति आदि के कार्य भी अलग—अलग किये जायेंगे जिससे काम की अनावश्यक रूप से दोहराई होती है। जहां एक ही लेखांकन विभाग से काम चल सकता था इस व्यवस्था में अनेक लेखांकन विभाग स्थापित करने पड़ते हैं। इस प्रकार खर्चों में अनावश्यक वाट होती है।

5. **निर्णायक बिंदुओं पर विशेषज्ञों के मार्गदर्शन का अभाव**–विकेंद्रीकरण में अधिक कुशल एवं योग्य व्यक्तियों को उच्चप्रबंध में सम्मिलित कर लिया जाता है और जहां निर्णय लिये जाते हैं वहां उनकी कमी रहती है। इस प्रकार विशेषज्ञों की राय उपलब्ध न होने के कारण कई बार अच्छे निर्णय नहीं लिए जाते।
6. **नियंत्रण का अभाव**–उच्च प्रबंधक अपने अधिकारों को अन्य लोगों को सौंप कर स्वयं आराम करने लगता है। उनकी लापरवाही पूरे संगठन में नियंत्रण को ढीला कर देती है और सभी अपनी मनमानी करने लगते हैं।

केंद्रीयकरण का अर्थ

जब सत्ता एवं दायित्व शीघ्र प्रबंधकों के लिए सुरक्षित कर लिए जाते हैं तो उससे स्थिति को केंद्रीयकरण के नाम से जाना जाता है। केंद्रीयकरण में भारार्पण का अभाव पाया जाता है। निर्णय, परिचालन के स्तर पर न लिए जाकर, शीघ्र प्रबंधकों के स्तर पर लिए जाते हैं। केंद्रीयकरण की परिभाषा निम्न है:

1. **हेनरी फेयोल** के शब्दो में, ''अधीनस्थों की भूमिका को बढ़ाने के लिए जो भी कदम उठाये जाते है वे सब विकेंद्रीकरणके अंतर्गत आते है तथा इसके विपरीत जो उसको कम करते है केंद्रीयकरण में आते है।''
2. **लुइस ए. ऐलन** के अनुसार, ''केंद्रीयकरण का यह आशय है कि किए जाने वाले कार्य के संबंध में अधिकांश निर्णय उन व्यक्तियों द्वारा नहीं लिए जाते है जो कार्य कर रहे हैं। अपितु संगठन के उच्चस्तर बिंदु पर लिए जाते है।''

केंद्रीयकरण के लाभ

1. **व्यक्तिगत नेतृत्व का प्रोत्साहन**–केंद्रीयकरण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह व्यक्तिगत नेतृत्व का सुविधाजनक बनाता है यदि उपक्रम का छोटा आकार हो अथवा विशेष बड़ा न हो तो उसमें व्यक्तिगत नेतृत्व का विशेष महत्व होता है क्योंकि बहुत अधिक सीमा तक उस उपक्रम की सफलता प्रबंधक अथवा स्वामी के व्यक्तिगत नेतृत्व पर निर्भर करती है। स्नातक छात्र शायद विलियम आर वेसेट के इस कथन से भली प्रकार परिचित होंगे कि एकांकी व्यक्ति नियंत्रक विश्व में सर्वश्रेष्ठ है यदि वह व्यक्ति इतना बड़ा हो कि वह प्रत्येक कार्य की स्वयं व्यवस्था न कर सके एक व्यक्ति का नियंत्रण एवं निर्देशन अपनी कुशलता, अनुभव तथा प्रतिभा के आधार पर हानि पर चलने वाली व्यावसायिक इकाई कालाभप्रद इकाई में बदल सकता है।
2. **क्रियाओं की एकरूपता**–केंद्रीयकरण में एक कार्य से संबंधित सभी निर्णय एक ही प्रबंधक के अधीन होते हैं। जैसे यदिकम्पनी की तीन फैक्ट्रियां हैं तब तीनों के वेतन आदि कार्य एक प्रबंधक के अधीन होते हैं। इस रूप में प्रबंधकों के कार्यमें एकता आती है। क्योंकि तीनों फैक्ट्रियों का कार्य उनके अधीन होता है।
3. **एकीकृत व्यवस्था**–संस्था में किए जाने वाले कार्यों से संस्था का उद्देश्य की ओर प्रेरित करने के लिए केंद्रीयकृत आदेश प्राप्ति तथा निर्देशन आवश्यक होता है यदि ऐसा नहीं होता तो संस्था में कार्यों की पुनरावृत्ति तथा उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए यदि एक कम्पनी में दस विभाग हैं तथा सभी के पास अपनी प्रयोगशालाएं है यदि अनुसंधान के कार्य के लिए एक ही प्रबंधक का नेतृत्व नहीं होगा तब हो सकता है कि एक ही समस्या पर वही अनुसंधान कई प्रयोगशालाओं में हो इसमें संस्था के कार्यों में अपव्यय होता है इस तरह से संस्था के कार्यों के लिए केंद्रीकरण आवश्यक है।
4. **संकटकाल में सहायक**–संस्था में आने वाली संकट कालीन स्थिति से निपटने के लिए शीघ्र तथा उचित लिया जाना आवश्यक है। तथा यह केंद्रीयकरण के अंतर्गत ही संभव है क्योकि इसमें कुछ प्रबंधकों के अधीन अधिकार होते हैं। जो बिना पूछताछ तथा सलाह के निर्णय शीघ्र ले सकते हैं।
5. **अन्य लाभ**–उपरोक्त मुख्य लाभों के अतिरिक्त केंद्रीयकरण के निम्न नाम भी हैं। सुगम नियंत्रण, सम्प्रेषय में सुविधा, कायों में दोहरीकरण को कम करना आदि।

केंद्रीयकरण के उपरोक्त लाभ कभी–कभी संगठन की प्राप्ति एंव कार्यकुशलता की वृद्धि में बाधक बनकर सामने आते हैं। तब हमें विकेंद्रीकरण की नीति का अनुसरण करना पड़ता है।

केंद्रीयकरण की सीमायें

यद्यपि केंद्रीयकरण के लोगों को देखने से लगता है कि यह वास्तव में अत्यंत आवश्यक है एवं सीमाओं से मुक्त है परंतु यदि जाये तो यह भी सीमाओं से भरा पड़ा है। अत्यंत सीमायें इसकी है जिनका वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है। अधिकांश केंद्रीयकरण की अधिकता की सीमाओं को जन्म देती है। जोकि बढ़ते हुए संगठन के लिए दूषित वातावरण उत्पन्न करते हैं। ये सीमायें निम्नलिखित होती हैं

1. **उच्च स्तरीय प्रबंध का बोलबाला**–अधिकारों के अधिक केंद्रीकरण का आशय ही उच्चस्तरीय ढांचे से है। अर्थात वहां दीयकरण अधिक मात्रा में पाया जाता है। वहां उच्चस्तरीय प्रबंधकों ही बोलबाला रहता है। मध्य व निम्न स्तर के लिए कुछ अधिकार नहीं होते परिणामस्वरूप वे कमजोर पड़ जाते है जो संगठनात्मक ढांचे के लिए उचित नहीं है। पूरा संगठनात्मक ढांचा कमजोर पड़ जाता है क्योंकि अधिकारों के वितरण में बहुत अधिक भेदभाव किया जाता है।

2. **विकास में रूकावट**–उच्च स्तर पर केंद्रीयकृत संगठनात्मक ढांचा विकास के लिए हानिप्रद होता है इससे उच्च स्तरीय प्रबंध वास्तविक अवसरों को प्राप्त करने में असफल हो जाता है तथा प्रबंधकीय विकास करने के लिए उसका विश्वास समाप्त सा हो जाता है।
3. **संगठन में निराशा**–केवल उच्च स्तर पर प्रबंधकीय शक्तियों का केंद्रीयकरण कभी कभी वास्तव में अभिशाप बनकर रह जाता है। कभी–कभी उच्च स्तरीय प्रबंध नेतृत्व करने, निर्णय लेने में स्वयं को इतना असहाय सा अनुभव करता है कि परा संगठनात्मक ढांचा अपने स्तर से डगमगा जाता है एवं संगठन में निराशाओं को छोड़कर कुछ भी हाथ नहीं लगता। ऐसा सामान्यतः तभी होता है जब उच्च स्तरीय प्रबंध मध्य या निम्न स्तर को सभी संबंधित सूचनायें समय पर उपलब्धनहीं कराता।
4. **संदेशवाहन अप्रभावी**–केंद्रीयकत ढांचे में संदेशवाहन की व्यवस्था भी प्रबंध को कमजोर बनाती है क्योंकि प्रबंध कीव्यवस्था कछ ही हाथों में केंद्रित रहने से निर्णय लेने, नियंत्रण प्रक्रिया में देरी होती है तथा संबंधित सूचनायें समय पर नहीं मिल पाती। उच्च स्तरीय प्रबंध संगठनात्मक आवश्यकताओं से अनभिज्ञ रहता है। परिणामस्वरूप कार्य में देरी होने से अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।
5. **निर्णयों में देरी**–यदि वास्तविक रूप में देखा जाये तो मध्य व निम्न स्तर पर कोई वास्तविक प्रबंधकीय ढांचा उपलब्ध नहीं होता जो कि उच्च स्तरीय प्रबंध के कार्य में हाथ बंटा सके, परिणामस्वरूप निर्णयों में देरी, असुदृढ़ता, गलत निर्णय लेने की संभावना बनी रहती है। जैसे ही किसी संगठन का विकास होता है वैसे ही उच्च स्तरीय प्रबंध कुछ गिने–चुनेहाथों में होने के कारण इसे कमजोर बनाता हैं अतः पूरा संगठन इस ढांचे से पूर्ण रूप से अप्रंबधकीय हो जाता हैं।
6. **मानवीय शक्ति का दुरुपयोग**–अधिकारों का अति केंद्रीयकरण संगठन में दूषित वातावरण उत्पन्न करता है। कर्मचारियोंके मनोबल में गिरावट आती है उनके कार्य करने की क्षमता कम हो जाती है तथा विकास के बारे में सोचने समझने की शक्ति कम हो जाती है। परिणामस्वरूप संगठन अपनी मानवीय शक्तियों का सदुपयोग करने में असफल हो जाता है। निर्णय लेने व अन्य सभी कार्यों में अधिकारों का पूर्ण रूप से केंद्रीयकरण सामान्यतः छोटे उपक्रमों में पाया जाता है। इन उपक्रमों में स्वामी यही चाहता है कि वह अधिकतम कार्य स्वयं सम्पन्न करे यदि अन्य किसी को उसके रहस्यों के बारे में पता चल जायेगा तो उपक्रम के हित में नहीं होगा। अधिकारों का अति केंद्रीयकरण तो मध्य स्तर के उपक्रमों में भी देखने को नहीं मिलता। भारत में यह देखा गया है कि अच्छे से अच्छे बड़े उपक्रमों में बड़े से बड़ा निर्णय व छोटे से छोटा निर्णय भी उच्च स्तरीय प्रबंध द्वारा किया जाता है। छोटे स्तर के प्रबंधक केवल नाम के प्रबंधक होते हैं। उन्हें अपने नाम से करने का कुछ भी अधिकार नहीं होता है केवल नाम से प्रबंधक पुकारे जाते हैं।

संगठनात्मक उच्च केंद्रीयकृत ढांचे का ज्वलंत उदाहरण यू. एस. ए. की एक फोर्ड मोटर कम्पनी के बारे में है जो हैनरी फोर्ड के नेतृत्व में थी। इस कम्पनी में इन्हीं की पूर्ण सत्ता थी हेनरी फोर्ड प्रबधकों में विश्वास न रखकर सहायकों को साथ लेकर चलते थे। उनका मत था कि कार्य तो प्रबंधक नहीं केवल सहायकगण ही करते हैं यह कम्पनी 1905 में प्रारंभ हुई। हेनरी फोर्ड ने निर्माणी संगठन ऑटो मोबाइल के कार्य भार का 15 वर्षों तक संभाल कर रखा तथा भारी मात्रा में लाभ अर्जित किये। परंतु दुर्भाग्यवश कुछ समय पश्चात सन 1927 में कम्पनी मे काफी नुकसान होने लगे हेनरी फोर्ड ने अपना नियंत्रण खो दिया वे नियंत्रण प्रक्रिया में असक्षम हो गए। हेनरी फोर्ड ने अपने सहायकों की एक सभा बुलायी। परंतु समय गुजर चुका था एव सभी लोग इस योग्य नहीं रहे कि कुछ कर सके। इसी समय हेनरी फोर्ड के पौत्र हैनरी फोर्ड–द्वितीय इस क्षेत्र में उतरे और प्रबंध ढांचे को बदला एवं प्रबंधकीय क्षेत्र में नवीन आकृतियों को अपनाया।

केंद्रीयकरण को बढ़ावा देने वाले कारक संगठन में अधिकारों के केंद्रीयकरण के पक्ष में अनेक आंतरिक व बाहरी त्तव होते हैं जोकि केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा देते हैं। ये तव निम्नलिखित हैं।

1. संगठन की वित्तीय व्यवस्था सुदृढ़ न होने से विकेंद्रीकरण की लागतों को सहन करने में कठिनाई होती है।
2. छोटे स्तर पर प्रबंधकों में क्षमता व मनोबल का अभाव होता है।
3. संगठन के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए सुदृढ़ नेतृत्व की आवश्यकता होती।
4. उच्च स्तरीय प्रबंध में यह भय बना रहता है कि विकेंद्रीकरण की स्थिति संगठन को कमजोर बना सकती है।
5. केंद्रीयकरण की स्थिति में उच्च स्तरीय प्रबंध को यह विश्वास रहता है कि प्रत्येक घटना पर नियंत्रण करने में सफल है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि छोटे उपक्रमों व मध्य स्तरीय उपक्रमों में तो केंद्रीयकरण का पाया जाना अति आवश्यक है। क्योंकि केंद्रीयकरण की स्थिति होने से उपक्रम में सभी व्यक्तियों में एक पारिवारिक भावना जागृत हो जाती है कि एक उच्च स्तरीय प्रबंधक नियंत्रण करेगा अन्य सभी कार्यकर्ता लेंगे। परंतु यदि विशाल स्तर के उपक्रमों के बारे में गहराई से सोचा जाए तो उसमें कोई का स्तर सम्पन्न की जाने वाली क्रियाएं इतनी अधिक व प्रभावशाली होती हैं कि चाहते हुए भी केंद्रीयकरण की प्रवृति को सफल नहीं बनाया जा सकता तथा अंत में विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति का स्वागत करना पड़ता है।

विभागीकरण

विभाग शब्द एक उपक्रम के स्पष्ट क्षेत्र वर्ग अथवा शाखा का ज्ञान कराता है। जिसमें विशिष्ट कार्य करने के लिए प्रबंधक को अधिकार प्राप्त होता है। एक विभाग जैसा कि प्रायः शब्दावली का प्रयोग किया जाता हो। उत्पादन विभाग वेस्ट फोस्ट शाखा निर्माण शोध विभाग अथवा रोकड़ प्राप्त करने वाला अनुभाग हो सकता है। कुछ उपक्रमों में विभाग शब्दावली का प्रयोग मुक्त रूप से किया जाता है जबकि अन्य में विशेष रूप के बड़े उपक्रमों में इसका प्रयोग पदानुक्रम के संबंध स्पष्ट करने के लिए किया जाता है।

कूण्ट्ज एवं ओडोलेन के अनुसार, "विभागीकरण एक विशाल क्रियात्मक संगठन को छोटी एवं लोचशील प्रशासनिक इकाईयों के विभक्त करने की प्रक्रिया है।''

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि विभागीकरण के अंतर्गत संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए स्थापित विशाल संगठन को इस ढंग से छोटे–छोटे भागों मे विभक्त किया है। ताकि सभी क्रियाओं का प्रशासन कुशलतापूर्वक किया जा सके।

महत्व

1. **विशिष्टीकरण–**संगठन को कुशलता की दृष्टि से विभाजन तथा विशिष्टीकरण का प्रयोग किया जाता है प्रबंधकीय काय ेअनेक कार्यो का समूह होते हैं और श्रम विभाजन तथा स्पष्टीकरण की दृष्टि से इन्हें छोटे–छोटे भागों में विभक्त कर दिया जाता है और प्रायः एक भाषा का हम विभाग कहकर पुकारते हैं।
2. **उत्तरदायित्व का निर्धारण**–विभागीकरण के अंतर्गत दायित्वों का निर्धारण करना संभव हो जाता है यदि किसी कर्मचारी को एक काम न सौंपकर पूरी संस्था के काम सौंपे जाए तो उसके दायित्व का निर्धारण करना कठिन होता है और प्रत्येक कर्मचारी विपरीत परिणामों की जिम्मेदारी अन्य कर्मचारियों पर डालने का प्रयास करता है। इस विपरीत, दायित्व निर्धारण हो जाने पर सभी प्रबंधकों को स्पष्ट हो जाता है। उन्हें क्या करना है और क्या नहीं।
3. **वास्तविक कार्य का मापन** संभव–कार्य का विभाजन हो जाने पर प्रत्येक विभाग की कुशलता का माप किया ज्ञात सकता है। सभी विषयों के प्रमाप निश्चित कर दिए जाते हैं और वास्तविक कार्य का प्रमाणों से मिलान करके विचलनों का पता लगाया जाता है। इस प्रकार विपरीत परिणामों का पता लगने पर, समय पर ही सुधारात्मक कार्यवाही की जा सकताहै और संबंधित व्यक्तियों को जिम्मेदार भी ठहराया जा सकता है।
4. **बजट बनाने में सुविधा**–विभागीकरण से बजट बनाने में भी सुविधा होती है क्योंकि प्रत्येक विभाग की लागतों की गणनाआसानी से की जा सकती है इसलिए विभागीय बजट बनाने में सुविधा रहती है।
5. **मूल्यांकन में सुविधा–**जब प्रबंधकों के द्वारा कुछ निश्चित कार्य सम्पन्न किए जाते हैं तो उनका मूल्यांकन करना अधिक आसान एवं सुविधाजनक होता है और मूल्यांकन संगठन की कुशलता को बढ़ाने की दृष्टि से समय–2 पर किया जाता रहना चाहिए।

विभागीकरण के आधार

विभागीकरण का कोई एक ऐसा ठोस आधार नहीं है। जो सभी संगठनों एवं परिस्थितियों में क्रियान्वित किया जा सके उपक्रमआवश्यकता एवं कृत्यों के स्वभाव के आधार पर संगठन का विभागीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है। विभागीकरण के वे आधार जो बहुत अधिक प्रचलन में हैं निम्नलिखित कहे जा सकते हैं

1. **कार्यों के आधार पर विभागीकरण**–यह संगठन के विभागीकरण का सर्वाधिक लोकप्रिय आधार है। इसके अंतर्गत उपक्रम के कार्यों के आधार पर विभिन्न क्रियाओं के विभिन्न समूहों का निर्माण कर लिया जाता है। जिन्हें विभागों के नाम से जाना जाता है। उत्पादन विक्रय वित्त से विभागीय आदि के कार्यों के आधार पर यदि विभागों का निर्माण किया जाये तो यह कार्यों के आधार पर विभागीकरण होगा इसे चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है।

कार्यों के आधार का विभागीकरण

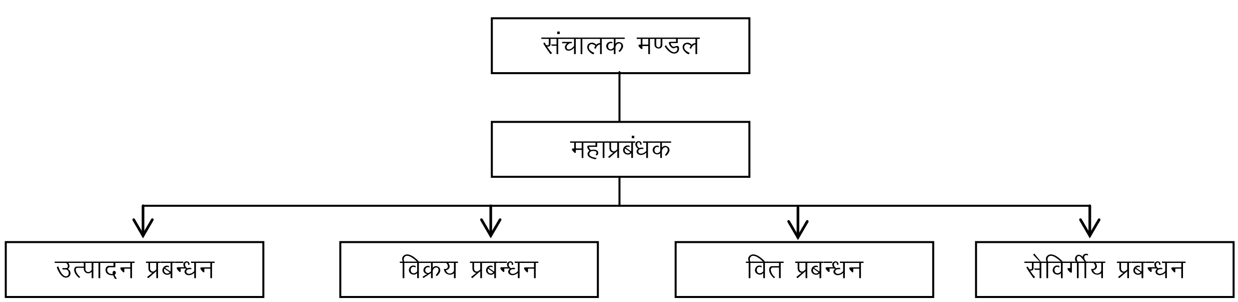

2. **क्षेत्र के आधार पर वर्गीकरण** –उपक्रम के संगठन को भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर विभाजित कर उनके कार्यों को अलग अलग व्यक्तियों को सौंपना ही क्षेत्र के आधार पर विभागीकरण कहलाता है उपक्रम को क्षेत्र के आधार पर पूर्वी पश्चिमी मध्य उतरी एवं दक्षिणी क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। जहां परिस्थितियां इस प्रकार की है कि व्यवसाय की सफलता स्थानीय आवश्कताओं के अनुरूप उपक्रम की क्रियाओं को बनाने पर निर्भर है। वहां पर विभागीकरण बहुत उपयोगी माना जाता है। यह विभागीकरण चित्र से स्पष्ट है:

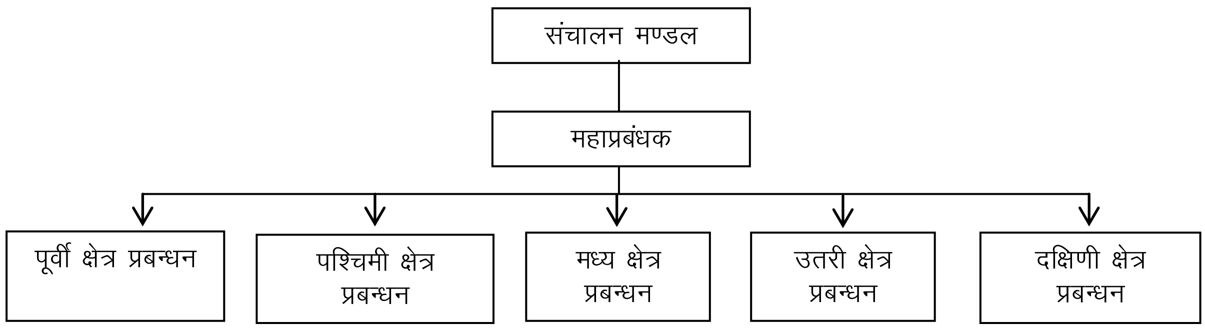

3. **उत्पादक के आधार पर विभागीकरण**–विशेषकर बृहत स्तर पर उत्पादन करने वाली एवं विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने वाली संस्थाओं में इस प्रकार का विभागीकरण अधिक लोकप्रिय है। इसके अंतर्गत प्रत्येक प्रकार की उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के लिए अलग विभाग का निर्माण किया जाता है। एवं उस वस्तु से संबंधित समस्त क्रियाओं को इसी विभाग के अंतर्गत ले लिया जाता है। निम्न क्षेत्र से उत्पाद के आधार पर विभागीकरण को स्पष्ट किया जा सकता है।

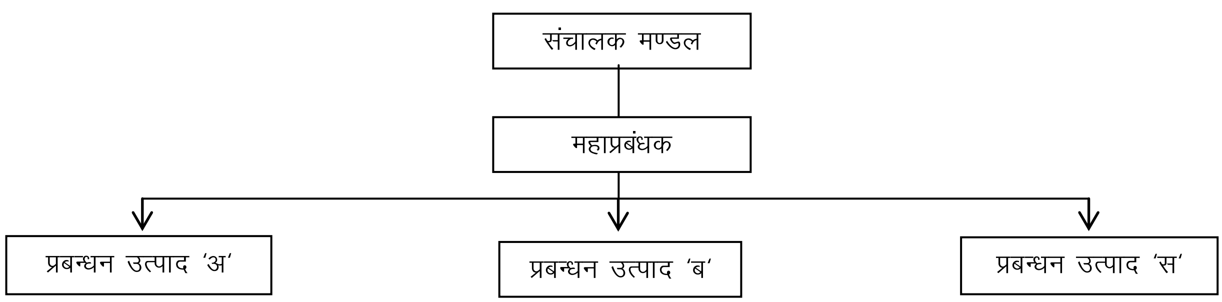

4. **प्रक्रिया के आधार पर विभागीकरण**–प्रक्रिया संबंधित क्रियाओं की एक श्रृंखला है जो कालक्रम के चरणों का निर्माण करती है। इन्हीं चरणों से वस्तुओं को उपयोग योग्य बनाने के लिए गुजरना पड़ता है। यदि वस्तु के निर्माण की विभिन्न प्रक्रियाओं के आधार पर विभाग बनते है तो यह प्रक्रिया की कताई, बुनाई, रंगाई आदि प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। तब ही वह उपयोग योग्य बन पाता है। यह चित्र से भी स्पष्ट किया जा सकता है।

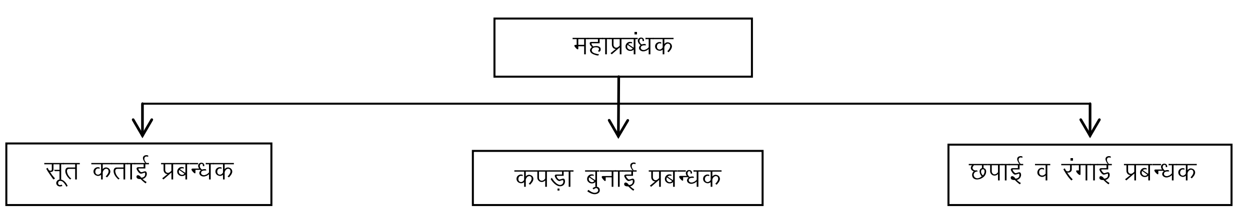

5. **ग्राहकों के आधार पर विभागीकरण**–ग्राहकों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए क्रियाओं का समूह बनाना एवं उन्हें विभागों का रूप देना ग्राहकों के आधार पर विभागीकरण कहलाता है। ग्राहक के बिना किसी भी व्यवसय की विद्यमानता संभव नहीं है अतः ग्राहकों की संतुष्टि सर्वोपरि स्थान है। ग्राहकों के आधार पर

विभागीकरण इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोगी माना जाता है। उदाहरणार्थ एक उत्पादन निजी क्षेत्र के ग्राहकों सरकारी क्षेत्र के ग्राहकों एवं विदेशी ग्राहकों के लिए अलग–अलग विभागों का निर्माण कर सकता है। यह विभागीकरण निम्न चित्र के माध्यम से भी प्रदर्शित किया जा सकता है।

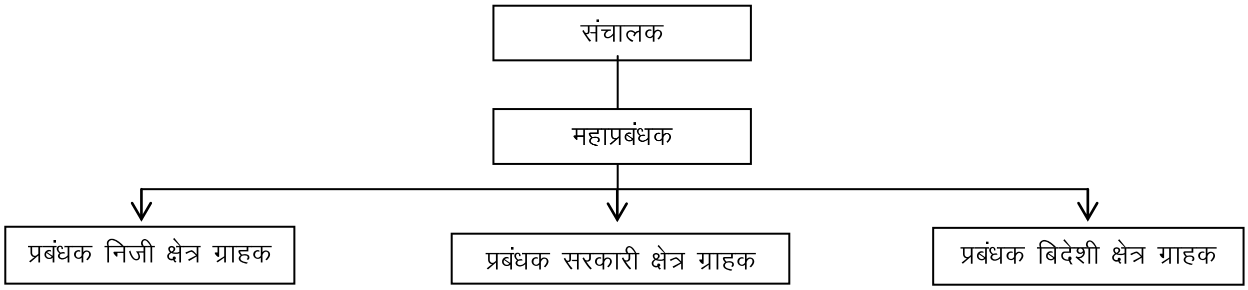

6. **समय के आधार पर विभागीकरण**–विभागकीरण का यह काफी पुराना तरीका है जिसके अंतर्गत क्रियाओं को समय के आधार पर समूहों पर बांटा जाता है। जिससे उपक्रमों में विभिन्न शिफ्टों के अंतर्गत कार्य होता है। वहां पर विभागीकरण का यह तरीका काफी प्रचलन में है समय के आधार पर स्वतंत्र इकाईयों का निर्माण इस प्रकार के विभागीकरण में किया जाता है। विशेषकर इसका उपयोग संगठन के निम्न स्तरों पर किया जाता है इस विभागीकरण को चित्र के माध्यम से भी जाना जा सकता है।

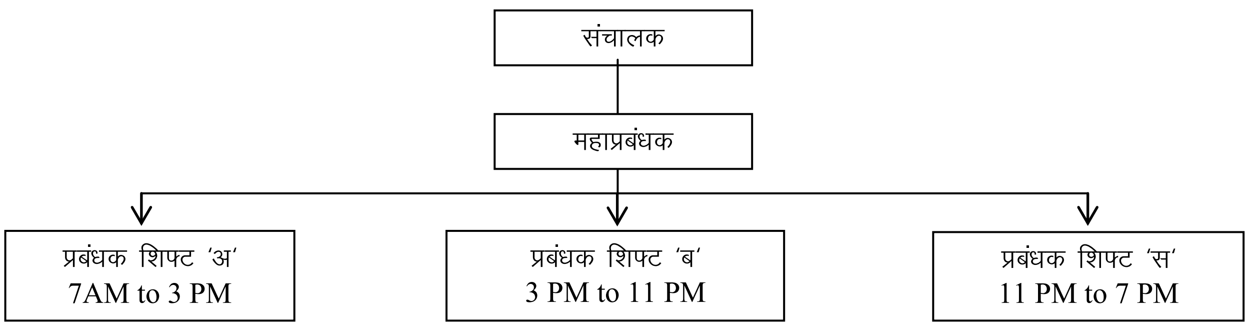

7. **संयुक्त आधार पर विभागीकरण**–बृहद स्तर पर उत्पादन करने वाली संस्थाएं और विविध के ग्राहकों, क्षेत्र एवं वस्तुओं मे व्यवहार करने वाली संस्था साधारण इस प्रकार के विभागीकरण को अपनाती है। उपर्युक्त आधारों में से यदि एक से अधिक घटकों को समूहों में विभाजित किया जाये तो यह संयुक्त आधार पर विभागीकरण कहलाएगा।

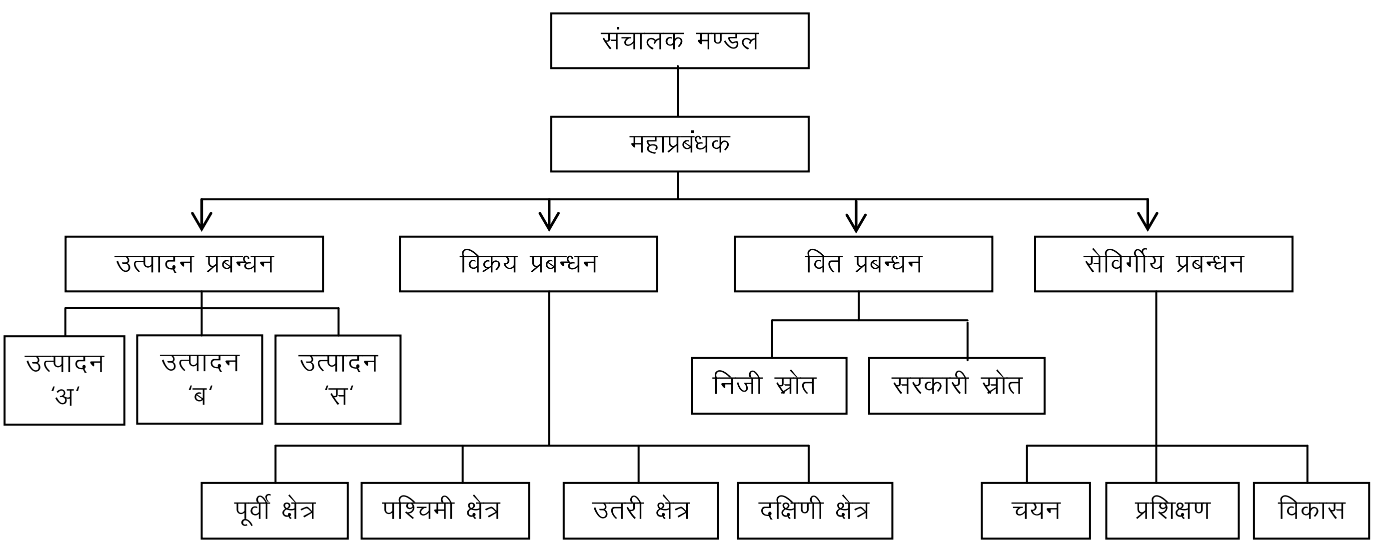

विभागीयकरण का आदर्श आधार

अभी तक हमने विभागीयकरण के विभिन्न आधारों का अध्ययन किया है। यहां पर समस्या उत्पन्न हो जाती है कि हम किस आधार का प्रयोग करें। कौन सा आधार सर्वोत्तम है। इस प्रश्न के उत्तर में किसी एक आधार का नाम नहीं दिया जा सकता। क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर संगठन विशेष की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। विभागीयकरण में आधार का चयन करते समय हमें निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए

1. **विशिष्टिकरण**—विभागीककरण का मुख्य उद्देश्य विशिष्टीकरण का लाभ प्राप्त करना होता है। हमें अपनी संस्था कीआवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार का आधार बनाना चाहिए जिससे विशिष्टीकरण के लाभों को प्राप्त कियाजा सके।
2. **समन्वय**—यदि हम विभिन्न विभागों की क्रियाओं को समन्वय स्थापित नहीं कर सकते तो हम विभागीयकरण का कोईलाभ भी प्राप्त नहीं कर सकते। इस दृष्टि से विभागीयकरण के आधार का चयन करते समय समन्वय की सफलता एवं प्रभावशीलता को ध्यान में रखना चाहिए।
3. **नियंत्रण**—इस उददेश्य को प्राप्त करने के लिए हमें क्रियाओं का विभाजन इस प्रकार से करना चाहिए कि हम उन परआसानी से नियंत्रण कर सकें और व्यक्तियों के उत्तरदायित्व भी निर्धारित कर सकें। विभागीयकरण करते समय निरीक्षण कार्य की सुविधा को भी ध्यान में रखना चाहिए।
4. **मितव्ययता**—यदि विभागीयकरण करने से व्यवसाय के संचालन व्ययों में बहुत वृद्धि होती है तो इसे लाभदायक नहीं माना जाएगा। इस दृष्टि से केवल उन्हीं विभागों की स्थापना करनी चाहिए जिनकी स्थापना से संस्था के लाभों में वृद्धि होनेकी संभावना हो।
5. **अन्य तत्व**—उपरोक्त महत्वपूर्ण तत्वों के अतिरिक्त विभागीयकरण के लिए आदर्श आधार का चयन करते समय हमेस्थानीय परिस्थितियों, मानवीय एवं सामाजिक तत्वों की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

संगठन : सरचना एवं प्रारूप

संगठन संरचना—संगठन सरंचना के द्वारा उपक्रम में कार्य करने वाले व्यक्तियों के कार्यों तथा उनके संबंधों की व्याख्या भी की जाती है। इसको कोई भी प्रबंधक बड़े ध्यान से बनाता है। अच्छी संगठन संरचना के द्वारा एक प्रबंधक अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकता है। संगठन की संरचना अनेक प्रकार से की जाती है। प्रत्येक उपक्रम की समस्या अलग–अलग होती हैं। अतः इसके अनुरूप ही संगठन की संरचना को एक विशेष रूप प्रदान किया जाता है। संगठन ढ़ांचे में निम्न विशेषताए हैं –

1. संगठन पर स्थितियों तथा कार्य भूमिकाओं का एक सुनिश्चित ढांचा है जिसके फलस्वरूप विभिन्न कठिनाइया ऊपर स नीचे की ओर बाए से दाए एकाएक होकर संगठन की शक्ति में वृद्धि करती है।
2. संगठन की आवश्यकताओं एवं कुशलता को ध्यान में रखकर इसे परस्पर एक दूसरे पर निर्भर स्वतंत्र इकाईयो व उप इकाईयों में बांटा जा सकता है।
3. प्रत्येक इकाई व उप इकाई के उद्देश्य, अधिकार व उत्तरदायित्व की स्पष्ट व्याख्या होती है। जिसमें उत्तरदायित्व क्षेत्र शापित किए जाते हैं और समन्वय एवं संतुलन करने में भी आसानी होती है।

संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले कारक

जो बातें या घटक संगठन सरंचना को प्रभावित करते हैं उनमें से प्रमुख निम्न हैं :

1. **संगठन के उद्देश्य**—संगठन स्वयं अपने आप में कोई उददेश्य नहीं है। यह तो उददेश्यों की प्राप्ति का साधन है। अतः किसी उपक्रम की सगठन संरचना का निर्माण करते समय उस उपक्रम के उददेश्यों को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है।

2. **संगठन का आकार**–संगठन का आकार भी किसी उपक्रम की संगठन संरचना के निर्माण का अन्य प्रमुख घटक है। यदि संगठन छोटा है तो केंद्रीय संगठन अपनाया जा सकता है लेकिन यदि संगठन बहुत बड़ा है तो संगठन संरचना का निर्माण करते समय विकेंद्रीकरण पर अधिक ध्यान दिया जा सकता है।
3. **विकास की गति**–किसी उपक्रम की संगठन संरचना का निर्माण वर्तमान आवश्यकता को ध्यान में रखकर नहीं किया जा सकता है। भावी आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाना आवश्यक होता हैं। इस प्रकार उपक्रम के विकास की गति को ध्यान में रखते हुए संगठन का निर्माण किया जाना चाहिए।
4. **व्यापारिक क्षेत्र**–किसी उपक्रम के संगठन सरंचना पर उस संस्था के व्यापारिक क्षेत्र का भी काफी प्रभाव पड़ता है। संस्था का व्यापारिक क्षेत्र स्थानीय, राजकीय, राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय हो सकता है। संस्था का व्यापारिक क्षेत्र जितना अधिक विस्तृत होगा उतनी ही विस्तृत संगठन सरंचना का निर्माण करना होगा।
5. **प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति**–सस्था की व्यवसायिक क्षेत्र में या तो एकाधिकारी स्थिति हो सकती है अथवा प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति। सामान्यतः वर्तमान में प्रत्येक व्यवसायिक संस्था को प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति में ही कार्य करना होता है। अतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ही संगठन सरंचना का निर्माण करना चाहिए।
6. **प्रबंधकों की नीतियां**–प्रबंधकों की नीतियां का भी किसी उपक्रम की संगठन सरंचना पर प्रभाव पड़ता है। संस्था के प्रबंधक को समस्त अधिकारों को अपने हाथों में ही केद्रित रखना चाहिए अथवा संबंधित अधिकारियों को प्रत्या करना चाहिए। अतः प्रबंधकों की नीतियों के अनुरूप ही संगठन सरचना का निर्माण किया जाना चाहिए।
7. **सामाजिक एवं मानवीय आवश्यकताएं** – किसी उपक्रम में कार्यरत व्यक्तियों की भी अनेक सामाजिक एवं मानीवय सामाजिक एवं मानवीय आवश्यकताएं होती है। इन आवश्यकताओ का पूर्ति में उनसे आदर, मान्यता एवं अपनत्व की भावना जागृत होती है। इस प्रकार उपयुक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि एक उपक्रम के संगठन की संरचना का प्रभाव यह होना चाहिए कि वह :
    1. संगठन के सदस्यों की समस्या, समाधान, योग्यता में वृद्धि करे।
    2. संगठन में अभिप्रेरणा के त्तवों को बल प्रदान करे।
    3. संगठन में कार्यरत प्रत्येक नेता के विशिष्ट गुणों का लाभ उठाया जा सके तथा
    4. इस प्रकार का नेतृत्व प्रदान कर सके जिससे कि समन्वय तथा नियंत्रण के प्रबंधक कार्यों क सम्पादित किया जा सके।

संगठन सरंचना के प्रारूप

संस्था में कार्य करने वाले करने वाले सभी व्यक्तियों को कुछ कार्य सौंपे जाते हैं और कार्य निष्पादन के लिए भी प्रदान किए जाते हैं। विभिन्न व्यक्ति को अधिकार और दायित्व किस प्रकार दिए जाए यह प्रत्येक संस्था की का पर निर्भर करता है। विभिन्न संस्थाओं की कार्य की प्रकृति में अंतर हो सकता है। अतः कार्य की प्रकृति अलग हो अधिकार एवं दायित्वों के प्रारूप को विविध करने के ढंग भी अलग होते हैं। अर्थात विभिन्न व्यवसायों की मग अलग–अलग होती है। संगठन सरंचना के मुख्य प्रारूप निम्नलिखित हैं।

रेखा संगठन

संगठन की यह प्राचीनतम व सरल पद्धति है। जिसे आधुनिक प्रबंध लेखकों ने कई नामों से पुकारा है। जैसे सैनिक संगम संगठन, विभागीय संगठन, सीधा एवं लम्बवत संगठन। इनको सैनिक संगठन इसलिए कहते हैं क्योंकि सेना का संग पर किया जाता है। सेना में प्रत्येक आदेश, सर्वोच्च अधिकार जनरल द्वारा लिया जाता है और वह आदेश कर्नल लेफ्टिनेंट आदि से होता हआ सैनिकों तक पहुंचता है। ठीक इसी प्रकार उद्योग में जनरन मैनेजर का आदेश विभिन फोरमैनों से होता हुआ श्रमिकों तक पहुंचता है। रेखा संगठन की विशेषता उच्चतम अधिकारी से विभिन्न स्तरों पर नीचे के स्तर तक अधिकारों व आदेशों का प्रत्यक्ष प्रवाह है।

सिद्धांत

प्रो. फलोरेंस ने इस पद्धति के निम्न तीन सिद्धांत बताए हैं

1. संगठन की प्रत्येक कड़ी एक–दूसरे से जुड़ी रहनी चाहिए। कर्मचारियों को आदेश उसके निकटतम अधिकारी द्वारा निरा जाने चाहिए।
2. आदेश केवल एक ही अधिकारी द्वारा दिया जाना चाहिए।
3. एक उच्च अधिकारी के अंतर्गत सहायक कर्मचारियों की संस्था सीमित होनी चाहिए।

विशेषताएं

1. आदेश ऊपर से नीचे की ओर तथा निवेदन एवं उत्तारदायित्व नीचे से ऊपर की ओर जाती है।
2. संगठन के समस्त पदाधिकारियों का कार्य क्षेत्र निश्चित होता है।
3. विभागीय अध्यक्षों को अपने विभाग में पूर्ण स्वतंत्रता होती है।
4. एक उच्च अधिकारी के अंतर्गत अधीनस्थों की संख्या सीमित होती है।
5. विभिन्न विभागों के बीच समन्वय होता है।
6. यह पद्धति सरल व प्राचीनतम है।

संगठन के लाभ

1. **सरल**–यह पद्धति सबसे अधिक सरल तथा प्राचीनतम है। इसके रेखा–संबंधी कार्यों के स्तर को समझना सरल है।
2. **लोचपूर्ण**–इस प्रणाली में आवश्यकता पड़ने पर समयानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।
3. **मितव्ययता**–इस प्रणाली में संगठनात्मक व्यय बहुत कम होता है।
4. **प्रत्यक्ष संबंध**–कर्मचारियों और अधिकारी के बीच प्रत्यक्ष संबंध स्थापित होता है।
5. **आदेश में एकता**–आदेश एक ही अधिकारी से मिलने की व्यवस्था के कारण संगठन में समन्वय बना रहता है।

रेखा संगठन के दोष

1. **पक्षपात**–इस पद्धति में एक ही अधिकारी का शासन होने के कारण पक्षपात की बू आ जाती है।
2. **बडे आकार की इकाइयों के लिए अनुपयुक्त**–यह पद्धति बड़े आकार वाली संस्थाओं के लिए, जिनमें श्रमिका का सच्चा अधिक है उपयुक्त नहीं है।
3. **कार्यों के विभाजन में कठिनाई**– इस प्रणाली में कार्यों के विभाजन करने में तथा विभागों की स्थापना करन मे औरकठिनाई का सामना करना पड़ता है।
4. **समन्वय और सद्योग का अभाव**–संस्था में नेता के अभाव में सहयोग एवं समन्वय प्राप्त करना कठिन है।
5. **अनुसंधान सुविधाओं का अभाव**–संस्था के विस्तार के साथ ही प्रत्येक निरीक्षक और फोरमैन का कार्य बढ़ जाता है और उसके पास अनुसंधान के लिए समय का अभाव हो जाता है।

रेखा तथा कर्मचारी संगठन

बढ़ती हुई व्यावसायिक जटिलताओं के कारण रेखा संगठन अनुपयक्त सिद्ध हआ और रेखा संगठन के दोषों को दूर करने के लिए रेखा तथा कर्मचारी संगठन का जन्म हुआ। संगठन के इस प्रारूप में अधिकारियों को परामर्श

देने के लिए कुछ विशिष्ट कर्मचारी होते हैं। इस संगठन में भी अधिकार सीधी रेखा के रूप में ऊपर से नीचे की ओर सीधी रेखा में प्रवाहित होता है। किंतु प्रत्येक कार्य के लिए एक विशिष्ट व्यक्ति नियुक्त किया जाता है। जो अधिकारियों को उनके कार्यों में विशेष परामर्श देता है। लेकिन ध्यान रहे कि विशिष्ट अधिकारी, कर्मचारी के परामर्श को माने या न माने, यह पूरी तरह अधिकारी की इच्छा पर निर्भर करता है।

पीटरसन तथा प्लाऊमैन ने कहा है कि, ''स्टॉफ अधिकारियों के विचारों का अधिकार तथा लाइन अधिकारियों को आदेश का अधिकार सौंपा जाता है।

इसी तरह मुने ने कहा है कि ''लाइन व्यक्ति का अधिकार तथा स्टॉफ विचारों का अधिकार दर्शाता है।

रेखा तथा कर्मचारी संगठन की विशेषता

1. अधिकार एवं उत्तरदायित्व सीधी रेखा में प्रवाहित होते हैं।
2. इसमें रेखा अधिकारियों के कार्य का बोझ हल्का हो जाता है।
3. निर्णय अधिक ठोस होते हैं।
4. इसमें लाइन अधिकारी स्टॉफ कर्मचारियों की राय मानने के लिए बाध्य नहीं है।
5. विशेषज्ञ रेखा अधिकारियों के कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

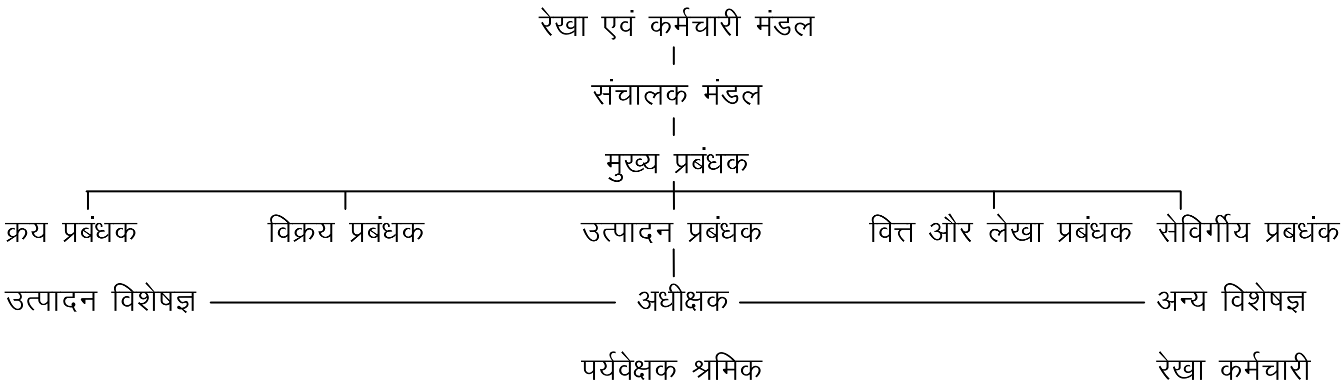

लाभ

1. **विशेषज्ञों की सलाह**–लाइन व स्टॉफ संगठन का यह बहुत ही महत्वपूर्ण लाभ है। ऐसे संगठन में विशेषज्ञों की महत्वपूर्ण सलाह का मिलती रहती है तथा किसी भी संकट या श्रम के समय विशेषज्ञों की महत्वपूर्ण सलाह का विशेष लाभ उठाया जा सकता है।
2. **अनुसंधान को प्रोत्साहन**–विशेषज्ञों को हर तरफ ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती। वे अपने निर्णय में, रहते हैं। महत्वपूर्ण अनुसंधान होने पर लाइन प्रबंधनों को सलाह के रूप में बता दिया जाता है जिससे होता हैं और संस्था को अधिक लाभ होने से अनुसंधान कार्यों को प्रोत्साहन देती है और प्रतिदिन नए–नए अनुसंधान रहते हैं।
3. **आर्थिक उत्पादन**–बचत वाली तिथि का विकास होता है। अनुसंधान करने पर कोई न कोई बचत की लिस जाएगी। उदाहरणार्थ अगर संस्था उत्पादन का कार्य करती है तो उसके विशेषज्ञ हर समय इसी बात का अनुंसधान करते रहेंगे कि वस्तु की उत्पादन लागत कैसे कम से कम हो सकती है जिससे कि उत्पादन में बचत प्राप्त होती है।
4. **विशिष्टीकरण के लाभ**–इसमे करने तथा सोचने का कार्य अलग–अलग होता है। लाइन अधिकारी कार्य करने का तथा स्टाफ अधिकारी सोचने का कार्य करते हैं तथा अपने–अपने क्षेत्र में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेते हैं जिससे विशिष्टकरण के लाभ प्राप्त होते हैं।

हानियां

1. **कृत्रिम निर्णय**–स्टॉफ अधिकारी फैक्टरी तथा कार्यालय के वास्तविक हालात से अवगत नहीं होते तथा केवल समस्या से संबंधित तथ्यों को सुनकर ही सुझाव दे देते है। जो पूर्णतः सही नहीं बैठता। उनके द्वारा दिए गए निर्णय वास्तविक से दूर होते हैं।
2. **विशेषज्ञों पर अत्यधिक निर्भरता**–संस्था के प्रबंधक प्रत्येक कार्य विशेषज्ञों की सलाह तथा सेवा द्वारा करवाने के अगर हो जाते हैं जिस कारण किसी समय उनकी अनुपस्थिति के समय संस्था के प्रबधक उचित निर्णय लेने में कठिनाई अनभुव करते हैं तथा संस्था में अकार्यकुशलता उत्पन्न हो जाती है।
3. **खर्चीली**–विशेषज्ञों की सेवाओं पर भारी व्यय आता है। संस्था द्वारा नियुक्त किए गए विशेषज्ञों को बड़ी बड़ी तनख्वाह तथा अन्य भत्ते मिलते हैं। जिस कारण संस्था को इन पर भारी व्यय करना पड़ता है तथा यदि इनका उचित प्रयोग न हो तब यह संस्था पर अनावश्यक भार बने रहते हैं।
4. **प्रत्यक्ष दायित्व का अभाव**–संस्था के विशेषज्ञों का प्रत्यक्ष दायित्व नहीं होता जिस कारण वह सलाह में विशेष सतर्कता से काम नहीं लेते तथा यदि कोई प्रबंधक उनसे सलाह मांगे तब सलाह दे देते हैं। अन्यथा समस्याओं को ढूंढ कर हल करने की चेष्टा नहीं करते हैं।

क्रियात्मक संगठन

सामान्य भाषा में क्रियात्मक अधिकार का आशय ऐसे अधिकार से है जहां पर एक व्यक्ति अपनी इकाई के कार्यरत व्यक्तिया पर लाइन अधिकार रखता है, अपने विशिष्ट कार्यों के सम्बन्ध में दूसरों की सलाह दे सकता है तथा अपनी क्रियाओं के सम्बन्ध की सलाह दे सकता है तथा अपनी क्रियाओं के सम्बन्ध में अन्य विभाग के कर्मचारियों का आदेश दे दिया है। यह ऐसा आपका है जिसमें क्रियात्मक अधिकारी अपने विभाग की सीमाओं से बाहर अपने विशिष्ट क्रिया के सम्बंध में अधिकारी का विस्तृत पर सकता है।

फिलिप्पों के मतानुसार–''क्रियात्मक सम्बन्धों की स्थापना उस समय होती है जबकि विशेषज्ञों के कार्य का रेखा आ के कार्य के ऊपर परामर्श के स्थान पर आदेशात्मक बना दिया जाता है।''

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि क्रियात्मक अधिकार प्रबन्धकों को किसी विशेष विभाग तक ही सीमित नहा। अन्य विभागों के कार्यों में भी हस्तक्षेप कर सकता है। यह रेखा विशेषज्ञ एवं क्रियात्मक विभागों द्वारा उपयाग इस प्रकार का संबंध उसकी सौंपी गई विशिष्ट क्रिया से होता है।

इन सम्बन्धों को ही क्रियात्मक संगठन कहा जाता है।

कियात्मक संगठन की विशेषताएं

1. इस ढांचे में विशेषज्ञ के अन्तर्गत रेखा अधिकार विशेषज्ञ अधिकार एवं क्रियात्मक अधिकार निहित हैं।
2. यह संगठन अपने विभाग पर रेखा अधिकार, सेवा सम्बन्धित प्रदान करने का अधिकार एवं आय विभाग के कर्मचारियों को अपने कार्य के सम्बन्ध में दिशा देने का अधिकार रखता है।
3. इसमें कार्य की विधि क्या कार्य सम्पन्न किये जाने वाले समय का स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है।
4. यह विशिष्टकरण के सिद्धान्त पर आधारित है।
5. इसमें आदेश की एकता के स्थान पर बहुलता का लक्षण पाया जाता है।

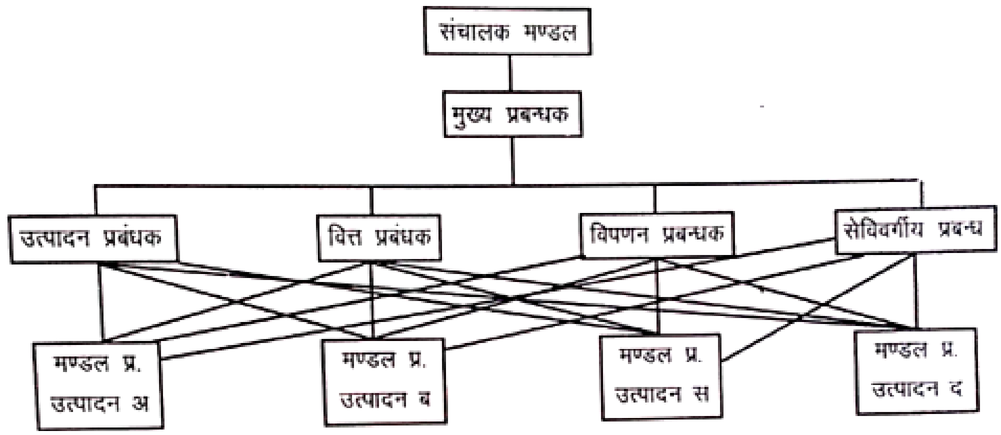

लाभ

1. **विशिष्टकरण को प्रोत्साहन**—इस प्रारूप के अन्तर्गत समस्त कार्यों की देखभाल उस व्यक्ति द्वारा की जाती है जो कि दक्ष हो। इन्हीं को विशेषज्ञों के नाम से जाना जाता है। विशिष्टकरण का प्रभाव श्रमिकों की कुशलता तथा निर्णयन आदि पर अनुकूल पड़ता है।
2. **लोच**—यह प्रारूप अत्यन्त की लोचदार होता है। सभी विनियोगो की देखभाल करने वाले विशेषज्ञ होने से संगठन में आवश्यकतानुसार संशोधन तथा परिवर्तन करना आसान बन जाता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के परिवर्तन के लिए सम्पूर्ण उपक्रम के ढांचे को अस्तवयस्त नहीं करना पड़ता है।
3. **संचालक में मितव्ययिता**—कार्यों का विभाजन होने, नई तकनीकों के उपयोग करने तथा वैज्ञानिक विधियों के अपनाने के बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाना है सरल बन जाता है जब उत्पादन का पैमाना बड़ा हो जाएगा तो प्रति इकाई लागत में कमी आयेगी।
4. **पारस्परिक सहयोग होने की भावना का विकास**—वैज्ञानिक विषमता के अवसर नहीं मिलने से सभी कार्यरत कर्मचारी में पारस्परिक भावना का विकास होता है और यह भावना आगे जाकर उपक्रम के लिए लाभदायक साबित होती है।
5. **प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में सुधार**—उपक्रम की विभिन्न क्रियाओं में विशिष्टकरण आने से प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति में सुधार आता है। मात्रा कीमत और कीमत की दृष्टि से छोटा उपक्रम भी वृहत उपयोग के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकता है।

उपर्युक्त लाभों के अतिरिक्त यह पद्धति प्रेरणात्मक है और इसमें कर्मचारियों के अधिकारों एवं दायित्वों का अधितकतम सीमाओ का विभाजन किया जाता है जिसमें उपक्रम की कुशलता बढ़ती है।

दोष

1. **समन्वय का अभाव**—अनेक कार्यात्मक विशेषता की सहायता लिए जाने के कारण समन्वय में कठिनाई आती है।
2. **उत्तरदायित्व निश्चित करने में कठिनाई**—विपरीत परिणाम आने पर उच्च प्रबन्ध के लिए उत्तरदायित्व निशचित करना कठिन हो जाता है। प्रत्येक विशेषज्ञ अपनी कमजोरी को अन्य लोगों पर डाल कर उत्तरदायित्व से बचने का प्रयास करता है।
3. **पेचिदा प्रक्रिया**—कार्य को अनेक भागों में बांटने अपने आप में एक बहुत कठिन प्रक्रिया है।

4. **विशेषज्ञों में संघर्ष**–एक ही स्तर के अनेक कर्मचारी होने के कारण उनमें अक्सर झगड़े रहते हैं। सभी अपने आपको दूसरों से श्रेष्ठ मानते हैं और कोई भी किसी की नहीं मानता।

5. **खर्चीली पद्धति**–अनेक नायकों की नियक्ति किए जाने से प्रशासनिक खर्चे बढ़ जाते हैं जबकि उतना प्रतिफल नही पाता विशेषकर छोटे व्यवसाय के लिए यह पद्धति बिल्कुल अनुपयुक्त है।

समिति संगठन

समिति सगंठन संगठनात्मक ढांचे का कोई ऐसा प्रारूप नहीं है जिसको स्वतन्त्र रूप से लागू किया जाये अर्थात् इसको एक नियमित एव स्वतत्र सगठन के प्रारूप की तरह लागू नहीं किया जा सकता है। इसका प्रयोग संगठन के अन्य नियमित प्रारूपों को सहयोग प्रदान करने के उद्देश्य से किया जाता है।

न्यूमैन के अनुसार–समिति व्यक्तियों का एक समूह होती है जो किसी प्रशासनिक कार्य को करने के लिए विशेष रूप से बनाई जाती है।

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि समिति कुछ व्यक्तियों का समूह है जो प्रशासनिक कार्यों में उपस्थित होने वाली समस्याओं को आपसी विचार–विमर्श के आधार पर सुलझाते हैं।

समिति संगठन के लाभ

1. **सुदृढ़ निर्णय**–समिति के सदस्यों द्वारा पूर्ण विचार–विमर्श के साथ निर्णय लिये जाते हैं अतः सभी निर्णय संतुलित, विवेकपूर्ण एवं न्यायसंगत होते हैं।
2. **समन्वय**–समितियां संस्था की सभी गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखती हैं और उनमें समन्वय स्थापित करने में सहायकहोती हैं।
3. **सन्देश वाहक में आसानी**–समिति संगठन में सभी व्यक्ति एक जगह इकट्ठे होकर विचार–विमर्श करते हैं इसलिए ये एक दूसरे के विचारों की जानकारी शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं।
4. **अधिकारों का विकेन्द्रीकरण**–समिति संगठन में अधिकार सत्ता एक व्यक्ति के पास न होकर अनेक व्यक्तियों के पास होती है इसलिए कोई भी सदस्य सामूहिक हितों की बात नहीं कर सकता।
5. **जोखिम भरे निर्णय**–कुछ निर्णय अधिक जोखिम वाले होते हैं और कोई भी अकेला व्यक्ति उनको लेने में घबराता है जबकि संयुक्त दायित्व होने के कारण समिति में इस तरह के निर्णय आसानी से ले लिए जाते हैं।

समिति संगठन के दोष

1. **निर्णयों में देरी**–यह ठीक है कि समिति में अनेक व्यक्तियों की राय से ठोस निर्णय लिए जाते हैं लेकिन कई बार एक ही बात को लेकर अनावश्यक वाद–विवाद होता रहता है जिसके कारण निर्णय लेने में देरी हो जाती है। कई बार निर्णय लेते–लेते लाभ के अवसर हाथ से निकल जाते हैं।
2. **उत्तरदायित्व निश्चित करने में कठिनाई**–समिति द्वारा लिए गए निर्णय के विपरीत परिणाम आने पर किसी भी व्यक्ति को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। सभी व्यक्ति एक–दूसरे का दोष निकालने का प्रयास करते है।
3. **गोपनीयता का अभाव**–समिति में अनेक सदस्यों का हस्तक्षेप होने के कारण निर्णयों में गोपनीयता का अभाव होता है। कई बार महत्वपूर्ण निर्णयों की जानकारी बाहरी संस्थाओं को हो जाने पर संस्था को हानि उठानी पड़ती हैं।
4. **पहल भाव की कमी**–समिति के कुछ ही सदस्य प्रभावपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता रखते हैं। अच्छे परिणामों का श्रेय सभी को जाता है। ऐसी स्थिति में वे निर्णय लापरवाही में लेने लगते हैं। इससे पहल भावना की कमी आती है।

समिति संगठन के गुण व दोषों का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यदि समितियों के अनावश्यक वाद विवाद को समाप्त कर दिया जाए और प्रत्येक सदस्य को अपने विचार प्रकट करने का मौका दिया जाए तो ये उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

एक आदर्श संगठन–संरचना की विशेषताएं

1. **कुशलता**–संगठन ऐसा होना चाहिए कि वह व्यवसाय के उद्देश्यों को अधिकता कुशलता के साथ तथा कम–से–कम लागत पर प्राप्त करने में सहायक हो।
2. **उपयुक्त विभागीयकरण**–एक सदढ़ संगठन के लिए व्यावसायिक कारोबार को छोटी–छोटी क्रियाओं में बांटकर उनक उपयुक्त विभाग बना देने चाहिएं।
3. **दायित्वों तथा अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या**–किस व्यक्ति को क्या काम करना है, तथा उसकी क्या जिम्मेदारियों है, इसकी स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए।
4. **आदेश का सौपानिक सिद्धान्त**–कौन व्यक्ति किसकी अधीनता में काम करेगा और किसका आदेश लेगा, इसकी स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए।
5. **आदेश की एकरूपता**–प्रत्येक कुशल संगठन में एक व्यक्ति का केवल एक ही अधीक्षक होना चाहिए, जिससे वह अपने कार्य के लिए आदेश ले।
6. **निर्देश की एकता**– प्रत्येक व्यावसायिक संस्था की एक ही योजना होनी चाहिए और उसके प्रत्येक विभाग को इसी योजना के अनुसार कार्य करना चाहिए।
7. **जिम्मेदारी**–प्रत्येक विभागीय अध्यक्ष को अपने अधीन कर्मचारियों से कार्य लेने का पूरा अधिकार प्राप्त होना चाहिए।
8. **अधिकार और दायित्व**–किसी भी अच्छे संगठन के लिए यह आवश्यक है कि उसमें भिन्न–भिन्न कर्मचारियों को अधिकार और दायित्व, दोनों साथ–साथ दिये जायें।

लघु प्रश्नः

1. आयोजन को परिभाषित करें
2. जिम्मेदारी के रिश्ते से आपका क्या तात्पर्य है।
3. विकेंद्रीकरण को परिभाषित करें।

लंबे प्रश्नः

1. आयोजन से आपका क्या मतलब है? इसकी प्रक्रिया, प्रकृति और महत्व की भी व्याख्या करें।
2. उसी के उपयुक्त उदाहरण देकर विवरण में अधिकार और जिम्मेदारी के संबंध को स्पष्ट करें।
3. संगठनात्मक संरचना के रूपों पर एक व्याख्यात्मक नोट लिखें।

यूनिट–IV

कार्य पर लोगों को प्रेरित करना और नेतृत्व करना; प्रेरक अवधारणा; सिद्धांत– मास्लो, हर्ज़बर्ग, मैकग्लोर, एक औची; वित्तीय और गैर–वित्तीय प्रोत्साहन।

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, छात्र निम्नलिखित में सक्षम होंगे:

1. मास्लो, हर्ज़बर्ग, मैक्ग्रेगर, ए औची द्वारा दी गई प्रेरणा की अवधारणा और इसके विभिन्न सिद्धांतों को समझें
2. वित्तीय और गैर वित्तीय प्रोत्साहन के साथ खुद को भी परिचित कराएं।

Unit–IV

अभिप्रेरणा
(Motivation)

अभिप्रेरणा का अर्थ

अभिप्रेरणा वह प्रक्रिया है जो व्यक्तियों में कार्य करने के लिए इच्छा जागृत करती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि में कार्य करने की क्षमता हो लेकिन वह कार्य करना न चाहता हो, उसके लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं इस प्रकार अभिप्रेरणा कार्य से सम्बन्धित है जिसे प्रत्येक व्यक्ति में जागत किया जा सकता है वास्तव में अभिप्रेरणा वह मनोवैज्ञानिक उत्तेजना जो व्यक्तियों को काम पर बनाए रखने के लिए उन्हें उत्साहित करती है और अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करती है। अभिप्रेरणा की महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

1. **बेच** के अनुसार–''अभिप्रेरणा एक सामान्य प्रेरणादायक प्रक्रिया है जो एक समूह के सदस्यों के प्रभावी रूप में मिलकर कार्य करने, समूह के प्रतिनिष्ठा रखने, तय किये गये कार्यों को उचित रूप में करने और समूह द्वारा स्वीकार किये गए लक्ष्यों की पूर्ति में एक प्रभावशाली भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करती है।''

   उपर्युक्त परिभाषा के विश्लेषण से यह स्पष्ट ही है कि मौलिक मानवीय आवश्यकताएं मानवीय व्यवहार के शक्तिशाली किन्तु अचेतन अभिप्रेरण का कार्य करती हैं।

2. **मायर्स** के अनुसार, ''प्रत्येक जॉब श्रेणी में व्यक्तियों के लिए असन्तोष का प्रतिमान भिन्न–भिन्न होता है।''

   उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि अभिप्रेरणा लोगों में कार्य करने के लिए उत्तेजना पैदा करने वाली प्रक्रिया है। इसके माध्यम से उनकी क्षमता का पूरा उपयोग करते हुए उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त कर लिया जाता है परिणामतः संस्था और कर्मचारी दोनों को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

अभिप्रेरणा की विशेषताएं

1. **अभिप्रेरणा एक आन्तरिक अभिव्यक्ति या अनुभव**–एक मनोवैज्ञानिक धारणा है जो व्यक्ति के अन्दर पैदा होती है। सर्वप्रथम व्यक्ति के मस्तिष्क में कुछ आवश्यकताएं जन्म लेती हैं जिनका प्रभाव उसके व्यवहार पर पड़ता है अर्थात् उनको सन्तुष्ट करने के लिए वह कुछ कार्य करने की सोचता है।
2. **अभिप्रेरणा एक सतत् प्रक्रिया है**–यह एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है किसी व्यक्ति को एक बार अभिप्रेरित कर देने से ही प्रबंधक का कार्य नहीं हो जाता है बल्कि परिणाम का प्रभाव उनकी प्रक्रिया के किसी व्यक्ति को उनकी आवश्यकतानुसार अनुभव कराकर अभिप्रेरित करना होता है।
3. **प्रत्येक मनुष्य में अभिप्रेरक तत्व भिन्न होता है**–हर व्यक्ति की व्यवस्थाएं अलग–अलग होती हैं। यह भी स्पष्ट है कि ये आवश्यकताएं ही व्यक्ति को अभिप्रेरित करती हैं अतः सभी की आवश्यकताएं भिन्न होने के अभिप्रेरक तत्व भी भिन्न होते हैं।
4. **अभिप्रेरणा कई प्रकार से दी जा सकती है–** अभिप्रेरणा की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसकी अनेक विधियां हैं। सम्बन्धित व्यक्तियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए मैट्रिक तथा अमौट्रिक विधियों द्वारा अभिप्रेरण किया जा सकता है।
5. **यह प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य है**–अभिप्रेरणा प्रबन्ध का ही एक मुख्य कार्य है एक प्रबन्धक यदि अभिप्रेरण कार्य में निपुर्ण नहीं है तो शेष सभी कार्यों में निपुणता व्यर्थ है उदाहरण के लिए प्रबन्धक के

उद्देश्य प्राप्ति के लिए अच्छी योजनाएं तैयार कर ली हैं लेकिन यदि वह उनको यथार्थ में बदलने के लिए अभिप्रेरित नहीं कर सका तो प्रथम प्रयास भी विफल हो सकता है।

6. **यह व्यक्तियों का कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है**–एक व्यक्ति अपनी शिक्षण योग्यता के आधार पर नियुक्त कर लिया जाता है। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वह अपनी पूर्ण क्षमता के साथ कार्य करेगा। अभिप्रेरणा उसे इस बात के लिए प्रेरित करती है कि अपनी पूरी उपलब्ध क्षमता के साथ कार्य करें।
7. **यह औद्योगिक शान्ति स्थापित करने में सहायक है**–अभिप्रेरणा व्यक्तियों को कार्य के लिए तो अभिप्रेरित करता । ही औद्योगिक शान्ति की स्थापना में भी सहायक है। अभिप्रेरणा से व्यक्तियों द्वारा परी लगन से कार्य करने के कारण अधिक व अच्छा उत्पादन होता है संस्था को लाभ है तथा इससे कर्मचारियों को भी अनेक सुविधाए प्रदान का परिणामतः स्वामी व सेवक दोनों सन्तुष्ट रहते हैं।
8. **अभिप्रेरणा से मनोबल का संचार होता है**–अभिप्रेरणा और मनोबल द्वारा परस्पर अलग–अलग व्यक्तियों का करके उनमें मनोबल का संचार किया जाता है जिससे उनकी कार्य योग्यता, कार्य करने की इच्छा में परिवर्तित हो जाती है। अतः स्पष्ट है कि अभिप्रेरणा की प्रक्रिया से ही मनोबल का संचार होता है।
9. **अभिप्रेरणा समस्या का एकाकी समाधान**–प्रबन्धक के सामने यह समस्या होती है कि अधीनस्थों में कार्य करने का को कैसे जागृत किया जाये। ऐसा मात्र अभिप्रेरणा द्वारा ही किया जा सकता है जब तक उनको आवश्यकताओं के माध्यम से अभिप्रेरित नहीं किया जायेगा। प्रबन्धक अपनी समस्या को हल नहीं कर सकता।
10. **इसका सम्बंध उत्पादन के मानवीय तत्व से है**–अभिप्रेरणा का सम्बंध उत्पादन के मानवीय तत्व से है मानवाय तत्व को अभिप्रेरित करने पर वे स्वयं ही अन्य गैर–मानवीय तत्वों का कुशलतापूर्वक उपयोग करने लगते है।

अभिप्रेरण प्रक्रिया

प्रो. कीथ डेविस ने अभिप्रेरण प्रक्रिया के निम्न छः चरण बताये हैं–

1. उद्देश्यों का निर्धारण।
2. कर्मचारियों का निर्धारण।
3. कर्मचारियों की भावना का अध्ययन।
4. सम्प्रेषण।
5. सहित नियोजन करना।
6. समूह भावना।

सर्वप्रथम, प्रबन्धक के लिए अभिप्रेरण के उद्देश्यों को निर्धारित करना आवश्यक होता है। अन्य शब्दों में, प्रबन्धक को यह निश्चित कर लेना चाहिए कि उसे किन–किन कारणों से अभिप्रेरणा देनी है। ऐसा न होने की दशा में अभिप्रेरणा के स्तर को मापना कठिन होगा तथा प्रबन्धक अभिप्रेरणा के तरीकों का चयन नहीं कर पायेगा। साथ ही वह इस तथ्य को भी ज्ञात नहीं कर पायेगा कि वह किस दिशा में कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना चाहता है। तत्पश्चात् कर्मचारियों की भावनाओं का अध्ययन किया जाना चाहिए। तभी उनको प्रभावी तरीके से अभिप्रेरित किया जा सकता है। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि प्रबन्धक इस तथ्य का बारीकी से अध्ययन कर ले कि कर्मचारी किस स्थिति में हैं या वे कार्य को किस प्रकार देखते हैं।

डेविस का मत है कि प्रबन्धकों को चाहिए कि वह कर्मचारियों को अभिप्रेरण की तिथि भी बतला दें, अन्यथा वह अभिप्रेरित करने में असफल हो सकता है, इसके अतिरिक्त, अभिप्रेरणा सन्देश का कर्मचारियों पर भी प्रबन्धकों को

ध्यान देना आवयकोला है। कर्मचारियों को अभिप्रेरित करते समय यह आवश्यक है कि प्रबन्धक कर्मचारियों के हितों तथा संगठनात्मक उद्देश्यों दोनों को ही ध्यान में रखें।

तत्पश्चात, कर्मचारियों को उत्प्रेरित करने हेतु उन्हें कुछ सहायक कार्य दशाएँ उपलब्ध करनी चाहिए। इस दृ ष्टि से प्रत्येक जाती को समुचित प्रशिक्षण तथा औजार आदि उपलब्ध कराने के साथ ही बेहतर कार्य दशाएँ भी उपलब्ध की जानी चाहिए।

अन्त में अभिप्रेरक के लिए सहायक कार्य दशाएँ उपलब्ध कराने के पश्चात् कर्मचारियों में समूह भावना का विकास किया जाना चाहिए ताकि संगठन में कार्यरत प्रत्येक व्यक्ति के कार्य एवं प्रयास संस्था के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए हों। इस दृष्टि से व्यक्ति के साथ संस्था को भी महत्व दिया जाना चाहिए।

अभिप्रेरणा के महत्व

1. नैतिक उत्थान—कोई भी उपक्रम तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि उसके सदस्यों का मनोबल ऊँचा न हो। ऊँचा मनोबल कार्य के दोहराने को रोकता है, उत्पादन क्षमता को बढ़ाता है तथा काम करने वाले कर्मचारियों में काम के प्रति रुचि उत्पन्न करता है। उत्प्रेरण के उपायों के क्रियान्वयन की मदद से समस्त कर्मचारियों में जाग्रत की जा सकती है जिसका अनुकूल प्रभाव मनोबल पर पड़ता है।
2. लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता—प्रत्येक उपक्रम किन्हीं विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में कार्य के उपायों के क्रियान्वयन से कर्मचारियों में कार्य करने की शक्ति एवं इच्छा जाग्रत होती है जिन्हें पूर्व—निर्धाारित लक्ष्य की प्राप्ति में उपयोग किया जा सकता है।
3. आवश्यकताओं की सन्तुष्टि—मनुष्य की आवश्यकता असीमित है तथा उनमें क्रमबद्धता होती है। अगर की सन्तुष्टि एक महत्वपूर्ण प्रेरणा होने के कारण प्रत्येक व्यवसायी एक कर्मचारी की उन आवश्यक सकता है जो कि अभी भी असन्तुष्ट है। यह असन्तुष्टि की स्थिति ही उपक्रम में कार्यरत व्यक्तियों की आवश्यकता को सन्तुष्ट करने पर जोर डालती है।
4. मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग आधुनिक व्यवसाय—व्यवसायिक संस्था व्यवस्था में मानव को क्रियान्वित का रूप प्रदान करने के लिए जरूरी है। लेकिन इसका अधिकतम उपयोग तब ही होनी उसे ऐसा वातावरण मिले जिसमें वह अपनी क्षमता का पूर्ण विकास कर सके । उत्प्रेरण के तरीकों से उसमें कार्य करने की शक्ति का विकास किया जा सकता है जिससे कि उसका अधिकतम उपयोग सम्भव हो जाऐगा।
5. अनुकूलतम वातावरण उत्पन्न करना—उपक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रबन्धकों द्वारा ऐसा वातावरण प्रदान करना आवश्यक है जिससे कर्मचारी मिल जुल कर कार्य कर सकें ऐसा वातावरण तब तक उत्पन्न नहीं किया जा सकेगा जब तक कि प्रबन्धक को उत्प्रेरण का ज्ञान न हो।
6. अच्छे मानवीय सम्बन्धों का विकास—अच्छे मानवीय सम्बन्धों का विकास कर्मचारियों में आत्म विश्वास, वफादारी तथा प्रबन्धकों में कर्मचारियों के प्रति सहनशील दृष्टिकोण तथा सम्मान की भावना जाग्रत करने पर निर्भर है। अर्थात दोनों पक्षों में आपसी समझ उत्पन्न होने पर ही अच्छे मानवीय सम्बन्धों का विकास हो पायेगा जो कि उत्प्रेरण के उपाय क्रियान्वयन से ही सम्भव है । इसके अतिरिक्त इससे आपसी शिकायतों का क्षेत्र कम होगा तथा परिवेदना निवारण आसान होगा जिससे कि अच्छे मानवीय सम्बन्धों का विकास सम्भव हो पायेगा।
7. कार्य सन्तुष्टि—कार्य के परिणामों में एक व्यक्ति की कार्य सन्तुष्टि का बोध हो पाता है। कार्य करते समय एक व्यक्ति अपने द्वारा प्राप्त किये जाने वाले लाभों से संबंधित है और यदि उसे तुलनात्मक दृष्टि से लाभ मिले तो वह अपने द्वारा किये जाने वाले कार्य से अधिक सन्तुष्टि महसूस करेगा।
8. व्यवहारिक प्रबन्ध की कुंजी—ब्रीच के मतानुसार उत्प्रेरण की समस्या व्यवहारिक प्रबन्ध की एक कुंजी है तथा निष्पादित रूप में यह प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य है। तमाम प्रबन्धकीय कार्यों के कुशलतापूर्वक सम्पादन

में उत्प्रेरणा के तरीकों का क्रियान्वयन आवश्यक है। इन्ही उपायों के माध्यम से प्रबन्धकीय कार्यों में गतिशीलता लाई जा सकेगी।

9. कर्मचारियों की स्मिरता–जब तक एक व्यक्ति को अपने कार्य से सन्तुष्टि मिलती है तथा उसकी समस्त आधारभूत आवश्यकताएं सन्तुष्ट होती रहती हैं, तो वह संगठन को छोड़कर कहीं भी नहीं जाना चाहता है। क्योंकि उत्प्रेरण एक सतत् प्रक्रिया है, इसलिए उपर्युक्त बातों में कमी आने की सम्भावना नगण्य है, जिसका प्रभाव कर्मचारियों की स्मिरता पर अनुकूल रूप से पड़ेगा।

उपर्युक्त लाभों से स्पष्ट है कि उत्प्रेरण प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य है बिना इसके उपयोग के क्रियान्वयन से न तो कमपात में कार्य के प्रति इच्छा जाग्रत की जा सकेगी और न ही रुचि। इसके अतिरिक्त उपक्रम की ख्याति बनाने के लिए भी उत्प्रेरण की भूमिका अच्छी रहती है।

अभिप्रेरणा की विचारधाराएं

हर्जबर्ग ने अभिप्रेरण की एक नवीन विचार धारा का विकास किया इस विचारधारा को स्वास्थ्य या आयोग्य पर नाम से जाना जाता है। हर्जबर्ग उनके सहयोगियों ने Psychological service, Pittsburgh'' ने अनेक अध्ययना का विचार धारा का विकास किया हर्जबर्ग ने स्पष्ट किया मनुष्य की आवश्यकताओं को दो समहों में विभक्त किया जो परस्पर एक दूसरे से मिलती हैं और मानसिक व्यवहार को अलग–अलग ढंग से प्रभावित करती हैं हर्जबर्ग और उन ने अध्ययन और अनुसंधानों के आधार पर निग्न दो प्रमुख निष्कर्ष निकालते हैं।

1. जब व्यक्ति अपन काय स असन्तुष्टि प्राप्त करते हैं तो इस असन्तष्टि का कारण वह वातावरण है जिसमें वे कार्य करते है। हर्जबर्ग ने इस वातावरण को प्रभावित करने वाले घटकों को स्वास्थ्य घटकों के नाम से पुकारा है ये घटक मनुष्य के वातावरण से सम्बन्धित हैं और मनुष्य को सन्तुष्टि होने से रोकते है। इस सभी घटकों को हर्जबर्ग और उनका ने वाहन घटक माना है।
2. जब व्यक्ति कार्य में सन्तुष्टि प्राप्त है तो यह केवल उनके द्वारा किये गये कार्य से ही प्राप्त हुई मानी जाता ने सन्तष्टि प्रदान करने वालों घटकों को अभिप्रेरक घटक के नाम से सम्बोधित किया जाता है हर्जबर्ग आर उनके सहयोगी ने इन सभी घटकों को आन्तरिक घटक माना जाता है।

इस प्रकार उपर्यक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हर्जबर्ग और उनके सहयोगियों ने कार्य असन्तुष्टि के लिए स्वास्थ्य तत्वा जार कार्य सन्तष्टि के लिए अभिप्रेरक तत्वों को उत्तरदायी माना है हर्जबर्ग एवं उनके सहयोगियों ने स्वास्थ्य तत्वी आर आमा तत्वों में निम्न को शामिल किया है:

स्वास्थ्य तत्व

1. पर्यवेक्षण
2. कम्पनी नीति और प्रशासन
3. कार्य दशाएँ
4. पारस्परिक वैयक्तिक सम्बन्ध
5. स्थिति
6. मजदूरी
7. कार्य–सुरक्षा

अभिप्रेरक तत्व

1. उपलब्धि
2. मान्यता नाकार

3. उत्तरदायित्व
4. कार्य–स्वयं
5. उन्नित
6. विकास

उपर्युक्त विवेचन को स्पष्ट है कि हर्जबर्ग के अनुसार स्वास्थ्य तत्व हैं–पर्यवेक्षण कम्पनी नीति एवं प्रशासन कार्य–दशाएँ, पारस्परिक वैयक्तिक सम्बन्ध, स्थिति, मजदूरी और कार्य सुरक्षा । ये सभी तत्व व्यक्ति को कार्य से असन्तुष्ट होने से रोकते हैं अतः यह ठीक ही कहा गया है कि यद्यपि ये तत्व व्यक्ति की सन्तुष्टि कार्य क्षमता और उत्पादकता में वृद्धि तो नहीं करते लेकिन व्यक्ति को असन्तुष्ट होने से अवश्य रोकते हैं। गैलरमैन के अनुसार प्रभावी अभिप्रेरण के लिए स्वास्थ्य तत्व पूर्ण आवश्याकताएं है लेकिन ये स्वयं अभिप्रेरित करने में असमर्थ हैं। ये मनोबल की छत्र छाया में आवश्यक आधार तो बना सकते हैं ये व्यक्तियों को अपने कार्य की अच्छी तरह से करने में किसी प्रकार अभिप्रेरणाएं प्रदान नहीं करते। हर्जबर्ग अभिप्रेरक तत्व हैं–उपलब्धि, मान्यता, उत्तरदायित्व, कार्य स्वयं, उन्नित और विकास । यह सभी तत्व प्रत्यक्ष रूप से कार्य से ही सम्बंधित हैं। इन तत्वों के सम्बन्ध में हर्जबर्ग का मानना है कि ये ही व्यक्ति को कार्य से सन्तुष्टि प्रदान करते हैं क्योंकि ये व्यक्ति मनोवैज्ञानिक विकास के लिए आधारमात एवं मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

मास्लो का क्रम बद्धता सिद्धान्त

अब्राहम एवं मास्लों न उत्प्रेरण के सिद्धान्त को आवश्यकताओं की क्रम बद्धता आधार पर विकसित किया है इसे तष्टि सिदान्त के नाम से भी जाना जाता है। उनके अनुसार मानव की आवश्यकता अनन्त हैं एवं व्यक्ति के व्यवहार के अध्ययन के लिए उनकी आवश्यकताओं का अध्ययन किया जाना आवश्यक है। ये आवश्यकताएं व्यक्ति विशेष की परिस्थितियों से प्रभावित होकर अभावों को जन्म देती है और इन अभावों की पर्ति के लिए ही मानव कार्य करता है। मास्लो के अनुसार आवश्यकता हात ह आर उनमें क्रमबद्धता पाई जाती है और एक व्यक्ति में कार्य के प्रति रूचि पैदा करने के लिए सही असन्तुष्ट आवश्यकता को सन्तुष्ट किया जाना आवश्यक है उन्होंने मानव की आवश्यकताओं के पाँच स्तर निम्न चित्र की मदद से जाने जा सकते है।

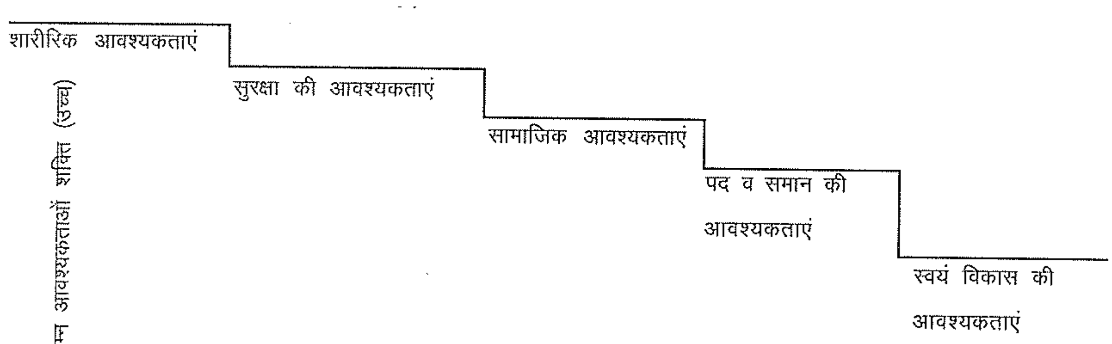

मास्लो की आवश्यकता क्रम

मास्लो के उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर प्रबन्धक अपने कर्मचारियों की आवश्यकता का अध्ययन कर सकेगें एवं उन्ले करने की विधियों के सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह विचार मानवीय सम्बन्ध के आशावादी र पर आधारित है जो कि सामान्यता सभी को उचित प्रतीत होता है चूंकि यह सिद्धान्त यह स्पष्ट करना है कि व्यक्ति का करने के लिए उसकी असन्तुष्ट आवश्यकता को सन्तुष्ट करना होगा, इसलिए इसे एक सरल एवं सहज बोधगम्य सिद्धान्त मान जाता है यह सिद्धान्त इस लिए भी किया जाता है क्योंकि यह व्यक्तिगत व्यवहार के प्रमुख पहलू आवश्यकताओं के व्यवस्थित अध्ययन को सम्भव बनाता है। लेकिन अनेक सर्वेक्षण इस बात को पुष्ट करते हैं कि यह विचारधारा सभी क्षेत्रों में उपयुक्त नहीं है।

मैस्लो तथा हर्जबर्ग के सिद्धान्तों की तुलना

हर्जबर्ग की विचारधारा मैस्लों की विचारधारा की पूरक है। हर्जबर्ग की मान्यता के अनुसार जीवन–निर्वाह आवश्यकताएं सुरक्षात्मक आवश्यकताएं, सामाजिक आवश्यकताएं तथा कुछ सीमा तक अंहकारी आवश्यकताएं मात्र स्वास्थ्य तत्व हैं, जो अभिप्रेरक न होकर असन्तोष पर अंकुश लगाते हैं। मैस्लों द्वारा वर्गीकृत शेष आवश्यकताएँ जैसे अहंकारी आवश्यकता और आत्मविश्वास सम्बन्धी आवश्यकताएँ ही हर्जबर्ग की दृष्टि में अभिप्रेरक तत्वों की श्रेणी में रखी जा सकती है।

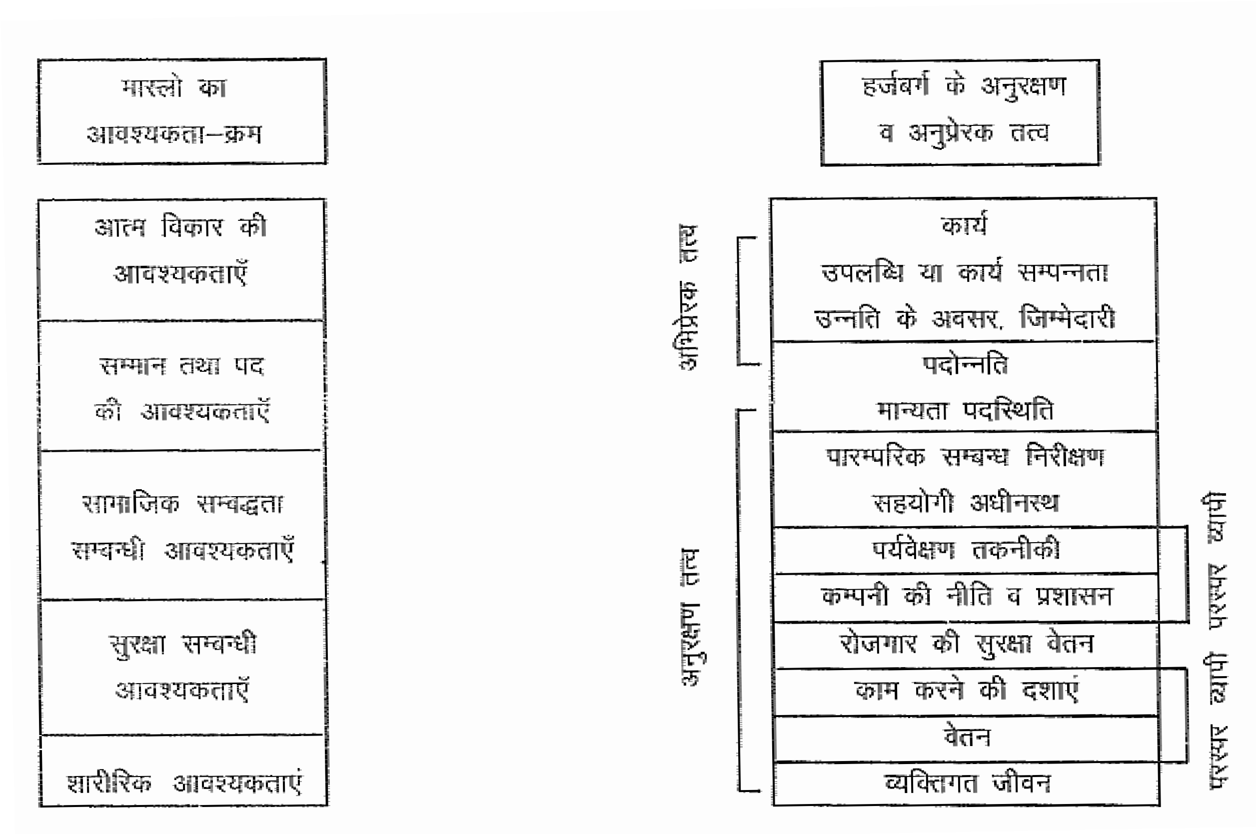

इन दोनों सिद्धान्तों के सम्बन्ध को दिए गए चित्रों से आसानी से समझा जा सकता है।

मैकग्रेगर का अभिप्रेरण सिद्धान्त

डगलस मैकग्रेगर ने मानवीय अभिप्रेरण के सम्बन्ध में परम्परागत "एक्स" विचारधारा तथा आधुनिक वाई विचारधारा की विवेचना की है। मैस्लो के आवश्यकता प्राथमिकता क्रम का समर्थन करते हुए संगठन में कर्मचारियों की अभिप्रेरणा को बढ़ाने के लिए विकेन्द्रीयकरण तथा अधिकार सौंपने, कार्य–विस्तार भागीदारी तथा परामर्शात्मक प्रबन्ध तथा प्रगति मूल्यांकन आदि प्रणालियो का सुझाव दिया है। मैकग्रेगर की ''एक्स विचारधारा'' की यह मान्यता है कि औसत कर्मचारी आलसा होते है, उनमें कार्य करने की इच्छा नहीं होती, वे उत्तरदायित्वों को टाल देना चाहते हैं, वे स्वार्थी होते है प्ति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता इसलिए किसी उपक्रम के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों पर आवश्यक दबाव एवं नियन्त्रण रखना पड़ता है। लेकिन कर्मचारी की प्रकति के सम्बन्ध में "एक्स विचारधारा का नाम और दन मान्यताओं के आधार पर कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए आरम्भ की गई प्रत्येक योजना सफलता प्राप्त कर सकती।

एक्स तथा वाई सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन

एक्स सिद्धान्त	वाई सिद्धान्त
1. सामान्य व्यक्ति कार्य के प्रति सुस्त आराम पंसद एवं अपरिपक्व होता है अर्थात् वह काम से दूर रहना ही पसन्द करता है।	1. सामान्य व्यक्ति के लिए बौद्धिक और शारीरिक कार्य उतना ही आवश्यक है जितना भोजन और आराम करना।
2. कार्य के प्रति विमुखता के कारण अधिकतर व्यक्तियों से कार्य करवाने के लिए उत्पीड़न, कठोर नियंत्रण एवं भय का वातावरण बनाना पड़ता है।	2. संठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बाह्य नियंत्रण या दण्ड को भय ही एकमात्र तरीका नहीं है।
3. सामान्य व्यक्ति में उत्तरदायित्व एवं पहल की भावना का अभाव पाया जाता है।	3. सामान्य व्यक्ति उपयुक्त परिस्थिति में न केवल दायित्व ही ग्रहण करने का इच्छुक होता है वरन् उसमें पहल और कल्पना की भावना भी होती है। परन्तु इसके लिए वातावरण का सन्तोषप्रद होना आवश्यक है।
4. सामान्य व्यक्ति महत्वांकाक्षी नहीं होता वरन् निर्देशन एवं आदर्श प्राप्त करना पसन्द करता है।	4. सामान्य व्यक्ति महत्वांकाक्षी होता है स्वयं निर्देश प्राप्त करना है और नियंत्रित होता है।
5. सामान्य व्यक्ति सुरक्षा का सर्वाधिक महत्व देता है।	5. उद्देश्यों के प्रति वचनबद्धता, उद्देश्यों की प्राप्ति से प्राप्त होने वाले परितोषिक से सम्बन्धित होता है।
6. यह परम्परागत, कठोर, तानाशाही विचारधारा है।	6. यह विचार, आधुनिक मानवीयता से ओत–प्रोत एवं सहभागिता से विश्वास करता है।

वाई–विचारधारा मानवीय व्यवहार का वास्तविक नियंत्रण प्रस्तुत करती है। इस विचारधारा की मान्यता है कि जिस प्रकार व्यक्ति के लिए आराम करना और खेलना स्वाभाविक है, ठीक उसी प्रकार कार्य करना भी स्वाभाविक है। औसत कर्मचारी उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने की कला सीख सकते हैं, लेकिन व्यक्ति स्वतः अपने से अधिक अनुभवी व्यक्तियों से निर्देशन प्राप्त कर सकते हैं एवं यदि उन्हें ठीक ढंग से अभिप्रेरित किया जाए तो ये महान सृजनशील कार्य कर सकते हैं। मैकग्रेगर के अनसार ″एक प्रभावशाली संगठन वह है जिसमें निर्देशन एवं नियन्त्रण के स्थान पर सत्यनिष्ठा एवं सहयोग हो और जिसके प्रत्येक निर्णय में निर्णय से प्रभावित होने वाले को सम्मिलित किया जाता हो।′

सांराश रूप में, भैकग्रेगर का विचार है कि कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए प्रबन्धकों को चाहिए कि वे किसी कार्य–विस्तार तथा भागीदारी व परामर्शात्मक प्रबन्ध प्रणालियों का प्रयोग करें और कर्मचारियों को स्वयं अपना को कार्य तय करने तथा अपने दायित्व का स्व–मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित करे। मैकग्रेगर के अनुसार, प्रबन्धक एक शिक्षक पराम सहयोगी तो होता है, अधीक्षक नहीं।

आऊची की जैड विचारधारा

अभिप्रेरण की इस विचारधारा को जन्म देने का श्रम प्रो. विलिमय जी आऊची को जाता है। आऊची ने जापान की प्रबन्ध व्यवस्था का वर्षों अध्ययन एवं अनुसंस्थान किया। यह विचारधारा प्रो. आऊची के इन्हीं अन्वेषणों के

इस समय प्रो. आऊची कैलीफोरनिमा विश्वविद्यालय में प्रोफेसर है। प्रो. आऊची ने अपनी उक्त विचारधारा के जड नामक पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक सन 1981 में अमेरिका की एवोन प्रकाशन संस्था द्वारा मद्रित कर समय सर्वाधिक चिकृति पुस्तकों में से एक थी।

जैड विचारधारा जापानी प्रबन्ध व्यवस्था का दूसरा नाम है। प्रो. आऊची ने जापानी तथा अमरीकी प्रबन्ध व्यवस्थाओं का अध्ययन किया है। उन्होंने जापानी प्रबन्ध व्यवस्था के उन महत्वपूर्ण विचार–बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है। इनकी न प्रबन्ध व्यवस्था को अमरीकी प्रबन्ध व्यवस्था से श्रेष्ठ माना गया है।

कार्मिकों को संगठन में सन्निहित करना, इस विचारधारा का मूलधारा है और यही जापानी अर्थव्यवस्था की उत्पादक है। प्रो. आऊची के अनुसार कार्मिकों की संगठन में सन्निहिता, विश्वास, मर्मज्ञता एवं आत्मीयता की देन है। मर्मज्ञताः प्रयोजन कार्मिकों के व्यक्तित्व की ऐसी गहरी पहचान है जिसके आधार पर फोरमैन यह जनता है कि कौन कार्मिक किस के साथ अच्छी प्रकार काम कर सकता है। यह मर्मज्ञता प्रभावशाली कार्य–टोली बनाने में बड़ी सहायक सिद्ध होगी। के अनुसार, "जापानी प्रबन्ध का सारतत्व, विश्वास, मर्मज्ञता, आत्मीयता इन तीन शब्दों में अन्तनिर्हित है। ''प्रो. आऊची उनकी पुस्तक (थ्यौरी जैड) इन्हीं तीन शब्दों के सम्बन्ध में है।''

अभिप्रेरित की प्रसंगिक विचारधाराएं यह बताती हैं कि क्या बातें कार्मिकों को अभिप्रेरित करती है? इस प्रकार यह कि इस प्रश्न का उत्तर पूरी तरह से प्रदान करती है। प्रो. आऊची ने जापान की उत्पादकता का राज जानने का प्रयास कि उन्होंने सन् 1973 में यह अध्ययन शुरू किया था व पूरे 8 वर्ष तक अध्ययन और अन्वेषण करने के बाद यह निष्कर्ष निका जापान की उत्पादकता का राज श्रेष्ठ अधिकारियों द्वारा उनके क्रमिकों में निहित विश्वास, आत्मीयता उत्प्रेरकता का कार्य करता है।

जैड विचारधारा में वर्णित उत्प्रेरक तत्वों की पहचान करने के बाद अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इन उत्प्रेरक तत्वों अथवा घटकों का निर्माण किस प्रकार से किया जाये।

प्रो. आऊची ने उक्त उत्प्रेरक तत्वों के निर्माणी घटकों की पहचान कर उनकी गणना निम्न प्रकार से की है

1. जीवन पर्यन्त नियोजन,
2. कार्मिक का पद गति से मूल्यांकन एवं पदोन्नति,
3. अविशिष्ट जीवन–वृति पथ,
4. अव्यक्त नियन्त्रण प्रणाली,
5. सामूहिक निर्णयन,
6. सामूहिक उत्तरदायित्व,
7. कार्मिकों के सम्बन्ध में समग्रता की विचारधारा।

जापानी व्यवसायिक नियोजन की यह विशेषता है कि कार्मिक को एक बार भर्ती कर लेने के बाद उसे नौकरी से सामान्यतः हटाया नहीं जाता। मन्दी के दिनों में भी व्यवसायिक फर्म का इस बात का बराबर प्रत्यत्न रहता है कि किसी कार्मिक की छटना न करनी पड़े। फर्म नुकसान उठाकर भी लोभी कार्मिकों को बनाए रखती है। जापान में सिर्फ सेवा निवति भी स्थिति में ही कर्मचारी का अपनी फर्म से सम्बन्ध विच्छेद होता है।

अमेरीकी प्रबन्ध विशेषज्ञों को यह बात समझ में नहीं आती कि कोई व्यवसायिक फर्म किस प्रकार आर्थिक मन्दी जैसस, भी बिना छंटनी के जीवित रह पाती है। इसका कारण यह है कि अमेरीकी प्रबन्ध व्यवस्था में लाभों पर सर्वाधिक बला जाता है। वे लाभों के लिए कर्मचारियों की बलि चढ़ाने में बिल्कुल नहीं हिचकता। कर्मचारियों के हित के स्थान पर फर्म व्यवसायिक लाभ उनका इष्ट होता है।

जब जापानी व्यवसायी अपने कर्मचारियों का इतना हित चिन्तन करते हैं तो यह स्वाभाविक ही है कि कर्मचारियों में प्रति पूर्ण समर्पण की भावना हो।

जापान में कार्मिकों को पदोन्नति बहुत धीरे–धीरे की जाती है। जापानी प्रबन्धकों की मान्यता है कि उत्पादकता देन न होकर सामूहिक प्रयासों का परिणाम है। पदोन्नति का आधार कार्य समूह के साथ एक टीम की हैसियत से कार्य करना तथा उस टीम का विकास करना तथा जापानी प्रबन्धविज्ञों का यह मानना कि पहचान एक दो या तीन वर्ष की अलग से नहीं जा सकती है। जब कर्मचारी को किसी भी परिस्थिति में रोजगार से हटाना नहीं है तो फिर उसके कार्य मूल्यांकन की जल्दी भी क्या है? जापान में किसी भी कार्मिक का प्रथम कार्य मूल्यांकन सामान्यतः 10 वर्ष की अवधि के बाद ही किया जाता है। इस प्रकार उक्त वर्णित प्रथम दो घटक कार्मिक को संगठन में सन्निहित करने तथा सशाक्तिशील फार्म समूहा की रचना में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं।

उत्प्रेरक तत्वों के निर्माण घटकों में तीसरा तत्व है– अविशिष्ट जीवन वृति–पथ । वह घटक भी कुछ ऐसा है जिसे अमेरीका प्रबन्ध वैज्ञानिक आसानी से नहीं समझ पाते। जापान में पबशकों की विशेषतता पर अधिक बल नहीं दिया जाता। इसक विपरीत वहाँ प्रयास यह रहता है कि प्रबन्धक व्यवसाय से सम्बन्धित सभी विभागों एवं कामों को समझे तथा यह भली प्रकार समझें की एक कार्य दूसरे कार्य से किस प्रकार सम्बद्ध है कि इस प्रकार के प्रबन्धक का दष्टिकोण अधिक व्यापक होता है आर वह अन्य कार्य–समूहों के साथ ताल–मेल बढ़ाने में कही अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

उत्प्रेरक तत्वों के अन्य निर्माणी घटक स्वतः स्पष्ट हैं। अतः इनकी अलग से व्याख्या करने की कोई आवश्यकता हो ।

कुछ व्यक्तियों की यह मान्यता है कि जापानी उत्पादकता का श्रेय गुणवता–वृतों को जाता है। गुणवता–वृत, सुधार की एक सामूहिक निर्णयन एवं सामूहिक उत्तरदायित्व के प्रबन्ध दर्शन को उत्पादकता की कुन्जी माना जाना चाहिए न की गुणवता वृता को।

अभिप्रेरणा की बाधाएं

अभिप्रेरणा अधिकारियों और अधीनस्थों के मध्य एक विशेष संबंध का परिणाम होती है। इसके लिए अधिकारी या प्रबन्धक दैनिक नियन्त्रण व कार्यकलापों से हटकर एक विशेष करते हैं यह जरूरी नहीं है कि प्रबन्धकों द्वारा किया गया प्रयास सर्वमान्य होगा इसका विरोध भी हो सकता है इस तरह अभिप्रेरण व्यवस्था का लागू करने में अनेक बाधाएं उत्पन्न होती हैं जिसमें से मुख्य निम्नलिखित है

1. **एक महंगा प्रयत्न**–एक अभिप्रेरण व्यवस्था को लागू करने का मुख्य उद्देश्य कर्मचारियों की कार्यकुलशता के ऊंचे स्तरको प्राप्त करना होता है। यदि इसको लागू करने में की गई मेहनत सफल हो जाए तो यह बिलकुल भी महंगी नहीं है लेकिन प्रायः देखा जाता है कि पूरे प्रयत्नों के बाद भी कार्य कुशलता के बाधित स्तर को प्राप्त नहीं किया जाता। ऐसे में यह प्रक्रिया मंहगी साबित होती है।
2. **उपद्रवी कर्मचारी**–हर संस्था में कुछ कर्मचारी उपद्रवी प्रकृति के होते हैं उनका उद्देश्य मात्र गड़बड़ पैदा करना व नीतियों को लागू न होने देना होता है। इस प्रकार के कर्मचारी की समस्या सबसे अलग व गम्भीर होती है। इनको अभिप्रेरित करना बहुत कठिन काम है अतः किसी भी अभिप्रेरण योजना को लागू करने में ये लोग बाधा बन जाते हैं।
3. **परिवर्तन विरोध**–मानव स्वभाव आसानी से परिवर्तन स्वीकार करने का नहीं है जो व्यवस्था चल रही होती है वे उसी. के आदी हो जाते हैं और उसी में काम करना पसन्द करते हैं। अतः जब भी कोई नई योजना लागू की जाती है तो वे उसका विरोध करते हैं और उसकी सफलता में बाधा बन जाते हैं।

4. **आधारभूत तत्वों की समस्या**–इस समस्या का सम्बंध अभिप्रेरणा के आधारभूत तत्वों से है। ये तत्व उमेरक सोय अभिप्रेरणा की विधियाँ तथा उत्प्रेरण के वातावरण से सम्बन्धित हो सकते हैं सामान्यतया एक प्रबन्धक अपने कर्मनी को उत्प्रेरित करते समय समस्त तत्वों में सन्तुलन स्थापित नहीं कर पाता है जिससे कि व्यक्तियों को कार्य के प्रति प्रेरणा प्रदान करना कठिन हो जाता है।
5. **सीमित उत्प्रेरणात्मक साधनों की समस्या**–एक उपक्रम के पास असीमित मात्रा में प्रेरणा प्रदान करने वाले साधन नहींहोते। इन सीमित साधनों के उपयोग की समस्या आती है। किस व्यक्ति को क्या प्रेरणा दी जाय, तथा कितनी ही आदि महत्वपूर्ण समस्याएँ इन साधनों से सम्बन्धित हैं।
6. कुछ कर्मचारियों का स्तर काफी निम्न श्रेणी का होता है। वे सदैव यह सोचते रहते हैं तथा उन्हें हा अभिप्रेरणा पूर्व रूप से महत्वहीन है। अभिप्रेरणा के महत्व को सभी कर्मचारी नहीं जानते एवं ऐसे कर्मचारी अनेक लाभ उठाने से वांछित भी रह जाते है।
7. कुछ कर्मचारियों की ऐसी आवश्यकतायें होती हैं जो संगठन कार्यों से किसी भी रूप में सम्बन्धित नहीं होती। संगठन के लिए यह भी सम्भव नहीं होता कि उन्हें पूरा करे।
8. कुछ कर्मचारी संगठनात्मक अभिप्रेरित तकनीकियों के पक्ष में भी होते हैं क्योंकि उनके अनुसार अभिप्रेरित तकनीकियों का आधारभूत संगठनात्मक उद्देश्यों की वृद्धि करना, कर्मचारियों के उद्देश्यों को पूरा करना होता है।
9. कुछ तत्व जो तकनीकी, संगठनात्मक उद्देश्यों, विपणन तत्वों, लागत तत्वों, औद्योगिक व्यवहार, सरकारी प्रतिबन्धों इत्यादि से सम्बन्धित होते हैं संगठन में लागू करने पड़ते हैं।
10. अच्छा निष्पादन प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने से पहले प्रबन्धकगणों कोकिया जाए क्योंकि यदि संगठन के प्रबन्धक प्रेरित होंगे तो वे अपने अधीनस्थों को भी सरलता पूर्वक प्रेरित हैं। अनेक प्रबन्धक अभिप्रेरणा सम्बन्धी कार्यों से अनभिज्ञ होते हैं। प्रबन्धकों को अभिप्रेरित करना, और गैरव्यक्तियों की तुलना में अधिक जटिल कार्य होता है।

वित्तीय तथा अवित्तीय उत्प्रेरण

वित्तीय उत्प्रेरण में वे समस्त साधन सम्मिलित किये जाते हैं जिनका मुद्रा से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्बन्ध होता है। एक को जीवन निर्वाह के लिए खाने के लिए अनाज, रहने के लिए मकान तथा पहनने के लिए कपड़ों की आवश्यकता हो इन आवश्यकताओं की पूर्ति वह धन के अभाव में नहीं कर सकता है। मजदूरी अथवा वेतन, बोनस, लाभों में हिस्सा का वेतन, पेन्शन आदि वित्तीय प्रेरणाओं के उदाहरण हैं। प्रबन्ध के परम्परागत स्कूल के अनुयायी विद्वान इसी बात को मा हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए वित्तीय प्रेरणाएँ बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। क्योंकि मुद्रा की आवश्यकता सर्वव्यापक है तथा यह सी आवश्यकताओं की सन्तष्टि करती है, इसलिए इसे उत्प्रेरण का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाना स्वाभाविक ही है। अतिउत्प्रेरण का अभिप्राय उन प्रेरणाओं से है जिनका मुद्रा से कोई सम्बन्ध नहीं है, अर्थात जिन्हें प्रदान करने के लिए मदा की बड़ी आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि उपक्रम का व्यवहार सामाजिक होता है इसलिए एक व्यक्ति की समस्त आवश्यकता को केवल मुद्रा से ही सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता है। पद व सम्मान, सुरक्षा, सामाजिक तथा स्वयं–विकास की आवश्यकता ऐसी हैं जिन्हें मात्र धन खर्च करने से ही पूरा नहीं किया जा सकेगा। मान्यता, प्रशंसा, प्रबन्ध में सहभागिता, अधिक अधिकार सहयोग आदि कुछ ऐसी प्रेरणाएँ हैं जिनका एक व्यक्ति में कार्य के प्रति रूचि, शक्ति उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। एक व्यक्ति के व्यवहार में अनुकूल परिवर्तन लाने के लिए इनका उपयोग अत्यन्त आवश्यक है।

वित्तीय एवं अवित्तीय प्रेरणाएँ

वित्तीय प्रेरणाएँ

मुद्रा की सर्वव्यापकता सर्वविदित है। अधिकांश आवश्यकताओं की सन्तुष्टि मुद्रा के माध्यम से की जा सकती है। प्रत्येक व्यक्ति खाने, रहने, कपड़े पहनने, मनोरंजन आदि के लिए मुद्रा की आवश्यकता महसूस करता है। निम्न वित्तीय प्रेरणाएँ व्यक्ति के अन्तर्गत कार्य के प्रति रूचि तथा शक्ति को उत्पन्न कर सकती है

1. वेतन वृद्धि।
2. अधिलाभांश।
3. लाभों में सहभागिता प्रदान करना।
4. पेन्शन तथा ग्रेच्युटी में वृद्धि।
5. विशिष्ट वार्षिक वृद्धियाँ।
6. विभिन्न प्रब्याजि योजनाएँ, तथा
7. प्रोवीडेण्ट फण्ड में अधिक अंशदान।

उपर्यक्त प्रेरणाओं के माध्यम से एक व्यक्ति की कई प्रकार की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जा सकेगा। व्यक्ति की कुछ आवश्यकताएँ इस प्रकार की होती है जिन्हें बिना धन के पूरा नहीं किया जा सकता है।

अवित्तीय प्रेरणाएँ

अवित्तीय प्रेरणाओं में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है

1. **पद**—अधिकांश व्यक्तियों के लिए पद बहत महत्वपर्ण होता है उच्च पद हासिल करना तथा वर्तमान पद को खोना दोनों ही उपक्रम में अधिक सहयोग उत्पन्न करते हैं। वर्तमान पट को खोन जायक सहयाग उत्पन्न करते हैं। वर्तमान पद को खोना एक ऋणात्मक प्रेरणा होने के कारण यह अधिक प्रभावशाली नहीं होता। यदि पद को व्यक्ति की योग्यता तथा आकांक्षाओं के अनुकूल बनाया जाय का बनाने का प्रयास किया जा सके तो उच्च पद पर पदोन्नति कर्मचारियों को अधिक कार्य करने का शक्ति तथा इच्छा जागृत कर सकेगी।

2 **प्रभाव**—व्यक्ति वही कार्य क्यों करते हैं जिसे हम उनसे निष्पादित कराना चाहते हैं, तो इसका उत्तर प्रभाव के उपयोग में निहित हैं। प्रभाव वह प्रक्रिया है जिससे मनष्य का व्यवहार बदलता है। यह प्रभाव ऐसा सम्भावित व्यवहार कर पाता है जिससे कि असन्तष्ट आवश्यकताओं की सन्तष्ट किया जा सके। यह प्रभाव अधिकार दबाव, सहकार दाता का ही सकता है। इनमें से मानव को उत्प्रेरित करने के लिए उपयक्त तरीका तलाश किया जा सकता है। उत्प्रेरणा का आधुनिक युग में एक महत्वपूर्ण साधन है।

3. **कुशल संदेशवाहन व्यवस्था**—उपक्रम में कार्य करने वाले व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए एक प्रभावशाला सन्देशवाहन व्यवस्था का निर्माण करना अधिक लाभदायक होगा। कुशल सन्देशवाहन व्यवस्था के माध्यम स एक प्रबन्धक कर्मचारियों को कम्पनी की समस्त योजनाओं से अवगत करा सकते हैं, तथा उपक्रम के कर्मचारी के मन में उत्पन्न भ्रमों को तुरन्त समाप्त कर सकते हैं, जिसका कर्मचारियों की कार्य क्षमता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

4. **मान्यता**—यदि कर्मचारियों के कार्यो को मान्यता प्रदान की जाये तो उनसे अच्छे काम की अपेक्षा की जा सकती है। यदि एक प्रबन्धक अथवा पर्यवेक्षक अपने अधीनस्थ काम करने वाले व्यक्तियों के कार्यों की प्रशंसा करता है तो निःसन्देह व कर्मचारी पूर्व की अपेक्षा अधिक मेहनत से कार्य करेंगे क्योंकि मान्यता एवं प्रशंसा से उन्हें आत्मिक सन्तुष्टि मिलती।

5. **अधिकारों का प्रत्यायोजन**—अधिकारों के प्रत्यायोजन का अभिप्राय अपने अधिकारों में से कुछ अधिकार अपने अधीनस्थों को प्रदान करने से है। एक अधीनस्थ को अपने उच्च अधिकारी से यदि अधिक अधिकार प्राप्त होंगे तो उसमें विश्वास एवं अपनात्व की भावना उदय होगी जो कि उसे अधिक कार्य करने की शक्ति प्रदान कर सकेगी।

6. **कृत्य बदलाव**–इस व्यवस्था के अन्तर्गत कर्मचारी का एक कार्य से दूसरे कार्य पर बदलाव किया जा सकेगा। इस कृत्य–बदलाव से कार्य के सम्बन्ध में उत्पन्न अरूचि एवं असन्तुष्टि में कमी आयेगी तथा वह नये कार्य पर अधिक मेहनत से कार्य कर सकेगा।

7. **वातावरण**–इसमें कार्य की आन्तरिक दशाएँ तथा कार्य के बाहर की दशाएँ दोनों सम्मिलित की जा सकती हैं। यदि कर्मचारियों को कार्य पर अच्छा वातावरण मिले तथा जहाँ वे कार्य के बाद अपना अतिरिक्त समय व्यतीत करते हैं वहाँ पर अच्छी रहने की दशाएँ प्रदान की जायें तो निःसंदेह उनकी कार्य करने की शक्ति में वृद्धि होगी। इससे वह व्यक्ति उपक्रम में अधिक मेहनत से कार्य करने में रूचि लेगा।

8. **सौदेद्श्य प्रबन्ध**–यदि व्यक्तियों के कार्यों का निर्धारित उद्देश्यों के परिणामों के सन्दर्भ में मूल्यांकन किया जाये तशा उसी आधार पर अधीनस्थों को, उद्देश्य निर्धारित करने का अधिकार, जिनकी अन्तिम स्वीकृति पयेवेक्षक द्वारा आवश्यक हो. प्रदान श्री कर दी जाये तो अधीनस्थ परिणामों की अधिक चिन्ता करेगे। इसका प्रभाव यह होगा कि अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए वे अधिक मेहनत से कार्य करेंगे।

नेतृत्व

प्रत्येक समूह जो चाहे वह बड़ा हो या छोटा, एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने सदस्यो के कार्य अभिप्रेरण और निर्देश देने के लिए एक प्रभावशाली नेतृत्व की होती है। नेतृत्व प्रबन्ध कला का एक महत्वपूर्ण पहल में, प्रभावी नेतृत्व की योग्यता प्रभावी प्रबन्धक बनने की एक कुंजी है तथा यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि पर अनिवार्य कार्य करने तथा सम्पूर्ण प्रबन्धकीय कार्य मिलाने में, एक प्रबन्धक प्रभावी नेता होगा। नेतृत्व से तात्पर्य : व्यक्ति के उस गुण से है जिसके माध्यम से वह अपने अनुयायियों का पथ पदर्शन करता है और नेता के रूप में उस का संचालन करता है।

नेतृत्व की महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्न हैं–

1. **बर्नाड**–बर्नाड के मतानुसार नेतृत्व का आशय व्यक्ति के व्यवहार के उस गुण से है जिसके द्वारा वह अन्य लोगों का प्रयास से सम्बन्धित कार्य करने से मार्गदर्शन करता है।''

2. **मुने तथा रेले**–इनके शब्दों में "प्रक्रिया में प्रवेश करते समय अधिकारी वर्ग, जो स्वरूप धारण करता है, उसे नेतृत्व करते है।

3. **थियो हैमन**–हैमन के अनुसार, "नेतृत्व को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा आधिकारी अन्य व्यक्तियों के कार्य को संस्था और व्यक्ति, दोनों के बीच, इस प्रकार की मध्यस्था करके नि से निर्देशित मार्गदर्शन तथा प्रभावित करता है तथा विशिष्ट उद्देश्यों को चुनने तथा प्राप्त करने में दोनों को अधिकतम प्रदान करता है।

नेतृत्व की विशेषताएं

1. **अनुयायी**–नेतृत्व की प्रमुख विशेषता नेता के कुछ न कुछ अनुयायियों का होना है। अन्य शब्दों में अनुयायियों के बिना कोई नेता नहीं हो सकता इसलिए यह ठीक ही कहा गया है कि अनुयायियों के अभाव में नेता एवं उसके नेतृत्व की कल्पना तक नहीं की जा सकती। नेतृत्व की विशेषताएं निम्न दो बातों पर बल देते हैं

    1. नेता को अपने अनुयायियों से स्वाभाविक आज्ञा पालन प्राप्त होना चाहिए।
    2. नेता नेतृत्व अनुयायियों को स्वीकर होना चाहिए।

2. **क्रियाशील सम्बन्ध**–नेता और उसके अनुयायियों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध निष्क्रिय न होकर कुछ निश्चित क्रियाओं के आधार पर होते हैं अन्य शब्दों में और अनुयायियों के पारस्परिक सम्बंध निष्क्रिय न होकर

क्रियाशील होते हैं। नेता अपने अनुयायियों को कार्य करने के लिए दिशा प्रदान करता है और उन्हें इनका अनुसरण करके लिए प्रेरित करता है नेता स्वयं भी अपने अनुयायियों के साथ क्रियाएं करता है। और उनका सहयोग प्राप्त करता है।

3. **सामान्य लक्ष्य**—नेतृत्व की यह प्रकृति है कि नेता संस्था के सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपने अनुयायियों के प्रयासो को निर्देशित करता है नेता अपने अनुयायियों को निर्धारित लक्ष्यों की जानकारी देता है उन्हें लक्ष्यों को स्पष्टता परिभाषित करता है और उनकी लक्ष्यों की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं को दूर करने का प्रयत्न करता है।
4. **आदर्श आचरण**—एक नेता अपने आदर्श आचरण के द्वारा ही अधीनस्थों के सामने कुशल नेतृत्व प्रदान कर सकता है। यानि नेता को केवल भाषण देने वाला ही न होकर स्वयं संस्था के प्रति वफादार होना चाहिए।
5. **हितों की एकता**—नेता और उसके अनुयायियों के मध्य हितों कि एकता होनी चाहिए किसी संगठन में नेतृत्व का कोई प्रभाव नहीं चाहता यदि नेता और उसके अनुयायी अलग—अलग उद्देश्यों के लिए प्रयास करें किसी संगठन में प्रभावी नेतृत्व उसी समय कहा जा सकता है जबकि नेता और अनुयायी एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करें। इस सम्बध में जार्ज आर टेरी ने ठीक ही कहा है कि नेतृत्व पारस्परिक उद्देश्यों की पूर्ति हेत व्यक्तियों को स्वेच्छिक प्रयत्न करा प्रभावित करने की प्रक्रिया है।

   यह उल्लेखनीय है कि नेता और उसके अनुयायी या अनुयायियों में ही आपस में पूर्णयता हितों की एकता की आशा करना ठीक नहीं है लेकिन नेता में आपसी मतभेदों का दूर कर संगठन के लक्ष्यों और कर्मचारियों के लक्ष्यों में एकता स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए उसे अनयायियों का स्पष्ट कर देना चाहिए कि संस्था के हितों की रक्षा करना ही सभी के हितों की रक्षा करना है।
6. **व्यक्तिगत योग्यता** – नेतृत्व किसी व्यक्ति विशेष की अपनी योग्यता अथवा गुण पर आधारित होता हैं। उदाहरण के लिए, एक प्रबन्धक में नेतृत्व के जितने अधिक गुण होंगे, वह उतना ही सफल नेता बन सकेगा। किसी व्यक्ति विशेष की नेतृत्व संबंधी क्षमता के बारे में विभिन्न विद्वानों के अलग—अलग मत हैं एक मत के अनुसार यह योगदान जन्म जात होती है। दूसरे मत के अनुसाय यह योग्यता प्राप्त की जा सकती है तथा तीसरे मत के अनुसार नेता जन्मते भी है और बनाए भी जाते हैं।
7. **प्रभावीकरण प्रक्रिया**—नेतृत्व एक प्रभावीकरण प्रक्रिया के रूप में होता है। यहां प्रभावीकरण का अर्थ दूसरे को अपने प्रभाव में लेने से है। नेतृत्व के अतर्गत नेता अपने अनुयायियों के साथ इस तरह का व्यवहार करता है कि वे स्वयं ही उसक प्रभाव में आ जाते हैं और जैसा वह चाहता है वे वैसा ही कार्य करने लगते हैं।
8. **अनावश्यक दबाव की आवश्यकता नहीं**—नेतृत्व का एक लक्षण यह भी है इसके अंतर्गत किसी प्रकार क दबाव का आवश्यकता नहीं होती, बल्कि प्रबन्धक अपने व्यवहार द्वारा कर्मचारियों पर ऐसा प्रभाव छोडता है कि वे स्वेच्छा स हा कार्य करने लगते हैं। कर्मचारियों को किसी बात से डरा कर कार्य करवाना नेतृत्व के अंतर्गत नहीं आता।
9. **पूरी क्षमता का प्रयोग**—जैसा कि स्पष्ट है कि सामान्यतः मनुष्य अपनी परी क्षमता का प्रयोग नहीं करता। पूरा क्षमता का प्रयोग करवाने के लिए उसे उत्साहित करने की आवश्यकता होती है जो कि नेतृत्व द्वारा नहीं सम्भव है । अतः नतृत्व की यह विशेषता है कि उसके लिए अनुयायी अपनी पूरी क्षमता से कार्य करने लगते हैं।

नेतृत्व का महत्व

1. **सामूहिक क्रियाओं का संचालन करने हेतु**—नेतृत्व की आवश्यकता एवं महत्व के पक्ष में सबसे प्रबल तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि जहां भी निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति एक के अधिक व्यक्तियों द्वारा की जाएगी वहां नेतृत्व की आवश्यकता होगी। लक्ष्यों की पूर्ति हेतु की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं के एक सूत्र में पिरोने का कार्य नेता ही करता है। यदि नेता द्वारा समूह की क्रियाओं का संचालन न किया जाये तो समूह अव्यवस्थित

हो जाता है। अव्यवस्थित समूह के सदस्यों द्वारा की गई क्रियाएं सामूहिक उद्देश्यों की पूर्ति में सफल सिद्ध नहीं होती अतः सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सामूहिक क्रियाओं के कुलश संचालन हेतु नेतृत्व का अत्यन्त महत्व है।

2. **समन्वय की भावना का विकास करने हेतु**–संगठन में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सदस्यों की क्रियाओं में समन्वय होना अति आवश्यक है। कुशल नेता संगठन के सदस्यों में समन्वय की भावना की भावना का विकास करता है और उनकी क्रियाओं को समन्वित करने के लिए आवश्यक निर्देशन प्रदान करता है नेतृत्व विद्युत शक्ति के प्रवाह के समान है। जिस प्रकार विद्युत शक्ति के प्रवाह से यन्त्र को शक्ति प्राप्त होती है। ठीक उसी प्रकार अनुयायियों को नेतृत्व प्राप्त होने से उनमें समन्वय की भावना विकसित होती है।

3. **कार्य हेतु अभिप्रेरित करने के लिए**–नेतृत्व को कर्मचारी अभिप्रेरण का एक स्त्रोत माना गया है। यह वह प्रेरक शक्ति है जो संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समूह के सभी सदस्यों को प्रेरणा प्रदान करती है। कुशल नेतृत्व जहां एक ओर कर्मचारियों को अभिप्रेरित करता है वहां दूसरी ओर मानवीय सम्बन्धों का विकास भी करता है। अनुयायी अपने नेता के मार्ग दर्शन से अपनी छिपी हुई योग्यता का प्रदर्शन करते हैं और स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते हैं। इस प्रकार नेतत्व गति के व्यक्तिगत गुणों को उभारता है और उन्हें अधिक कार्य करने हेतु अभिप्रेरित करता है।

4. **सहयोग प्राप्त करने हेतु**–यह ठीक ही कहा है कि सहयोग प्राप्त करने की आधारशिला भी नेतृत्व ही है। संस्था की निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों का हार्दिक सहयोग अति आवश्यक है। इसके आभाव में का मनमटाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और वे छोटी–छोटी बातो पर लड़ने लग जाते हैं। फलतः औद्योगिक फैलने लग जाती है। कुशल नेता ही विभिन्न साधनों के माध्यम से अपने सहयोगियों एवं अनयागिनों का कर सकता है। एक नेता अपने मंत्री पूर्ण व्यवहार, प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था, काये की मान्यता. शिकायतों पर और आदर्श आचरण द्वारा अधीनस्थों का हार्दिक एवं स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करने में सफल होता है।

5. **प्रबन्धक को सामाजिक प्रक्रिया के परिवर्तित करने हेतु**–कुशल नेतृत्व के द्वारा प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में परिवर्तित हो जाता है। प्रबन्ध वास्तव में अन्य व्यक्तियों के साथ मिल कर कार्य करने और कराने अतः एक कुशल नेता ही एक कशल प्रबन्धक हो सकता है। प्रबन्धक अपने मार्ग दर्शन और सहयोग को निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की और अग्रसर करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर पर भी नेतत्व की होती है। कुशल नेतृत्व से जब कर्मचारी अपने व्यक्तिगत हितों का बलिदान करके संस्था के हितों की रक्षा करने को तत्पर हो जाते हैं तो प्रबन्धक भी कर्मचारियों को आवश्यक सुविधाएं प्रदान करने के लिए सहर्ष तैयार हो जाते

6. **अधिकारी वर्ग को सुविधा प्रदान करने हेतु**–उपर्युक्त विवेचन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि नेतृत्व की , अचल कर्मचारी वर्ग को ही होती है अधिकारी वर्ग को भी आवश्यक सुविधाए प्रदान करने के लिए नेता होती है। नेतृत्व अधिकारी वर्ग को विभिन्न सुविधाएं प्रदान करता है। जिससे संस्था का कार्य बिना किसी बाधा गति से चलता रहता है। नेता में कुशल संचालन के सभी गुण होने के कारण अनुयायियों में परिश्रम करने के जागृत हो जाती है जिससे संस्था के कार्य संचालन में कोई बाधा नहीं आती। इस प्रकार नेतृत्व कार्य संचा वाली बाधाओं को दूर करके अधिकारी वर्ग को सुविधा प्रदान करता है।

7. **व्यवसाय की सफलता हेतु**–इसमें कोई सन्देह नहीं कि नेतृत्व की किस्म ही सामान्यतः एक व्यवसायिक उपक्रम और असफलता को निश्चित करता है। पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार व्यावसायिक नेता किसी व्यावसायिक रा आधारभूत और दुर्लभ प्रसाधन है। अनेक व्यावसायिक उपक्रमों की असफलता का मुख्य प्रभाव नेतृत्व ही है इसी ग्लोवर ने भी अनेक व्यावसायिक प्रतिष्ठानों की असफलता का मुख्य कारण अकुशल

नेतृत्व ही माना हैं अतः यह स्पा है कि व्यवसाय की सफलता के लिए कुशल नेतृत्व की अति आवश्यकता है।

8. **व्यक्तित्व के विकास हेतु**—संगठन में सेवारत व्यक्तियों के लिए व्यक्तित्व को विकास में कुशल नेतृत्व का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। कुशल नेता अपने अनुयायियों के नेतृत्व के विकास में पर्याप्त सहयोग प्रदान करता है और उनमें नेतृत्व सम्बन्धी गुण विकसित करता है अतः पीटर एफ. ड्रकर का मानना है कि, नेतृत्व व्यक्ति की दृष्टि को व्यापक एवं ऊर्ध्वगामी बनाता पास है, कार्य उत्पादन को उच्चता प्रदान करता है और अपरिमित क्षमता वाले व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

नेतृत्व की विचारधाराएँ

प्रत्येक संगठन में नेतृत्व की आवश्यकता एवं महत्व को प्रारम्भ से ही स्वीकार किये जाने के कारण नेतृत्व की अलग—अलग विचारधाराओं का विकास हुआ है इन विचारधाराओं को कुछ विद्वानों ने प्राचीन एवं आधुनिक दो तरह की विचारधाराओं में विभक्त किया है। इन विद्वानों के अनुसार नेतृत्व की वह विचारधारा जो यह मानकर चलती है कि नेता जन्म लेते है तैयार नहीं किए जाते है। प्राचीन विचारधारा है इसके विपरीत जो विद्वान यह मानकर चलते हैं कि नेता जन्म भी लेते हैं और तैयार भी किये जाते हैं। आधुनिक विचारधारा है अब हम नेतृत्व की प्रमुख विचारधाराओं का अध्ययन करेगें।

गुण—मूलक विचारधारा—

आर्डवे टीड और चेस्टर आई. बर्नार्ड—इस विचारधारा के प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं। नेतृत्व की यह परम्परागत विचारधारा सन् 1940 तक अपना विशेष महत्व रखती थी। इस विचारधारा कि यह मान्यता है कि वह व्यक्ति हा एक सफल नेता हो सकता है जिसमें नेतृत्व सम्बन्धी कुछ विशिष्ट गुण होते हैं। इन गुणों में शारीरिक, और मनोबल सम्बन्धी गणों को सम्मिलित किया जाता है। आर्डवे टीड के मतानुसार वही व्यक्ति एक कुशल नेता हो सकता है जिसमें निम्नालामा गुण पाये जाते हैं

1. शारीरिक शक्ति
2. उद्देश्य के प्रति निष्ठा
3. अपूर्व साहस एवं लगन
4. व्यक्तित्व
5. स्नेह एवं मैत्रीपूर्ण व्यवहार
6. तकनीकी क्षमता
7. शीघ्र निर्णय
8. सिखाने की क्षमता, और
9. योग्यता
10. विश्वास

इस विचारधारा का यह भी मानना है कि उपयुक्त सभी गण व्यक्ति में जन्म से होते हैं उन्हें उपार्जित नहीं किया जा सकता इस प्रकार यह विचारधारा यह मानकर चलती है कि, नेता जन्म लेते हैं बनाए नहीं जाते नेतत्व की यह विचारधारा काफी लम्बे तक (1940) सभी प्रबन्धकों और विशेषज्ञों द्वारा स्वीकार की जाती रही है। इस विचारधारा को एक लम्बे समय तक अधिकार करते रहने का मख्य कारण यह रहा कि अध्ययनकर्ताओं और विद्वानों ने निगमन प्रणाली को अपना कर कुछ समय के जीवन का अध्ययन करके उनके प्रमुख गुणों का पता लगाया और उन्हीं गणों को नेतृत्व के लिए आवश्यकता'' में प्रस्तुत किया। यह विचारधारा आज भी अपना महत्व बनाए हए है

क्योंकि यह एक नेता में जिन गुणी का हा होता है उन्हें पूर्णतया स्पष्ट करती है। इस विचार धारा का वर्तमान पर्याप्त महत्व है।

नेतृत्व शैलियाँ

शैली का आशय उस तरीके से है जिससे कि नेता अपने अनयायियों को प्रभावित करता है। यह नेता के काया क कुल ग्राम को जो कि कर्मचारियों द्वारा महसूस किया जाता है, को स्पष्ट करता है। यह उनके दर्शव, चातुर्थ एवं प्रवृति का प्राताना करती है। सामान्यतया एक नेता अनुभव, शिक्षण एवं प्रशिक्षण से अपनी शैली को जन्म देते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार नेता के नैतिक मूल्य, अनुयायियों में विश्वास, नेतृत्व के प्रति जागरूकता सुरक्षा तथा स्थिति नेता की शैली को प्रभावित करते है। 30 विद्वानों के अनुसार नेतृत्व कार्य–परक या सम्बन्ध परक हो सकता है तो कुछ के अनुसार यह सकारात्मक एक नकारात्मक हा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि नेतृत्व के विभिन्न सिद्धान्तों से ही नेतृत्व की शैलियों को जन्म मिला।

अग्रलिखित पंक्तियों में नेतृत्व की कुछ प्रमुख शैलियों का जिक्र किया गया है।

सकारात्मक एवं नकारात्मक नेतृत्व

नेता अपने अनुयायियों को लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित करने के लिए यदि आर्थिक एवं अनार्थिक पुरस्कारों को काम में लेता है तो इसे सकारात्मक नेता कहा जायेगा। इस शैली के अन्तर्गत नेता अपने अनुयायियों को अधिक वेतन, भत्ते एवं सुविधायें प्रदान करता है, कर्मचारियों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की समुचित सुविधा देता है, निर्णयन में सहभागिता प्रदान करता है एवं उन्हें स्वतन्त्रता एवं स्वायतता प्रदान करता है तो कहा जायेगा कि नेता ने अनुयायियों को प्रभावित करने के लिए सकारात्मक शैली को काम लिया है।

इसके विपरीत यदि नेता भय एवं दण्ड पर अधिक भरोसा करता है तो माना जायेगा उसके द्वारा नकारात्मक शैली का उपयोग किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत नेता अपने अनुयायियों को नौकारी से हटाने, सुविधाओं को वापिस लेने, स्थानान्तरण करने, पदावनत करने, अधिकारों में कमी करने आदि का भय दिखाकर उन्हें प्रभावित करने का प्रयास करता है। इसमें नेता बॉस के रूप में अधिक काम करता है और नेता के रूप में कम।

आधुनिक युग में विद्वानों द्वारा सकारात्मक नेतृत्व शैली को ही स्वीकार किया गया है, यद्यपि कुछ परिस्थितियों में नकारात्मक शैली भी प्रभावी सिद्ध हो सकती है क्योंकि नकारात्मक नेतृत्व शैली में मानवीयता का अभाव है एवं निम्न कार्य सन्तुष्टि पायी जाती है, इसलिए सकारात्मक शैली को इस पर प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

कार्य विवरणात्मक एवं रूपान्तरात्मक नेतृत्व

कार्य विवरणात्मक नेतृत्व वस्तुओं के जैसा है और उसी अवस्था में प्रबन्ध करने से सम्बन्धित है। इस शैली में नेता व्यक्तियों की अपेक्षा वस्तुओं को अधिक महत्व प्रदान करता है और परिवर्तन में विश्वास नहीं करता। कार्य विवरणात्मक नेतत्व शैली की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. यह व्यक्तियों के विकास के स्थान की बजाय वस्तुओं के प्रबन्ध पर अधिक बल प्रदान करती है।
2. यह सुरक्षात्मक या प्रतिक्रियात्मक नेतृत्व शैली है।
3. यह व्यक्तियों को संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के साधन के रूप मे काम लेती है तथा
4. इन नेताओं में सूजनता का अभाव पाया जाता है।

इसके विपरीत रूपान्तरात्मक नेतत्त्व वह शैली है जिसमें परिवर्तन, नवप्रवर्तन एवं साहसिकता को महत्व प्रदान किया जाता है। यह काफी दूरदर्शी शैली है जिसकी सहायता से परिवर्तनशील एवं प्रतिस्पधी वातावरण के

अनुकूल संगठन को बनाया जा सकता है। यह व्यक्तियों में प्रतिबद्धता पैदा करती है एवं व्यक्तियों के विकास पर बल प्रदान करती है। रूपानतरात्मक नेता । एम टिची ने अग्र विशेषताएँ स्पष्ट की है:

1. ये नेता अपने आपको परिवर्तन प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करते है।

2.. ये साहसी व्यक्ति होते हैं।

3. ये व्यक्तियों के विकास में विश्वास करते हैं।

4.. ये नैतिक मूल्यों को बहुत महत्व देते हैं।

5. ये जीवनभर सीख प्राप्त करते रहते हैं।

6. इनमें जटिलता, संदिग्धता एवं अनिश्चितता पर विजय प्राप्त करने की योग्यता पायी जाती है तथा

7. ये स्वप्नदृष्टा व्यक्ति होते है तथा इनमें व्यक्तियों को प्रभावित करने की क्षमता होती है।

आधुनिक युग के विद्वानों की मान्यता है कि आगे आने वाले समय में रूपान्तरात्मक नेतृत्व की लोग अधिक आवश्यकता महसम करेंगे क्योंकि इसमें रूपान्तर क्षमता पाई जाती है।

कार्यपरक एवं सम्बन्ध–परक नेतृत्व

कार्यपरक नेतृत्व शैली वह है जिसमें नेता परिणाम प्राप्त करने में विश्वास करता है। उनके अनुसार व्यक्तियों को व्यस्त रख तथा उनसे अधिक कार्य करने की अपील करके अनुकूल परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। इसमें मानव को मशीन से अधिक नहीं माना जाता है। यह उत्पादक–परक विचार है एवं इसमें मानवीयता को अधिक महत्व प्रदान नहीं किया गया है। कार्यनेतृत्व शैली वह है जिसमें नेता समूह को कार्य प्रदान करता है, उनके द्वारा काम में ली जाने वाली प्रक्रिया को समझाता है और निर्धारित समय में कार्य को पूरा कराने पर ध्यान देता है। ऐसे नेता का व्यवहार तानाशाही, कठोर, दिशात्मक एवं मानवीयता से परे होता है।

कार्य–परक नेतृत्व शैली प्रत्येक परिस्थिति में अच्छी नहीं मानी जाती है। यदि नेता का व्यवहार तानाशाही का है तो वह सन्तुष्टि, सम्बद्धता एवं सहयोग में कमी लायेगा।

सम्बन्ध–परक नेतृत्व शैली वह है जिसमें नेता कर्मचारियों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि को सर्वाधिक महत्व प्रदान करता है। ऐसा नेता टीम भावना पैदा करने, मनोवैज्ञानिक समर्थन प्रदान करने, कर्मचारियों की समस्याओं के समाधान में सहायता करने आदि के कार्य करता है। वह पारस्परिक सम्बन्धों के निर्माण को बल प्रदान करता है और अनौपचारिक समूहों की विद्यमानता के महत्व को स्वीकार करना है। इसमें नेता का व्यवहार प्रजांत्रीय, सहभागिता वाला, अधीनस्थ परक एवं मानवीयता से ओत–प्रोत होता है।

शोधों से यह बात पुष्ट होती है कि सम्बन्ध–परक शैली उत्पादकता से संगतता तो नहीं रखती लेकिन यह कर्मचारियों की सन्तुष्टि एवं समूह सम्बद्धता में अवश्य वृद्धि करती है।

सामान्यतया यह स्वीकार किया जाता है उपर्युक्त दोनों में से कोई भी एक शैली नेता को सफल नहीं बना सकेगी। सफल नेता वह होगा जो दोनों शैलियों का संयोजित स्वरूप काम में लेगा यद्यपि उसमें वह सम्बन्ध–परक नेतृत्व शैली को कार्य–परक नसत्व शैली पर प्राथमिकता दे सकता है।

तानाशाही, सहभागी एवं लगाम रहित नेता

नेता द्वारा उपभोग की गई सता के आधार पर नेतृत्व शैली तानाशाही, सहभागी एवं लगाम रहित हो सकती है।

1. **तानाशाही**–नेता वह है जो समस्त निर्णयन सत्ता को अपने में केन्द्रित करता है और वह अनुयायियों द्वारा आदेशों की पूर्ण पालना करने की अपेक्षा करता है। इसमें नेता अपनी बात अनुयायी को बताता है लेकिन उसकी नहीं सुनता। हमेशा अपने को ही सही सही मानता है। आदेशों की पालन न करने वाले व्यक्तियों को दण्ड देने की व्यवस्था है। शैली की मुख्य विशेषता है।

   तानाशाही नेतत्व से नेता को आत्म–सन्तुष्टि प्राप्त होती है। इसमें शीघ निर्णय लिये जा सकते हैं एवं कठोर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकेगा यह अनुयायियों को सुरक्षा प्रदान करती है एवं कम योग्य व्यक्तियों की सहायता से लक्ष्यों का प्ति को सम्भव बनाती है। कर्मचारी इस शैली को पसन्द नहीं करते। इसमें कर्मचारियों को न तो सहभागिता मिलती और न ही उनकी योग्यता का सम्मान किया जाता है। इससे कर्मचारियों में भय उत्पन्न होता है और उनकी पहलपन की शक्ति नष्ट होती है।

2. **सहभागी नेता**–अधिकार के विकेन्द्रीयकरण में विश्वास रखता है और संस्था का संचालन प्रजातन्त्र के मान्य सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है। इसमें नेता एवं अनुयायी मिलकर निर्णय लेते हैं। यह नेता अपने कर्मचारियों को महत्वपूर्ण मानता है एवं उनकी योग्यताओं पर भरोसा करता है। इसमें कर्मचारियों को सक्रिय रूप से भागीदार बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

   नेतृत्व की यह शैली बहुत लोकप्रिय है। इसमें नेता एवं अनयायी के मध्य मानसिक एवं भावनात्मक सहभागिता पाई जाता है। इससे कर्मचारियों की सन्तुष्टि के स्तर में वृद्धि होती है तथा सदढ निर्णय लिया जाना सम्भव होता है, कुछ लोगा की मान्यता है कि नेतृत्व की यह शैली आवश्यक कार्यो के लिए उपयक्त नहीं मानी जाती है तथा इसे खर्चीली विधि भा माना जाता है।

3. **लगाम रहित नेता–य**ह वह नेता है जो अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों से बचने का प्रयास करता है। इस नेतृत्व शैली में नेता नाम–मात्र का होता है तथा उसकी भूमिका भी नगण्य होती है। अधीनस्थ स्वयं लक्ष्य निर्धारित करते हैं, प्रशिक्षित होते हैं एवं उत्प्रेरित होते हैं। इससे अधीनस्थों के उच्च स्तर की स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। नेता सामान्यतया अधीनस्थों के कार्यों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता है।

   इस नेतृत्व शैली का बहुत अधिक उपयोग नहीं किया जाता है क्योंकि इसमें नेता के योगदान की उपेक्षा की जाती है। उपर्युक्त नेतत्व शैलियों में से कौन सी नेतृत्व शैली उपयोगी होगी यह समय एवं परिस्थितियों की मांग पर निर्भर करता है। एक स्थिति में वह तानाशाह हो सकता है तो दूसरी में सहभागी।

लिकर्ट की प्रबन्ध प्रणाली

मिशीगन अध्ययनों को आधार बनाकर रैन्सिस लिकर्ट ने प्रबन्ध के प्रतिरूपों को जानने के लिए गहन अनुसंधान किये। इनके आधार पर इन्होंने नेतृत्व के व्यवहार को समझने के लिए कुछ विचार विकसित किये। उनके अनुसार प्रभावशाली प्रबन्ध कर्मचारी–प्रधान होते हैं तथा अन्य कृत्य–प्रधान होते हैं। अपने इस शोधकार्य की अवधारणाओं के स्पष्टीकरण हेतु लिकर्ट ने प्रबन्ध की चाट प्रणालियों को स्पष्ट किया, जिन्हें नेतृत्व शैलियों के नाम जाना जाता है। ये निम्नलिखित हैं–

प्रणाली–1. शोषणात्मक–अधिकारिक

प्रणाली–2. उदार–आधिकारिक

प्रणाली–3. परामर्शात्मक

प्रणाली–4. सहभागितापूर्ण

इन प्रणालियों को निम्न तालिका की सहायता से समझा जा सकता है।

प्रणाली	नेतृत्व शैली	नेतृत्व प्रक्रियाएं	उत्प्रेरक शक्ति	पारस्परिक क्रय की सीमा
1	2	3	4	5
प्रणाली 1	शोषणात्मक आधिकारिक	तानाशाही प्रकृति अधीनस्थों में निर्णयन का उच्च स्तर पर केन्द्रीयकरण, कर्मचारियों को सहभागिता नहीं औपचारिक सम्प्रेषण तथा अधीनस्थों को स्वायत्ता नहीं।	अधीनस्थों को भय, धमकियों एवं दण्ड के आधार पर कार्य करने के लिए मजबूर करना, कभी–कभी पुरस्कार प्रदान करना, शारीरिक एवं सुरक्षा की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना।	उच्च अधिकारियों एवं अधीनस्थों के मध्य भय एवं अविश्वास के वातावरण में सीमित विचारों का आदान प्रदान होना।
प्रणाली 2	उदार आधिकारिक	मलिक एवं नौकर के सम्बन्ध में विश्वास, पैतृकवादी, प्रवृत्ति सीमित, उर्ध्वगामी सम्प्रेषण, सीमित अधिकारों का प्रत्योयोजन कठोर नियन्त्रण।	पुरस्कार एवं कुछ भय तथा दण्ड काम में लेना।	बहुत कम विचारों को आदान–प्रदान करना अर्थात् कभी–कभी कार्य सम्बन्धी समस्याओं के हल के लिए विचार जानना।
प्रणाली 3	परामर्शात्मक	अधीनस्थों में बहुत विश्वास लेकिन पूर्ण विश्वास का अभाव, निर्णयों पर नियन्त्रण बनाये रखने की इच्छा की विद्यमानता, खुला सम्प्रेषण, सीमित सहभागिता, अधिकारों का प्रत्यायोजन करना तथा अनौपचारिक संगठन का जन्म।	पुरस्कार तथा कभी–कभी दण्ड का उपयोग करना।	अधीनस्थों में विश्वास रखते हुये उचित पारस्परिक विचारों का क्रिया–प्रदान करना।
प्रणाली 4	सहभागिता पूर्ण	अधीनस्थों में पूर्ण विश्वास एवं आस्था, मित्रतापूर्ण व्यवहार मानवता से ओत–प्रोत, सक्रिय एवं निर्णयात्मक सहभागिता प्रदान करना, अनौपचारिक सम्बन्धों को महत्व प्रदान करना, मानवीय सम्बन्धों को महत्व प्रदान करना।	आर्थिक पुरस्कार प्रदान करना तथा संयुक्त रूप से इसके लिए प्रणाली का निर्धारण करना, प्रगति एवं उपलब्धि के अवसर प्रदान करना, प्रगति का निरन्तर मूल्यांकन करना, सहभागिता को बढ़ाना।	गहन एवं मैत्रीपूर्ण पारस्परिक लिया करना तथा अधीनस्थों पर पूरा भरोसा करना।

इस तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि प्रणाली–1 को कार्य–परक शैली कहा जा सकता है तथा प्रणाली–4 को सम्बन्ध–परक शैली का नाम दिया जा सकता है। शेष दो शैली इनके मध्य की स्थिति को स्पष्ट करती हैं।

यद्यपि लिकर्ट की इन प्रणालियों को विद्वानों का काफी समर्थन मिला है और प्रबन्धकों को प्रबन्ध के दर्शन को समझने में मदद मिली है तथापि निम्न आधारों पर इसकी आलोचना की गई है–

1. लिकर्ट की यह मान्यता कि जो प्रबन्ध प्रणाली–4 को अपनायेगा वह नेता के रूप में बहुत सफल होगा, प्रत्येक परिस्थितिमें खरी नहीं उतरती।
2. इन विचारधाराओं में स्थियात्मक घटकों एवं उनके प्रभावों की उपेक्षा की गई हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि नेताकी सफलता परिस्थितियों की मांग के अनुसार अपने आप को बनाने पर निर्भर करती है।
3. लिकर्ट के विचार क्योंकि एक छोटे समूह से सम्बन्धित थे, अतः सम्पूर्ण संगठन पर इनकी क्रियाशीलता संदिग्ध लगती है।
4. इन विचारों में वैज्ञानिक वैधता का भी अभाव पाया जाता है।

सन्देशवाहन

सन्देशवाहन (सम्प्रेषण) का अर्थ

आधुनिक युग तकनीकी यग है जहां एक ओर भीमकाय उत्पादन सम्भव हुआ वहां दूसरी ओर प्रत्येक उद्योग में कर व्याक्तयों की संख्या में भी पर्याप्त वद्धि है अतः संस्था में सभी व्यक्तियों का एक सूत्र में पिरोने के लिए सन्देशवाहन व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है।

सन्देशवाहन का अर्थ दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य तथ्यों, विचारों, अनुमानों या संवेगों के पारस्परिक आदान–प्रदान से है वर्तमान समय में तार, टलीफोन, टेलीविजन तथा रेडियों आदि ने विचारों के सन्देश वाहन को अधिक सुलभ बना दिया स्वयं सन्देशवाहन नहीं है। **सन्देशवाहन की परिभाषाएँ**

सन्देशवाहन एक व्यापक शब्द होने के कारण ही विभिन्न विद्वान इसके अर्थ के सम्बन्ध में एक मत नहीं है अतः इसके अक्षर की ठीक ढंग से समझने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को अध्ययन करना आवश्यक है। सन्देशवाहन की विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं अग्र हैंः

1. **कीथ डेविस** के अनुसार, "सन्देशवाहन प्रक्रिया वह है जिसमें सन्देश और समझ को एक से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है।''
2. **न्यूमैन तथा समर** के अनुसार, "सन्देशवाहन दो या दो से अधिक व्यक्तिगत के मध्य तथ्यों, विचारों, समितियों अथवा भावनाओं का विनियम है।''
3. **मेयर** के अनुसार, "सन्देशवाहन से आशय एक व्यक्ति के विचारों और समितियां से दूसरे व्यक्ति को अवगत कराने से है।''

सन्देशवाहन की विशेषताएं

विभिन्न परिभाषा का अध्ययन करने से सन्देशवाहन की निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं–

1. **दो या दो से अधिक व्यक्ति**–सन्देशवाहन की प्रथम महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें कम से कम दो व्यक्ति होने चाहिए क्योंकि कोई अकेला व्यक्ति स्वयं के साथ विचारों का आदान–प्रदान नहीं कर सकता। अपनी बात कहने के लिए एक सुनने वाले की भी जरूरत होती है अतः कम से कम दो व्यक्ति हों जिनमें से एक सूचना भेजने वाला व दूसरा सूचनाग्रहण करने वाला होता है।

2. **विचारों का विनियम**—विचारों के आदान—प्रदान के अभाव में सन्देशवाहन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सन्देशवाहन की प्रक्रिया का पूरा करने के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच विचारों, आदेशों, भावनाओं आदि का विनियम होना चाहिए।

3. **आपसी समझ**—आपसी समझ से अभिप्राय यह है कि सूचना भेजने वाले का अपनी बात कहने का जो भाव है उसी अर्थ में सूचना प्राप्त करने वाला उसे समझ ले सन्देशवाहन की प्रक्रिया के लिए सूचना प्राप्तकर्ता के लिए सूचना का पालन करना आवश्यक नहीं है मात्र समझ लेना ही पर्याप्त है।

4. **प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सन्देशवाहन**—सन्देशवाहन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि सूचना देने वाला व सूचना लेने आमने—सामने हो। सन्देशवाहन प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार का हो सकता है। प्रत्यक्ष सन्देशवाहन का आभा आमने—सामने वार्तालाप से है जबकि अप्रत्यक्ष सन्देश वाहन में सन्देश अन्य साधनों के माध्यम से भेजा जाता है।

5. **लगातार प्रक्रिया**—सन्देश वाहन लगातार या कभी समाप्त न होने वाली प्रक्रिया है। जैसे व्यवसाय में प्रबन्ध द्वारा अधीनस्थों को कार्य सौंपना, कार्य की प्रगति जानना व दिशा निर्देश देना आदि क्रियाएं लगातार करनी पड़ता है।

6. **शब्दों व संकेतो का प्रयोग**—सूचनाओं के विनियम के लिए अनेक साधन हो सकते हैं जैसे लिखित, मौखिक तथा सांकेतिक उम सन्देश वाहन के उदाहरण है स्कूल या कालेज में छुटटी की घंटी बजाना. गर्दन हिलाकर कोई बात कहना, आखे दिखाना, क्रिकेट में हाथ की अंगुली उठाकर बल्लेबाज के आऊट होने का आदि।

7. **चक्रिय प्रक्रिया के रूप में**—सन्देश वाहन एक चक्रिय प्रक्रिया के रूप में होता है। प्रत्येक सन्देश पर प्रतिक्रिया होता है पुनः एक नए सन्देश का जन्म देती है और यह क्रम चलता है सन्देश वाहन का चक्रिय प्रारूप निम्न चित्र स्पष्ट करता ।

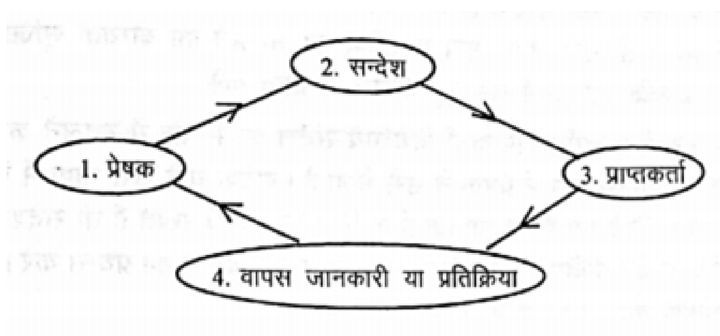

8. **सहयोग का आधार**— सन्देशवाहन व्यवसायिक संगठन के कार्य करने वाले विभिन्न लोगों के मध्य सहयोग की भावना का जन्म देता है इसके द्वारा सभी व्यक्ति अपने विचार एक दूसरे के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं।

सम्प्रेषण प्रक्रिया

सम्प्रेषण की प्रक्रिया प्रेषक, संदेश एवं प्राप्तकर्ता के संयोजन से बनी है। इसे चित्र संख्या निम्न के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

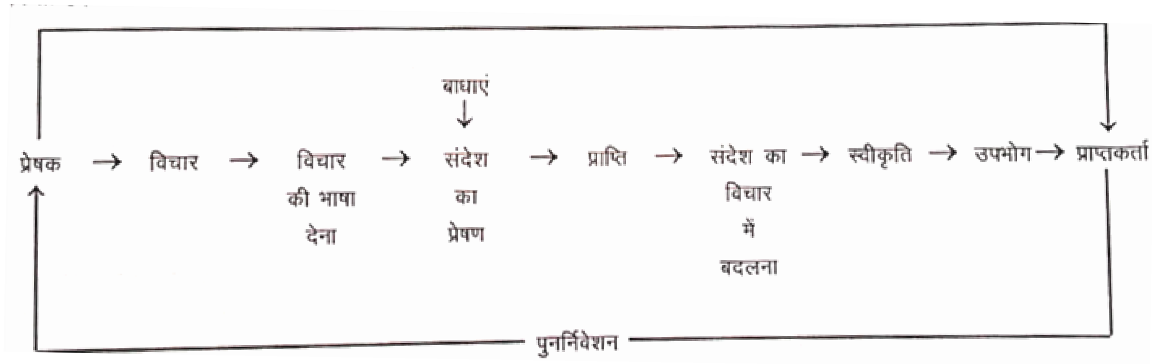

उपर्युक्त चित्र से जो चरण प्रतिबिम्बिता होते हैं, उनका समायोजन ही सम्प्रेषण प्रक्रिया कहलाता है। इनका संक्षिप्त विवेचन निम्न प्रकार है–

1. **विचार–**सम्प्रेषण की प्रक्रिया का प्रारम्भ प्रेषक द्वारा प्रेषित किये जाने वाले संदेश के सन्दर्भ में विचार विकासित करनेसे है। यह सम्प्रेषण प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम है और यह इस बात पर बल देता है कि मुँह खोलने से पहले यह सुनिश्चित करना होगा की आपका मस्तिष्क पूरी तरह से सतर्क है एवं काम कर रहा है।
2. **विचार को भाषा देना–**भेजे जाने वाले संदेश के निश्चय कर लिये जाने के बाद विचार को संदेशबद्ध करने का चरण आता है। विचार को समूचित शब्दों, चित्रों, चिन्हों, तालिकाओं में बदलना ही विचार को भाषा देना या संदेशबद्धता कहलाता है। संदेश ऐसा हो जिसमें नयापन हो, वह महत्वपूर्ण हो एवं वह प्रभावी हो। इसके लिए संदेश स्पष्ट, अर्भपूर्ण, सरल एवं समझने योग्य, आकर्षक एवं पूर्णता वाला होना चाहिए। इसके लिए आधुनिक युग में कम्प्यूटर भाषा को भी काम में लिया जाता है। यह संदेशबद्धता ऐसी हो जिसमें संदिग्धता को स्थान नहीं मिलता हो।
3 **संदेश का प्रेषण**–संदेश के प्रेषण में प्रेषक को प्राप्तकर्ता से जोड़ने का कार्य किया जाता है। इसके लिए संदेश को प्रेषणकरने की विधि का निर्धारण करना होगा। यह विधि मौखिक विचार विमर्श, लिखित पत्र, टेलिफोन, टैलैक्स, दूत–भेजना, तार आदि में से कोई भी हो सकती है। अच्छे सम्प्रेषण के लिए आवश्यक है कि काम में लिया गया माध्यम संदेश एवं प्राप्तकर्ता के लिए उपयुक्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त संदेश के प्रेषण में प्रेषक को यह भी या सम्प्रेषण माध्यम बाधाओं से स्वतंत्र है।
4. **प्राप्ति**–संदेश के प्रेषण के बाद संदेश को प्राप्तकर्ता द्वारा प्राप्त करने का कदम आता है। इसके लिए प्राप्तकर्ता कोअपने आपको संदेश को प्राप्त करने के लिए तैयार करना होगा। यदि सम्प्रेषण मौखिक है तो प्राप्तकर्ता कोना होगा और यदि वह लिखित है तो उसे अपने आप में संदेश को समझने की योग्यता सजित करनी होगी। किसी भी संदेश का महत्व तब ही है जबकि प्राप्तकर्ता उसे पूर्ण निष्ठा से प्राप्त करे।
5. **संदेश को विचार में बदलना**–इसके अन्तर्गत प्राप्तकर्ता दिये गये संदेश को विचार में बदलने का कार्य करता है ताकि वह उसको उसी रूप में समझ सके जिस रूप में प्रेषक ने उसे भेजा है। संदेश यदि उस भाषा में है जिसे प्राप्तक जानता या उसमें ऐसे चिन्ह काम में लिये गए हैं जो प्राप्तकर्ता के लिए भिन्न अर्थ रखते हैं तो संदेश को विचार में काफी जटिल होगा। अतः प्राप्तकर्ता को चाहिए कि वह प्रेषक के साथ साम्य बिठाने का प्रयास करे। इसके अन्तर्गत को समझा जाता है। इसे सम्प्रेषण की आत्मा कहा जाता है।
6. **स्वीकृति**–जब संदेश को प्राप्त कर लिया जाता है और समझ लिया जाता है तो प्राप्तकर्ता को उसे स्वीकार या करने का अवसर मिलता है। संदेश भेजने वाला तो चाहेगा कि संदेश प्राप्तकर्ता संदेश को उसी रूप में स्वीकर को रूप में भेजा गया है लेकिन प्राप्तकर्ता चाहे तो पूर्ण संदेश को स्वीकार कर सकता है या पूर्ण संदेश को अस्वीकारसकता है या आंशिक संदेश को स्वीकार एवं आंशिक संदेश को अस्वीकर कर सकेगा।

7. **उपयोग**—इसका सम्बंध संदेश के उपयोग करने से है। वह संदेश पर उचित कार्यवाही करेगा अर्थात् सुरक्षित रख सकेगा या अन्यथा उपयोग कर सकेगा इसमें प्राप्तकर्ता का संदेश पर पूर्ण नियन्त्रण होता है।
8. **पुनर्निवेशन**—यह सम्प्रेषण प्रक्रिया का अंतिम चरण है जिसके माध्यम से सम्प्रेषण की प्रभावशीलता की जांच की जाती है। पुनर्निवेशन के माध्यम से प्रेषण को यह जानकारी प्राप्त हो सकेगी कि उसका संदेश सही रूप से समझा गया है या नहीं। यदि इससे यह पता लगे कि संदेश का पालन सही प्रकार से नहीं किया गया तो उचित सुधारात्मक कदम उठाये जा सकेगे। इसके अतिरिक्त पुनर्निवेशन की मदद से यह भी पता लग सकेगा कि सम्प्रेषण से अपेक्षित परिणाम प्राप्त हये या नहीं। इसलिये इस चरण को सम्प्रेषण से बहुत महत्व प्रदान किया जाता है।

सन्देश वाहन के प्रकार

एक संगठन में विभिन्न पदों पर कार्य कर रहे कर्मचारियों को सन्देशवाहन के द्वारा जोडने में अनेक मार्ग, अथवा श्रखलाएं होती हैं। इन सभी श्रंखलाओं के जोड को सन्देश वाहन का जाल या ताना बाना कहते हैं सन्देश वाहन के जाल में मुख्य दो प्रकार के सन्देशवाहन को सम्मिलित किया जाता है। औपचारिक व अनौपचारिक सन्देशवाहन संगठन में दोनों ही सन्देश वाहन की उपयोगिता है इन श्रृखलाओं को सन्देश वाहन के प्रकार भी कहा जाता है।

औपचारिक सन्देशवाहन

औपचारिक सन्देशवाहन का अभिप्राय विचारों व सूचनाओं के ऐसे विनियम से है जो संगठन ढांचे के अन्तर्गत होता है। अर्थात विचारों का ऐसा आदान–प्रदान जो निश्चित पथ से होकर गुजरता है यह सन्देश वाहन के प्रवाह का नियन्त्रण करने के लिए जानबझकर किया गया प्रयत्न होता है जिससे कि सूचनाएं बिना किसी रूकावट के कम लागत पर ठीक तरीके से, ठीक समय पर, वांछित स्थान पर पहुंचती हैं।

विशेषताएं

1. **लिखित व मौखिक**—औपचारिक सन्देश वाहन लिखित व मौखिक दोनों प्रकार होता है। दैनिक कार्यों को मौखिक सन्देशवाहन द्वारा निपटा लिया जाता है, जबकि नीति सम्बंधी कार्यों को लिखित रूप से किया जाता है।
2. **औपचारिक सम्बंध**—यह सन्देश वाहन उन कर्मचारियों के बीच में होता है जिसके सम्बन्ध द्वारा औपचारिक सम्बंध स्थापितकिए गए है।
3. **निश्चत पथ**—सन्देश को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक एक निर्धारित मार्ग पर करके जाना होता है।

लाभ

1. **अधिकारियो के पद की गरिमा कि सरक्षा**—औपचारिक सन्देश वाहन में अधिकारियों व अधीनस्थों का लगा बना रहने के कारण लाइन अधिकारियों के पद की गरिमा बनी रहती है। फलस्वरूप अधीनस्थों पर नियंत्रण करने व उत्तरदायित्व निर्धारण करने में सुविधा रहती है।

2. **स्पष्ट एवं प्रभावपूर्ण सन्देशवाहन**—औपचारिक सन्देशवाहन में प्रबन्धकों व अधीनस्थों के मध्य साधा सपना एक की योग्यता, आदतों. भावनाओं आदि को समझ जाते हैं प्रबन्धकों को पता रहता है कब व किन अधीनस्थों के मध्य सीधा सम्पर्क होता है। दोनों अधीनस्थो को सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है इस प्रकार यह सन्देशवाहन समय पर ही सूचना पर ही सूक्ष्म है अतः यह स्पष्ट और प्रभावपूर्ण होता है।

सीमायें

1. **कार्य का अधिक बोझ–**आधुनिक व्यवसायिक संगठन में अनेक सूचनाओं. संदेशों व अन्य बातों का सन्देश वाहन करना पड़ता है औपचारिक सन्देश वाहन से इसको एक निश्चित मार्ग पर भेजा जाता है। जिससे अधिकारिया का आप इस कार्य में व्यय हो जाता हो और उनके कुछ कार्य छूट जाते हैं।
2. **सूचनाओं का स्वरूप बदलना–**यह विधि सचना के प्रवाह में रूकावट भी बन सकती है। कई बार प्रेषक व प्राप्तकता के मध्य रास्ता इतना लम्बा होता है कि अनेक लोगों के हाथों से होकर जाना पडता है प्राप्तकतो तक पहुचत उसका स्वरूप ही बदल जाता है।
3. **अधिकारियों की लापरवाही–**अधिकारी अधीनस्थों के सझावों व शिकायतों पर अधिक ध्यान नहीं देते इसे नित्यक्रम के कार्य मानकर अनदेखा कर देते हैं। उनके मस्तिष्क में एक बातं बैठ जाती है कि ये सब प्रतिदिन के कार्य हैं यदि श्रमिक वर्ग की किसी बात को संचालकों तक पहुंचाया जाता है। तो अधिकारी अपने सझाव और जोड़ देते है जिससे वास्तविकताकी जानकारी नहीं मिल पाती।

औपचारिक सन्देशवाहन के प्रकार

1. नीचे की ओर सन्देश वाहन कहलाता है। संस्था में उच्च अधिकारियों का निर्णय लेते है और उनको लागू करने के बारे में आदेश व निर्देश देते है। इस संदेशवाहन में आदेश, नियम, सूचनाएं, नीतियां, निर्देश आदि को सम्मिलित किया जाता है। नीचे की ओर संदेशवाहन का मुख्य लाभ यह है कि इससे अधीनस्थों को समय पर उपयोगी सूचनाएं प्राप्त होती हैं, जिनसेउनके कार्यों में सुविधा रहती है।
2. ऊपर की ओर अथवा उर्ध्वमुखी संदेशवाहन–यह संदेशवाहन नीचे की ओर संदेशवाहन के बिल्कुल विपरीत है। इसकाप्रवाह अधीनस्थों के उच्च अधिकारों की ओर होता है इस सन्देशवाहन की विषय सामग्री में सुझाव, प्रतिक्रियाए, प्रतिवेदन, शिकायतें आदि आते हैं इस सन्देश वाहन में उच्च अधिकारियों का निर्णय लेने की सुविधा रहती है। अधीनस्थों की शिकायतों को दूर करके संस्था में स्वच्छ वातावरण तैयार किया जाता है। उनके सुझावों को लागू करके उसमें संस्था के प्रति लगाव की भावना पैदा करता है। अनेक सम्भावित खतरों के बारे में पूर्व सूचना मिल जाने पर उच्च अधिकारी सावधान हो जाते हैं। अतः संस्था के उद्देश्यों को आसानी से पूरा करने में ऊपर की ओर सन्देशवाहन का महत्वपूर्ण योगदान होता है। गट अधीनस्थ अधिकारी ठीक नहीं हैं तो ऊपर की तरफ सन्देशवाहन को गलत तरीके से भी प्रस्तुत किया जा सकता है। कोई भी अधीनस्थ इस तरह की सूचना नहीं देंगा, जिससे उसके हितों की हानि हो। दूसरी ओर वह अपने अधिकारीकी खुशी के लिए कई बार गलत सूचनायें भी दे सकता है।
3. समतल सन्देश वाहन–समतल सन्देशवाहन उस समय होता है जब एक ही स्तर के दो व्यक्ति सचनाओं करते हैं। समतल सन्देश वाहन का प्रयोग एक ही स्तर के अधिकारी समान प्रकृति की समस्याओं को सलयाने का लोगों के अनभवों का लाभ उठाने के लिए करते हैं। समतल सन्देशवाहन के बिना एक संगठन सफलता पानी सकता। समतल सन्देशवाहन की विषय वस्तु में सूचनाएं, निवेदन, सुझाव, पास्परिक समस्याएं तथा समन्वय जानकारियों को सम्मिलित किया जाता है।

अनौपचारिक अथवा अंगूरीलता सन्देश

अर्थ–अनौपचारिक संबंधों (जैसे मित्रता एक ही क्लब की सदस्यता, एक ही जन्म स्थान का होना आदि) पर आधारित होने के कारण यह सन्देशवाहन हर तरह की संगठनात्मक औपचारिकताओं से मुक्त होता है। औपचारिक सन्देशों का विनिमय प्राय सामूहिक भोजन के समय सामाजिक अवसरों, पार्टियों आदि पर हुआ करता है। अवसरों पर अधिकारी वर्ग अपने अधीनस्थों के इस तरह की सूचनायें प्राप्त कर लेते हैं जिनको औचारिक सन्देश वाहन के दौरान एकत्र करने में कठिनाई आती और म विवेचन, सुझाव आदि समिलित होते है इसके अंतर्गत सन्देशवाहन इशारे से सिर हिलाकर, मुस्कराहट द्वारा तथा शान्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, एक अधिकारी अपने

अधीनस्थों की शिकायत अपने उच्च अधिकारी को करना चाहता है और ऐसा लिखित में देने से डरता भी है यही बात औपचारिक रूप से बातों–बातों में अपने उच्च अधिकारी तक पहुचाई जा सकती।

अनौपचारिक सन्देशवाहन को अंगूरीलता सन्देशवाहन भी कहा जाता है। क्योंकि इसमें सूचना के आदान–प्रदान का कोई निश्चित रास्ता नहीं होता। इसके अन्तर्गत सचना एक के बाद एक अनेक लोगों से होती हुई लम्बा रास्ता पार कर जाती है और यह पता नही कि यह बात कहां से शुरू हई थी। यह बात ठीक उसी प्रकार है जैसे अंगूर की बेल । अंगूर की बेल का आदि तथा अन्त ढूंढ़ना ही मुश्किल काम है।

विशेषताएं

1. सामाजिक सम्बंधों द्वारा स्थापना–यह सन्देश वाहन सामाजिक सम्बंधों द्वारा उत्पन्न होते हैं यह संगठन के प्रतिबन्धों से बाहर हैं अधिकारी अधीनस्थों जैसा कोई सम्बन्ध इसके बीच में नहीं आता है। एक अधिकारी जितना व्यवहार कुशलहोगा, वह उतनी ही अधिक सूचनाएं इस श्रृंखला द्वारा प्राप्त कर सकता है।
2. इसके द्वारा कार्य सम्बंधी तथा व्यक्ति सम्बन्धी दो प्रकार की सूचनाएं एकत्र की जा सकती हैं।
3. अनिश्चित मार्ग–संगठन के प्रतिबन्धों से बाहर होने के कारण इसका मार्ग निश्चित नहीं होता। यह अंगूर की बेल की भान्ति टेढ़े–मेढ़े रास्तों से होकर गुजरता है।

अनौपचारिक सन्देशवाहन के लाभ

1. **तेज तथा प्रभावपूर्ण सन्देश वाहन**–इस पद्वति में सन्देश तेजी से प्रसारित होते हैं और उनका प्रभाव भी लोगों पर अधिक आ होता है।
2. **खुला वातावरण**–अनौपचारिक सन्देशवाहन खुले वातावरण में होता है। खुले वातावरण से अभिप्राय यह है। कि यह किसीछोटे–बड़े पद का दबाव नहीं होता। लोगों की संगठन के बारे में राय को सरलता से एकत्र कर दिया जाता है।

सीमाएं

1. **अव्यवस्थित–य**ह सन्देशवाहन पूर्णतः अव्यवस्थित होता है। यही कारण है कि इसमें ऐसा जरूरी नहीं है कि सूचनायें संबंधितव्यक्तियों तक पहुँच जाये।
2. **अविश्वसनीय सूचनाएं**–इस सन्देशवाहन से प्राप्त अधिकतर सूचनायें अविश्वसनीय होती हैं उनके आधार पर कोई महत्वपूर्णनिर्णय नहीं लिया जा सकता।

अनौपचारिक सन्दशवाहन क प्रकार

1. मुक्त प्रवाहा सन्देशवाहन
2. घूमता हुआ सन्देशवाहन
3. श्रृंखलाबद्ध सन्देशवाहन
4. केन्द्रित सन्देशवाहन

सन्देशवाहन के माध्यम

सन्देशवाहन श्रंखला औपचारिक हो या अनौपचारिक, सन्देशवाहन की विषय–सामग्री का आदान–प्रदान करने के लिए कुछ शब्दों, चिन्हों या चित्रों की आवश्यकता पड़ती है जिन्हे सन्देशवाहन का माध्यम कहा जाता है। इनका प्रयोग अलग–अलग हो सकता है या एक माध्यम की सहायता के लिए एक दूसरे माध्यम का प्रयोग किया जाता है। जैसे एक बात को शब्दा द्वारा मौखिक रूप में कहा जा सकता है तथा इसी बात को लिखित रूप में कछ चिन्हों

या चित्रों के द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सन्देशवाहन को माध्यमों को दो भागों में बाटा जा सकता है–मौखिक, लिखित ।

1. मौखिक सन्देशवाहन

बातचीत द्वारा या मुख से बोलकर किसी सचना को अन्य व्यक्तियों तक पहंचाने को मौखिक सन्देशवाहन का सन्देशवाहन दोनों पक्षो में प्रत्यक्ष बातचीत द्वारा, टेलिफोन द्वारा अन्य सूचना प्रसारण यन्त्रों के माध्यम से, चहर का या इशारे द्वारा हो सकता है। इस सन्देशवाहन के निम्नलिखित लाभ हैंः

1. **धन की बचत**–इससे धन की बचत होती है क्योंकि इसमें न तो कागज, स्याही की आवश्यकता होती है न ही लिखने वाले कर्मचारी की।
2. **समय की बचत**–सन्देश लिखने से लगने वाला समय बच जाता है। जिससे यह शीध्र कर्मचारियों तक पहुंचाया जा सकता है।
3. **प्रभावशाली**–सुनने वालो पर बहुत प्रभाव डालता है क्योंकि इसके द्वारा एक प्रबन्धक के चेहरे के हावभाव द्वारा तथा इशारों द्वारा इसे रूचिपूर्ण बना सकता है।
4. **स्पष्टता**–इसके अन्तर्गत सुनने वाले अपने भ्रम के प्रश्न पूछकर दूर कर सकते है जिस कारण मौखिक सन्देशवाहन मेंअधिक स्पष्टता होती है।
5. **प्रतिक्रिया का ज्ञान**–जब सन्देशवाहन प्रत्यक्ष रूप से बोलकर किया जाता है तब सन्देशवाहनकर्ता सुनने वालों का चेहरातथा हावभाव देखकर जान सकता है कि वह उसमें रूचि ले रहे हैं या नहीं तथा उन पर उसका क्या प्रभाव हो रहा है। लिखित सन्देशवाहन का प्रभाव काफी समय बाद पता चलता है।

दोष

1. **सन्देशवाहन प्राप्तकर्ता की उपास्थिति**–मौखिक सन्देश के लिए आवश्यक है कि वह व्यक्ति जिसे सन्देशवाहन करनाहै उपलब्ध नहीं है। यदि वह उपलब्ध नहीं है तब मौखिक सन्देशवाहन सम्भव नहीं है।
2. **खतरनाक**–मौखिक सन्देशवाहन में सन्देशवाहनकर्ता कोई गलत बात कह सकता है या ऐसी बात कह सकता है जो नहींकहनी चाहिए। सार्वजनिक सभा में नेताओं के साथ प्रायः देखा जाता है कि जोश में आकार कुछ गलत बातें बोल देतेहैं जिसका सुनने वालों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
3. भविष्य के सन्दर्भ के लिए प्राप्ति नहीं भविष्य में झगड़ा खड़ा हो जाने पर मौखिक सन्देशवाहन में कोई रिकार्ड न होनेके कारण यह नहीं जाना जा सकता है कि वास्तव में क्या सन्देश कर्मचारियों को दिया गया था। साथ ही कचहरी आदि में मुकदमा चलाने की हालत में उसका कोई प्रमाण नहीं होता।
4. **अपूर्ण**–मौखिक सन्देशवाहन के समय सन्देशवाहन कर्ता सभी बातों का सन्देशवाहन नहीं कर पाता तथा कुछ महत्वपूर्णतथ्य छूट जाते हैं।
5. **तैयारी की आवश्यकता**–कई बार जब सन्देश काफी व्यक्तियों तक पहुचाना होता है तब सन्देशवाहनकर्ता को उसकेलिए काफी तैयारी करनी पड़ती है जिससे मूल्यवान समय नष्ट होता है।

2. लिखित सन्देशवाहन

इसके अन्तर्गत वे सभी साधन आते है जो लिखित होते है। इनमें नोटिस, पत्रिकाएं, समाचार, बुलेटिन आदि जैसे पुस्तक, वार्षिक रिर्पोट आदि सभी आ जाते हैं। इनकी सहायता से प्रबन्धक कर्मचारी तक व कर्मचारी प्रबन्धक तक प्रभावपूर्ण ढंग से सूचना पहुँचा सकते है। प्रबन्धकों ने लिखित सन्देशवाहन की तरफ और अधिक ध्यान देना

शुरू कर दिया है तथा वे लिखित सन्देशवाहन के प्रभावशाली तथा नवीन माध्यमों का विकास कर रहे हैं। इस पर इतना अधिक ध्यान देने का मुख्य कारण यह है कि इसकी सहायता से सूचनाओं को बहुत ही विस्तृत, स्पष्ट तथा आकर्षक रूप में सम्बंधित व्यक्तियों तक पहुँचाया जा सकता है। इसमें सूचनाओं व सन्देश को स्पष्ट करने के लिए चार्ट, ग्राफ तथा चित्रों का प्रयोग किया जा सकता है जिसका सन्देश प्राप्तकर्ता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। लिखित सन्देशवाहन से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं:

1. **पूर्णतया** –लिखित सन्देशवाहन बहत ही सोच समझकर लिखा जाता है। इसमें सभी आवश्यक बाते आ जाती हैं।
2. **सही** –इसमें संदेश को बहुत ही ध्यान तथा सार्थकता से तैयार किया जाता है तथा जारी करने से पहले उसकी जांच हजिस कारण उसमें गलती होने की सम्भावना नहीं रहती जबकि मौखिक सन्देशवाहन में गलत बात कही जा सकती है।
3. **स्पष्टता**–लिखित सन्देश को बहुत ही सार्थकता से तैयार करने के कारण तथा इसमें सरल भाषा का व उदाहरणों का प्रयोग होने के कारण इसमें स्पष्टता आ जाती है।
4. **सक्षिप्तता**–मौखिक सन्देश के अन्तर्गत प्रबंधन अनावश्यक बाते कह जाते है तथा उसे बहुत ही विस्तृत बना देते है न लिखित में केवल आवश्यक तथ्य ही काम में आते हैं। इसमें पढ़ने वाले पर विशेष प्रभाव पड़ने के साथ–साथ उसके सन्देश पढ़ने के प्रति रूचि बनी रहती है।
5. **प्रत्यक्ष सम्पर्क अनावश्यक**–मौखिक सन्देशवाहन में जब सन्देश बोला जाता है तब जिनको वह पहुंचाना होता है उनकी व्यक्तिगत सम्पर्क की आवश्यकता पडती है। जबकि लिखित सन्देशवाहन में ऐसी आवश्यकता नहीं होती पश लिखकर सम्बान्धित व्यक्तियों के पास पहँचा देते है जिसे वह समय मिलने पर पढ़ सकते हैं।

लिखित सन्देशवाहन के दोष

1. **अधिक समय**–मौखिक सन्देश वाहन में सन्देश तुरन्त बोलकर व्यक्तियों तक पहुंचाया जा सकता है जबकि लिखित सन्देश को लिखने में उस पर सम्बांधित अधिकारियों के हस्ताक्षरण करवाने में तथा सम्बांधित व्यक्तियों तक पहुंचने में का समय लगता है।
2. **गोपनीयता का अभाव**–मौखिक सन्देशवाहन में सन्देश प्रबन्धक तथा सम्बन्धित कर्मचारी के बीच गोपनीय रहता है। लिखित सन्देशवाहन लिपि को टाइपिस्टों तथा उससे सम्बन्धित कर्मचारियों तक पहुचाने वाले कर्मचारी सभी को उसकापता चलता है। अत्यधिक सावधानी के बावजूद भी वह सन्देश गोपनीय नहीं रहता।
3. **खर्चीला**–यदि सन्देश ऐसा है जो मौखिक रूप से सम्बन्धित व्यक्ति तक पहुचाया जा सकता है तो उसे लिखित रूप मेंपहुचाने के लिए उस पर अनावश्यक व्यय आता है। कागज, स्याही या टाइप पर आने वाले व्यय को अतिरिक्त टाइप करने वाले या लिखने वाले कर्मचारी की तनख्याह के रूप में काफी व्यय आता है। साथ ही लिखित सन्देश की एक प्रतिसुरक्षित रखने का व्यय भी संस्था को उठना पड़ता है।
4. **आपातकाल में अनुपयुक्त**–लिखित सन्देशवाहन में काफी समय लगता है जिस कारण आपातकाल में जबकि कोई सूचनाकिसी व्यक्ति तक तुरन्त पहुंचानी हो लिखित सन्देश वाहन प्रयोग में नही लाया जा सकता है।

प्रभावपूर्ण सन्देशवाहन के आवश्यक तत्व

संदेशवाहन की कार्यकुशलता केवल समाचारों के आदान प्रदान पर ही निर्भर नहीं है बल्कि यह देखना चाहिए कि इससे प्राप्त कर्ता पर क्या प्रभाव पड़ा। जिस उद्देश्य से संदेश किसी व्यक्ति को दिया जाता है वह उद्देश्य

यदि पूर्ण हो जाता है तो इसे कार्यकुशल संदेशवाहन कहेंगे। सन्देशवाहन को कार्यकुशल बनाने के लिए निम्नलिखित तत्वों अथवा सिद्धान्तों पर ध्यान देना आवश्यक हैं–

1. **स्पष्टता का सिद्धान्त**–सन्देशवाहन की सफलता काफी सीमा तक इस बात पर निर्भर है कि संदेश बिल्कुल स्पष्ट हो,संक्षिप्त हो, व अर्थपूर्ण हो। स्पष्टता के लिए सूचनाकर्ता को स्वयं सम्पूर्ण सन्देश का ज्ञान होना चाहिए। यदि सन्देश लिखित हो तो साफ–साफ लिखा होना चाहिए अथवा टाइप किया हुआ होना चाहिए। संदेश में ऐसे शब्दों का प्रयोग होना चाहिए जिनके विभिन्न अर्थ न निकलें और कम–से–कम शब्दों में संदेश देना चाहिए।
2. **शिष्टता एवं शालीनता का सिद्धान्त**–संदेश को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सन्देश शिष्ट, मधुर एव शालीन हो । साथ ही मधुरता के साथ–साथ सन्देश में प्रभाव ही होना चाहिए, नहीं तो इसका अर्थ कमजोरी में लगा लिया जाता है। जैसे–यदि कोई कर्मचारी देर से फैक्ट्री आता है तो उसको मथुर भाषा के साथ कठोर वचन भी कहने चाहिए।
3. **आदर्श व्यवहार का सिद्धान्त**–सभी विवेकशील व्यक्ति यह चाहते हैं कि उनके आदेश का कर्मचारी पूरी तरह पालन कर। इसके लिए प्रबन्धकों को स्वयं का आदेश बनाना पड़ेगा और सबसे पहले अपने को नियमों पर चलाना चाहिए जो नियम दूसरों के लिए बनाए गए हैं। जैसें जब हम चाहते हैं कि प्रत्येक को समय पर कार्यालय पहचाना चाहिए तो यदि प्रबन्य स्वयं समय पर कार्यलय नहीं पहुंचेगे तो वे दूसरों के सामने क्या आदर्श उपस्थित करेंगे।
4. **पारस्परिक सहयाग का सिद्धान्त**–सन्देशवाहन की सफलता के लिए प्रमख विशेषता यह है कि सन्देशवाहा पा अर्थात सूचना देने वाले व प्राप्त करने वाले को मध्य पूर्ण सहयोग हो। यदि सूचना देने वाला सूचना दे दे किन्तु पाने वाला उसे टाल दें तो सदेशवाहन सफल नहीं कहा जाएगा। इस हेत यह आवश्यक है कि दोनों पक्षकारा का माग के सामान्य सिद्धान्तों की पूर्ण जानकारी हो जिससे दोनों पक्षों में घनिष्ट समन्वय हो।
5. **समुचित सम्प्रेषण विधि**–सन्देश की भाषा मधुर होने के बावजूद यदि प्राप्तकर्ता तक न पहुंचे तो सन्देशवाहन व्यर्थ है। अतः सूचनाकतों को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसे क्या कहना है, किससे कहना है, कब कहना है तथा कैसे कहना है। इन पहलुओं पर पूर्व नियोजन के बिना सन्देशवाहन सफल नहीं हो सकता।
6. **सन्देशवाहन निरन्तर हो**–सन्देशवाहन कशल होने के लिए यह आवश्यक है कि वह सम्बिन्धित पक्षों के बीच निर्बाध गति से निरन्तर चालू रहना चाहिए जिससे निरन्तर विचारों के आदान–प्रदान का लाभ प्राप्त हो सका।
7. **समयानकलता का सिद्धात**–प्रभावी संदेश के लिए आवश्यक है कि संदेश उचित समय पर दिया जाये । यदि उचित समय पर सन्देश नहीं दिया जायेगा तो सही निर्णय नहीं लिए जा सकेंगे।
8. **अनौपचारिकता का सिद्धात**–सन्देश निम्न स्तर तक प्रत्येक कर्मचारी तक पहंचे इसके लिये आवश्यक नहीं है कि वहऔपचारिक रूप से यानी विभागाध्यओं के द्वारा ही नीचे तक पहंचे। यदि किन्ही परिस्थितियों में अनौपचारिक संदेशवाहन अधिक प्रभावपूर्ण हो सकता है तो इसका प्रयोग करना चाहिए।

सम्प्रेषण की बाधायें

सम्प्रेषण का प्रमुख उद्देश्य किसी व्यक्ति अथवा समूह को किसी संवाद का अर्थ बोध कराके प्रभावित करना है परन्तु कभा–कमा ऐसा होता कि संवाददाता और संवाद प्राप्तकर्ता संवाद को भिन्न–भिन्न रूप में समझ लेते हैं और सम्प्रेषण के इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में संवाद प्राप्तकर्ता संवाद को समझने और उसके अनुसार कार्य करने में अपने को असमर्थ पाता है।

प्रो. थियों हैमन ने सम्प्रेषण की बाधाओं की निम्न चार भागों में विभक्त किया हैः–

1. संगठनात्मक संरचना सम्बन्धी बाधायें
2. स्थिति एवं पद सम्बन्धी बाधायें
3. भाषा सम्बन्धी बाधायें एवं
4. परिवर्तन सम्बन्धी बाधायें।

मैक्फारलेण्ड के अनुसार सम्प्रेषण की मुख्य बाधायें निम्न हैंः

1. दोषपूर्ण या विकृत उद्देश्य
2. संगठनात्मक अवरोध
3. भाषा अवराध, एवं
4. मानवीय सम्बन्ध समस्या।

कीथ डेविस के अनुसार सम्प्रेषण की तीन प्रमुख बाधायें हैंः

1. भौतिक बाधायें
2. व्यक्तिगत, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक बाधायें एवं
3. भाषा सम्बन्धी बाधायें

सक्षेप में सम्प्रेषण की कुछ प्रमुख बाधायें निम्न हैंः

1. **दोषपूर्ण अभिव्यक्ति**–भाषा अभिव्यक्ति का आधार है और यदि वह दोषपूर्ण एवं द्विअर्थी है तो समझ पैदा करना सम्भवनहीं होगा। यह भाषा लिखित, मौखिक एवं सांकेतिक हो सकती हैं। यदि एक शब्द, चिन्ह, हाव–भाव, मुद्रा अलग–अलग व्यक्तियों के लिए अलग–अलग अर्थ रखती है। तो सम्प्रेषण अर्थहीन बन जायेगा।
2. **घटिया सुनना एवं स्मरण**–सनना एक दर्लभ गण है और प्रत्येक व्यक्ति अच्छा श्रोता नहीं होता है। यदि श्रोता ही अपना राय बना लेता है, ध्यान लगाकर नहीं सुनता है, केवल अपने हित की बात सुनता है तथा सहानभरि कारण सुनता है तो वह प्रेषक के विचारों एवं भावनाओं को नहीं समझ पायेगा । परिणामस्वरूप सम्प्रेषण अर्थहीन होत इसा प्रकार घटिया स्मरण शक्ति भी सम्प्रेषण में एक महत्वपूर्ण बाधा है। यदि सम्प्रेषण मौखिक है तो यह बाधा खतरनाक है क्योंकि अनुसंधान इस बात को पृष्ट करते है कि एक व्यक्ति ने जो कहा दूसरा व्यक्ति उसका 60–70 प्रतिशत ही स्मरण रख पाता है।
3. **संदेश का छानना**–सम्प्रेषण में संदेश को तोडने–मरोड़ने की समस्या बहुत आम है और यदि एक संदेश को या व्यक्तियों के माध्यम से गुजरना पडे तो यह समस्या और अधिक नुकसानदायक बन जाती है। प्रत्येक व्यक्ति का अपने दृष्टिकोण से अवलोकन एवं मूल्यांकन करता है और उनमें केवल उस संदेश को आगे भेजने की प्रवृति पाई जाती है जो उनके हित में हो। परिणामस्वरूप संदेश का विरूपण हो जाता है कई बार तो उनका अर्थ ही बदल जाता है।
4. **स्थिति एवं पद**–सम्प्रेषण करने वाले कर्मचारियों की स्थिति एवं पदों में अन्तर हो सकता है। यह अन्तर सम्प्रेषण प्रभावी होने से रोकता है। उच्च पदों पर पदासीन व्यक्ति कई प्रकार के सम्प्रेषण को अपने पद एवं प्रतिष्ठा के अन नहीं मानते। इसी प्रकार अधीनस्थ कर्मचारी उच्च अधिकारियों को अपनी बात कहने से हिचकते हैं या डरते हैं।
5. **अविश्वास एवं भय**–कर्मचारियों के मध्य अविश्वास एवं भय का वातावरण सम्प्रेषण को अर्थहीन बनाता है। यदि कर्मचारीएक–दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखें तो सत्य सुझाव देने से डरें तो सम्प्रेषण प्रभावशाली बनाया जाना सम्भव नहीं होगा।

6. **परिवर्तन का विरोध**–सम्प्रेषण का प्रमुख उदेदृश्य अपेक्षित परिवर्तन लाना होता है। यदि सम्प्रेषण करने वालों में परिवर्तन का विरोध करने की प्रवृति है तो सम्प्रेषण उपयुक्त समझ पैदा नहीं कर सकेगा।
7. **सम्प्रेषण का अतिभार**–कभी–कभी प्रबन्धन इस मान्यता पर कार्य करते हैं कि अधिक सम्प्रेषण ही बेहतर सम्प्रेषण है। इसके अन्तर्गत व्यक्तियों को इतनी सूचनाएं प्रदान की जाती है कि वे सूचनाओं के भार से दब जायें । परिणामस्वरूप सम्प्रेषण अतिभार पैदा होता है। यह अतिभार कई कारणों से पैदा हो सकता है जैसे वे कुछ सूचनाओं को पसंद नहीं करते, वे कुछ सूचनाओं से बचना चाहते हैं, उन पर सूचनाओं का बोझ अत्याधिक है। इस अतिभार से सूचनाओं के विश्लेषण में देरी होती है, गलतियाँ अधिक होती है तथा वे सभी पर समुचित ध्यान नहीं दे पाते हैं। परिणामस्वरूप उनमें समझ पैदा नहीं हो पाती है।
8. **योग्यता का अभाव**–यदि प्रेषक एवं प्राप्तकर्ता में ऐसी योग्यताओं का अभाव है जिनसे सम्प्रेषक को उपयोगी बनाया जासके तो सम्प्रेषण अर्थपूर्ण नहीं रहेगा।
9. **संगठन संरचना**–यदि उपक्रम की संगठन संरचना जटिल है, अनेक स्तरों वाली है तथा विस्तृत है तो विभिन्न स्तरों परकार्य करने वाले व्यक्तियों के बीच की दूरी बढ़ जायेगी। इससे सम्प्रेषण अव्यक्तिगत अधिक हो जायेगा और सूचनाओं के हस्तान्तरण में दोष उत्पन्न होगा।

बाधाओं को दूर करने हेतू सुझाव

सन्देशवाहन के मार्ग में अनेक बाधाएं है। इन बाधाओं का यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जा सकता है कि उन्हे दूर नहीं किया जा सकता। यदि प्रबन्धक सभी का सहयोग लेकर निष्ठा से प्रत्यन्नक करे तो सन्देशवाहन को इन बाधाओं को निश्चित रूप से दूर किया जा सकता है। सन्देशवाहन की बाधाओं को दूर करने के लिए कुछ सुझाव निम्नलिखित हैः

1. **सन्देशवाहन भेजना**–इन बाधाओं को दूर करने के लिए सर्वप्रथम हमें सन्देशवाहन का कार्य एक निश्चित योजना के अनुसारबनाना चाहिए। योजनाबद्व सन्देशवाहन से एक ओर जहां उच्च अधिकारियों एवं अधीनस्थों के मध्य सूचनाओं का आदान–प्रदान सुगम हो जायेगा वही दूसरी ओर अधीनस्थ सही समय पर सूचनाएं प्राप्त करने से कार्य को सफलतापूर्वक करने में सक्षम होगें साथ ही सूचनाओं की प्राप्ति में होने वाले अतिरिक्त समय की भी बचत सम्भव होगी।

2. **सरल भाषा**–भाषा सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने के लिए निम्न सुझाव सहायक सिद्ध होगे–

    1. सन्देशवाहन में ऐसी भाषा प्रयोग की जाए जिसे सरलता से समझा जा सके।
    2. तकनीकी भाषा का प्रयोग न किया जाए जिसे सन्देश प्राप्तकर्ता समझ न सके।
    3. कभी भी बहुअर्थीय शब्दों का चयन नहीं किया जाना चाहिए।

3. **प्रत्यक्ष सम्पक**–यथासम्भव इस बात का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि सन्देश देने वाले और सन्देश पाने वाले के माध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क की व्यवस्था की जाए। इसके लिए संस्था में निम्न उपाय किए जा सकते हैः–

    1. संस्था में सूचना सहायक अधिकारी नियुक्त करना
    2. संस्था में प्रबन्ध स्तरों की यथासम्भव कमी करना
    3. नियत्रंण क्षमता को व्यापक बनाना
    3. यथासम्भव विकेन्द्रीकरण को बढावा देना।

4. **पारस्परिक सदभाव एवं विश्वास**–सन्देशवाहन की बाधाओं को दर करने में सन्देश देने वाले और पान वाला पारस्परिक सदभाव एवं विश्वास की भावना उत्पन्न करना है। पारस्परिक अविश्वास एक–दूसरे को आवश्यक सूप प्रदान करने स्वीकार करने और समझने में बाधा उत्पन्न करती है। व्यवसायिक उपक्रम में पारस्परिक

सद्भाव एव परमार का वातावरण पैदा करने का दायित्व उच्च अधिकारियों का होता है। पारस्परिक विश्वास से सन्देश देने का औपचारिकएवं अनौपचारिक दोनों ही व्यवस्थाएं सफल हो सकती है।

5. **पदोन्नति नीति**—पदोन्नति की आकांशा से अधीनस्थ अपने अधिकारियों के सम्मुख सही एवं निष्पक्ष बात प्रस्तुत नहीं करते।सदैव वे वही बात करते हैं जिससे उनके अधिकारी खुश हो और यथासम्भव जल्द से जल्द पदोन्नति दें। अतः इस बाधा को दूर करने के लिए संगठन में आवश्यक है। आदर्श पदोन्नति सम्बन्धी नियम एवं उपनियम बनाए जाये तथा उनका नेकनीति एवं कठोरता के साथ पालन किया जाए। निष्पक्ष पदोन्नति के लिए यह आवश्यक है कि पदोन्नति का आधार योग्यता, अनुभव, परिश्रम एवं कर्तव्यनिष्ठा हो। कामचोर व्यक्तियों की पदोन्नति के लिए योग्यता, अनुभव एव कर्तव्य निष्ठाको ओझल नहीं किया जाना चाहिए।

6. **यथासम्भव सन्देशवाहन**—इसमें बाधा इसलिए भी जन्म लेती है कि संवाददाता द्वारा संदेश का प्रेषण ठीक समय पर नहीं किया जा सकता। इसकी सफलता के लिए जरूरी है कि संदेश प्राप्त करने वाले को सन्देश सही समय पर दिया जाए। के समय से पूर्व या बाद में दिया सन्देश महत्व नहीं रखता।

7. **सुनने की आदत का विकास**—इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि संस्था के अधीनस्थों में सन्देशों को सुननेकी आदत का विकास किया जाए, जिससे वे सन्देश को भली प्रकार सुनकर तथा समझकर ही निर्णय ले। पूरा सन्देश सुनने से पहले ही अपना निर्णय ले ऐसा न हो। यदि सुनने सम्बंधी कोई कमी या बाधा हो तो उसे दूर करने के लिए उपयुक्त यंत्रों की सहायता ली जानी चाहिए।

संचार—व्यवस्था का महत्व

संस्था में संदेशवाहन के महत्व को निम्न तत्वों से जाना जा सकता हैं:

1. **शीघ्र निर्णय एवं क्रियान्वयन** निर्णय लेने में देरी करने से और समस्याओं को टालते रहने से व्यवसाय में असन्तोष कावातावरण उत्पन्न हो सकता है। अतः एक संगठित तथा व्यवस्थित सन्देशवाहन प्रणाली, व्यवसाय के वातावरण में मधरता तथा स्वस्थ बनाने में सहायक होती है। एक व्यवस्थित सन्देश वाहन पद्धति से विचार—विमर्श शीध्रगामी और सुगम होजाता है।
2. **कार्य सम्बन्धी सूचनाएं पहुंचाना तथा सहयोग प्राप्त करना**—प्रत्येक कार्य को करने के लिए पर्याप्त सूचनाओं की आवश्यकता होती है। कार्य कब शुरू करना है। कैसे और कहाँ करना है? कहाँ से इनके लिए सहायता प्राप्त होगी आदि सचनामों की जानकारी कर्मचारियों के लिए आवश्यक होती है। इनमें देरी होने से कार्य रूक जाता है। कार्यकुशल सन्देश वाहनकी सहायता से यह सूचनाएं समय पर तथा प्रभावी ढंग से कर्मचारियों को पहुंचाई जा सकती हैं।
3. **प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि**—प्रबन्धक को व्यक्तियों से व्यवहार करना पड़ता है तथा कार्य एवं कर्तव्यों के बीच निर्देश देने पड़ते हैं। सहायकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उन्हें नीतियों तथा उद्देश्य बताने होते हैं। में प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि के लिए प्रभावी संदेश—वाहन या संचार व्यवस्था सहायक होती है।
4. **लोक सम्पर्क**—एक औद्योगिक संस्था की सफलता समाज की सहायता पर निर्भर होता है, इसलिए जनता को बारे में जानकारी देकर संस्था के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जा सकता है। यह सूचनाएं संस्था के लिए समाज में अनुकूल वातावरण तैयार करने के साथ—साथ संस्था के लिए अच्छे कर्मचारियों का प्राप्ति, ग्राहकों की संत अशधारियों के विश्वास को बढाती है। इस सबके लिए कुशल संदेशवाहन का प्रभावशाली होना आवश्यक है।
5. **आंकड़ों का संग्रह**—प्रबन्धकों को समय—समय पर योजनाएं बनाने तथा संस्था की महत्वपूर्ण समस्याओंको सुलझाने के लिए विभिन्न प्रकार के आंकड़ों की आवश्यकता होती है, जो सरकारी कार्यालयो, उपभात्त्काआ,

व्यापारियों से प्राप्त कर होते हैं। किसी भी संस्था या व्यक्ति को ऐसी सचनाएं देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इसलिए कुशल सन्देश द्वारा उसमें सहयोग की भावना उत्पन करके ही तथ्य प्राप्त किये जा सकते हैं।

6. **शान्ति की व्यवस्था**–प्रबन्धकों को समय–समय पर योजनाएं बनाने तथा संस्था की महत्वपर्ण समस्या के लिए विभिन्न प्रकार के आंकड़ों की आवश्यकता होती है जो सरकारी कार्यालयों, उपभोक्ताओं, व्यापारियों से। करने होते हैं। किसी भी संस्था या व्यक्ति को ऐसी सूचनाएं देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। इसलिए कर सन्देशवाहन द्वारा उसमें सहयोग की भावना उत्पन्न करके ही तय किये जा सकते हैं।
7. **समन्वय**–श्रम–विभाजन तथा विशिष्टीकरण के सिद्धान्तों को उद्योग पर लागू करने के परिणामस्वरूप उत्पादन कर, विभागा तथा उपविभागों में होने लगा है, जिस कारण उनमें समन्वय कायम करने की समस्या उत्पन्न हो गई है। कायम करने के लिए समय–समय पर इन सभी विभागों तथा उपविभागों के प्रबन्धकों की सभा बुलाई जाती है । सभा कार्यो की गति तथा समय निर्धारित किया जाता है तथा सम्बन्धित आदेश उन व्यक्तियों तक पहंचाए जाते है। वास्तविक कार्य कर रहे हैं। इसके लिए कुशल संदेशवाहन की आवश्यकता होती है।
8. **अधीनस्थों के सुझाव**–व्यवसाय में समय–समय पर समस्याएं उत्पन्न होती हैं । इन समस्याओं को सुलझाने का उत्तरदागिन प्रबन्धकों का होता है, जिन्हें उस समस्या के सम्बन्ध में वास्तविक तथ्य प्राप्त नहीं होते हैं । इसलिए समस्याओं को सलझाने में अधीनस्थों के सुझाव प्राप्त करना महत्वपूर्ण हो जाता है, जिसके लिए संस्था में कुशल सन्देशवाहन का होना जरूरी हैं।
9. **पद सन्तुष्टि की व्यवस्था**–प्रबन्धक क्या चाहता है और कर्मचारी क्या करते हैं, के विषय में सन्देशवाहन से प्रबन्ध तथा कर्मचारियों के बीच पारस्परिक विश्वास, प्रेम तथा सहयोग उत्पन्न होता है। प्रबन्धक जैसा कार्य चाहता था उसी के अनुसार कार्य, कर्मचारी द्वारा करने पर उसे अपने कार्य से संतुष्टि मिलती है और प्रबंध तथा कर्मचारी के बीच किसी प्रकार की गलतफहमी नहीं होती है। अतः प्रभावी सन्देशवाहन कर्मचारी को पद के प्रति सन्तुष्टि देता है तथा कार्य के प्रति रूचि एवं उत्साह बढ़ाता है।
10. **नेतृत्व क्रिया का आधार**–नेता एवं उसके अनुयायियों के बीच प्रभावी सन्देशवाहन का होना आवश्यक है। अपने विचारों, सुझावों तथा निर्णयों को नेता अपने अनुयायियों तक सन्देशवाहन की व्यवस्था से ही अपने प्रभाव का प्रयोग कर सकता है। अनुयायी भी अपने अनुभव, सुझाव, प्रवृति तथा समस्याओं को अपने नेता सन्देशवाहन के माध्यम से पहुंचा सकते हैं द्य इस प्रकार प्रभावी एवं स्पष्ट सन्देशवाहन ही नेतृत्व की प्रभावशीलता निर्धारित करता है।

नियंत्रण

नियंत्रण के अंतर्गत किसी संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की जाने वाली योजनाए ठीक ढंग से कार्यान्वित की जा रही हैं या नहीं, की जानकारी करना तथा यदि योजनाएं ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर रही हैं तो उसमें आने वाली बाधाओं का पता लगाना तथा उनके समाधान का प्रयत्न करना आदि सम्मिलित होता है।

आधुनिक प्रबंधकों की यह विचारधारा कि 'नियंत्रण' का आशय अधीनस्थों पर अधिकार जमाना नहीं है अपितु नियंत्रण वह साधन है जिसके द्वारा निश्चित उददेश्यों के लिए कार्य करने वाले अधीनस्थों को निर्देशन और दिग्दर्शन किया जाता है।

नियंत्रण की परिभाषायें

नियंत्रण की परिभाषायें विभिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न ढंग से परिभाषित की है उनमें से प्रमख परिभाषायें निम्नलिखित हैं :–

1. **बिली ई. गोज** के अनुसार, ''प्रबंधकीय नियोजन से आशय कार्यक्रम को ससंगत, एकीकृत और सतुष्ट बनाने से है, जबकि नियंत्रण घटनाओं को योजनाओं के अनुरूप बनाने का प्रयास करता है।''
2. **मेरी कुशिंग नाइल्स** के अनुसार, ''नियंत्रण किसी निश्चित लक्ष्य का, लक्ष्यों के समूह की ओर निर्देशित क्रियाओंमें संतुलन बनाए रखना है।''
3. **जार्ज आर. टैरी** के शब्दों में, ''नियंत्रण का तात्पर्य यह निश्चित करना है कि क्या किया जा रहा है। दूसरे शब्दों में कार्योका मूल्यांकन करना और आवश्यकता पड़ने पर संशोधनात्मक प्रयासों का काम लेना है जिससे कि योजनाबद्ध निष्पादन हो सके।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नियन्त्रण प्रबन्ध का वह कार्य है जो योजना के अनुसार कार्य निष्पादन को सम्भव बनाता है। ऐसा करने के लिए नियन्त्रण के अन्तर्गत समय–समय पर वास्तविक एवं इच्छित कार्य प्रगति की तुलना करके विचलनों का पता लगाया जाता है और इससे पहले की विपरीत परिणाम सामने आएं कमियां को दूर करने के लिए सुविधा का कार्यवाही की जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नियंत्रण का प्रबन्धकीय कार्य है जो वास्तविक परिणामों को निकट लाने का प्रयास करता है।

नियंत्रण की विशेषताएं

1. **नियंत्रण एक आधारभूत कार्य है**–प्रबन्ध के अनेक कार्य हैं, जैसे–नियोजन, संगठन नियुक्तियां, नेतृत्व कला तथा नियंत्रण।इन सभी में से नियंत्रण की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके बिना बाकी सब बेकार हो जाएगा। क्योंकि नियंत्रण के अभाव में हम यह नहीं जान पाएंगे कि किस योजना से हम क्या करना चाहते हैं और उसमें क्या हो रहा है। ऐसी भ्रमपूर्ण स्थिति में सफलता की इच्छा करना मात्र एक स्वप्न ही है। अतः नियंत्रण का प्रथम लक्ष्य इसका एक मुख्य प्रबंधकीय कार्य होना है।
2. **प्रत्येक प्रबंधक का अनिवार्य कार्य**–नियंत्रण का दूसरा लक्षण इसका सभी प्रबंधकीय स्तरों पर संपन्न किया जाना है। यह प्रबंध का ऐसा कार्य है जिसमें हर स्तर का प्रबंधक यह विश्वास दिलाता है कि वास्तविक प्रगति निर्धारित योजनामा के अनुरूप है। विभिन्न स्तरों पर नियंत्रण के उद्देश्यों में अंतर हो सकता है जैसे–उच्चस्तरीय प्रबंधक प्रशासकीय करते हैं जो योजनाओं, नीतियों आदि पर आधारित है तथा इनको नियंत्रण की आवश्यकता विशेष परिस्थितियों में ही पड़ती है। मध्यस्तरीय प्रबंधकों की नियंत्रण की समस्या नीतियों को वास्तविकता में बदलने से संबंधिति होती है जबकि निम्नस्तरीय प्रबंधकों की नियंत्रण समस्या वास्तविक कार्य संचालन से संबंधित है।
3. **नियंत्रण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है**–नियंत्रण का अभिप्राय किसी ऐसी क्रिया से नहीं है जिसे केवल एक ही बार किया जाता हो अथवा एक लम्बे समय बाद दोहराया जाता हो, बल्कि इसकी आवश्यकता हर समय सी के अंतर्गत प्रगति की लगातार समीक्षा करनी पड़ती है तथा बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार पर्व नतिर भी बदलना पड़ता है। इसलिए कहा जाता है कि नियंत्रण लगातार मापन करने, तुलना करने एवं जांच पड़ताल की प्रक्रिया है। जिस प्रकार एक प्राणी के लिए श्वास जरूरी है उसी प्रकार एक सस्था की आवश्यकता पड़ती है।
4. **नियंत्रण प्रबंधकीय क्रिया का प्रारंभ व अंत दोनों है**–नियंत्रण की आवश्यकता प्रबंधकीय प्रक्रिया के में ही पड़ती है। प्रबंधकीय प्रक्रिया योजना बनाने से शुरू होती है और नियंत्रण पर समाप्त होती है। न पए प्रमापों का होना जरूरी है जो कि योजनाओं में निर्धारित किए जाते हैं। इस प्रकार प्रबंधकीय प्रक्रिया, नियोजन के रूप में होता है जो कि नियंत्रण प्रक्रिया का पहला कदम भी है। दूसरी ओर, नियोजन में निर्धारित को पूरा का प्रयास करना नियंत्रण के अंतर्गत आता जो कि प्रबंधकीय क्रिया का अंतिम कदम है । अतः यह कहा है है कि नियंत्रण प्रबंधकीय क्रिया का प्रारंभ भी है और अंत भी।

5. **नियंत्रण न केवल पीछे देखना है कि आगे देखना भी**–नियंत्रण को पीछे देखने की प्रक्रिया इसलिए कहा जा क्याकि इसके अंतर्गत वास्तविक परिणामों की तलना अपेक्षित परिणामों से की जाती ह। इस आधार पर यह तथा सत्य है कि नियंत्रण पीछे देखना है। इसी प्रकार नियंत्रण के अंतर्गत जब प्राप्त एवं अपेक्षित परिणामों की तुलना विचलनों का पता लगाया जाता है और उन्हें ठीक करने के लिए सुधारात्मक कायवाहा कार्यवाही भविष्य के संदर्भ में होती है। इस आधार पर कहा जा सकता है नियंत्रण आगे की ओर भी देखता है।
6. **नियंत्रण परिणामों से संबंधित है**–नियंत्रण का संबंध परिणामों से होता है क्योंकि प्राप्त परिणामों के आधार पर ही दर अ का मूल्याकन करते हैं वह विचलनों का पता लगाकर सुधारात्मक कार्यवाही करते है।
7. **कार्यवाही नियंत्रण का सार है**–प्राप्त परिणामों में सधार की कार्यवाही करना ही नियंत्रण का सार है। केवल प्रगति का माप लेना हा नियत्रण नहीं है। एक प्रभावपूर्ण नियंत्रण व्यवस्था, समय पर ही कार्यवाही करके पूर्व निर्धारित एमा अनुसार परिणाम प्राप्ति को सरल बनाती है तथा साधनों के अपव्यय को न्यूनतम करती है। अतः कहा जा सकता है कि यदि विचलनों का पता लागने के बाद कोई कार्यवाही न की जाए तो नियंत्रण को अनुपस्थित माना जाएगा।
8. **नियंत्रण की कुंजी भारार्पण में निहित है**–एक अधिकारी अधिकारों का भारार्पण करने मात्र से ही उत्तरदायित्व मन से नहीं हो सकता, इसलिए उसे अपने अधीनस्थों की क्रियाओं पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। अतः अधिकारों के भारार्पण में ही नियंत्रण का राज छिपा हुआ है।
9. **सूचनाएं नियंत्रण की मार्गदर्शक होती हैं**–वास्तविक कार्य प्रगति के बारे में पर्याप्त सूचनाओं के समय पर उपलब्ध होने पर ही नियंत्रण कार्यवाही निर्भर करती है। सूचनाएं प्रबंधकों को यह बताती हैं कि वास्तविक कार्य और प्रमापित कार्य में कितना अंतर है और कहाँ सुधार की आवश्यकता है। इसलिए कहा जाता है कि प्रभावपूर्ण नियंत्रण के लिए प्रभावीआंतरिक सूचना व्यवस्था का होना अति आवश्यक है।
10. **नियंत्रण बल प्रयोग करना, कर्मचारियों पर दोष लगाना या दबाव डालना नहीं है**–नियंत्रण के अंतर्गत कर्मचारियोंको इच्छित परिणामों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है न कि उन पर दोष लगाया जाता है अथवा उन्हें नियमों में जकडा जाता है।

नियंत्रण के लाभ

नियंत्रण एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसकी हरेक प्रबंध को आवश्यकता पड़ती है। इसके निम्नलिखित लाभ हैंः

1. **यह योजनाओं के लागू होने को सुनिश्चित करता है**–नियंत्रण के माध्यम प्रमापित एवं वास्तविक परिणामों के अंतरकी जानकारी देते हुए यह स्पष्ट किया जाता है कि कार्य योजना के अनुसार हो रहा है या नहीं। यदि नहीं, तो इसके कारणों का पता लगाकर इसे सुधारा जाता है तथा नियंत्रण इसकी पुनरावृत्ति को रोकता है।
2. **यह मानवीय एवं भौतकीय साधनों के अनुकूलतम उपयोग को सुनिश्चित करता है**–नियंत्रण मानवीय व भौतिक साधनोंके अनुकूलतम उपयोग को संभव बनाता है। नियंत्रण के अंतर्गत यह देखा जाता है कि कोई कर्मचारी कार्य निष्पादन मेंजानबूझकर देरी न करे। इसी प्रकार सभी भौतिक साधनों के उपयोग में उनकी बर्बादी को रोका जाता है।
3. **यह पर्यवेक्षण को सरल बनाता है**–नियंत्रण के अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि कौन–से विलचन अधिक महत्वपूर्णहैं ताकि केवल उन पर ही ध्यान रखा जा सके । अतः पर्यवेक्षक को सभी विचलनों पर समय खराब करने की आवश्यक मान नहीं होती व इससे पर्यवेक्षण सरल हो जाता है।

4. **यह परिवर्तनशील वातावरण से निपटने में सहायक है**–आज औद्योगिक वातावरण में लगातार परिवर्तन हो रहे हैं। ये परिवर्तन तकनीकी विकास, बढ़ती हई प्रतियोगिता, सरकारी प्रभाव, उपभोक्ता रूचि आदि के रूप

में हो सकते हैं। ये सभी परिवर्तन कार्य निष्पादन को योजनाओं के अनुरूप होने से रोकते हैं। यह कार्य नियंत्रण द्वारा ही संभव है।

5. **यह समन्वय में सहायक है**–संस्थागत उददेश्यों को सफलतापक पाप्त करने के लिए संस्था के सभी विभागाप कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों में समन्वय जरूरी है। उदाहरणार्थ, संस्था के सभी विभाग एक दूसरी पर निर्भर है जैसे–विक्रय विभाग द्वारा माल के आदेशों की पूर्ति करना उत्पादन विभाग द्वारा उत्पादित माल पर निर्भर करता है। नियंत्रण के माध्यम से यह पता लगाया जाता है कि क्या उत्पादन प्राप्त आदेशों के अनुरूप ही रहा है।यदि नहीं, तो विचलन के कारणों की खोज की जाती है और सुधारात्मक कार्यवाही करके दोनों विभागों में समन्वय स्थापित किया जाता है।
6. **यह कार्यकलशता वद्धि में सहायक है**–नियंत्रण व्यवस्था परी संस्था की कार्यकशलता की वृद्धि करना है। इसके अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति की प्रगति पर लगातार निगरानी रखी जाती हैं और कमियों को अतिशीध्र दूर किया जाता है।
7. **इससे मनोवैज्ञानिक दबाव का लाभ मिलता है**– नियंत्रण संस्था में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियो पर मनोवैज्ञानिक दबाव होता है। उन्हें यह जानकारी होती है कि उनके कार्य निष्पादन की गति एवं क्वालिटी का मूल्यांकन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी पता है कि विपरीत परिणाम आने पर दंड भी दिया जा सकता है। परिणामतः ये सभी बातें उन्हें अच्छा व अधिक काम करने के लिए प्रेरित करती है।
8. **यह विकेंद्रीकरण में सहायक है**–बड़े व्यावसायिक उपक्रमों में अधिकारी का विकेंद्रीयकरण जरूरी होता है। लेकिनअधीनस्थों द्वारा अधिकारों के गलत प्रयोग का डर रहता है इसलिए प्रबंधक नियंत्रण के अभाव में ये उन्हें नहीं सोप सकता की अतः यह स्पष्ट है कि विकेंद्रीकरण जरूरी है और इसकी सफलता के लिए नियंत्रण जरूरी है।
9. **नियंत्रण निर्णय लेने में सहयोग करता है**–नियंत्रण प्रक्रिया के अंतर्गत प्राप्त विभिन्न सूचनाओं के आधार पर ही सभीस्तरों के प्रबंधकों द्वारा निर्णय लिए जाते हैं।
10. **यह लागत कम करने व किस्म सुधार में सहायक है**–नियंत्रण द्वारा उत्पादन के सभी साधनों का अनुकूलतम उपयोग ऋसंभव बनाकर लागतों में कमी और माल की किस्म में सुधार किया जाता है।

नियंत्रण प्रक्रिया

नियन्त्रण प्रक्रिया वह प्रक्रिया है जिसमें काम करने के लिए उपयुक्त कार्यमान स्थापित किए जाते हैं। वास्तविक कार्य की प्रगति की तुलना पूर्व निर्धारित कार्यमानों से की जाती है तथा यदि उनमें किसी प्रकार के विचलन पाया जाता है तो उसे दूर करने के लिए सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। नियन्त्रण प्रक्रिया के निम्न चार तत्व प्रमुख रूप से माने जाते हैं:

1. **प्रमापों का निर्धारण**–नियन्त्रण प्रक्रिया का प्रथम चरण लक्ष्यों, प्रमाणों, नीतियों, योजनाओं, मान्याताओं या किसी ऐसे प्रमापों ऋऋ का निर्धारण करना है जिसके आधार पर किसी भी कर्मचारी के व्यवहार को नियमित एवं नियन्त्रित किया जाएगा । व्यक्तिगत ना एवं संगठनात्मक निष्पादन के मूल्यांकन हेतु प्रमापों का निर्धारण करना आवश्यक है। इन्ही प्रमापों के आधार पर वास्तविककार्यों की तुलना की जाती है। कोई भी कार्य सही ढंग से हो रहा है अथवा नहीं, इस बात की जानकारी उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि प्रमापों का निर्धारित नहीं किया जाता है। प्रमापों के निर्धारण के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि प्रमाप बहुत ऊंचे तथा बहुत अधिक नीचे नहीं रखे जाने चाहिए। प्रमापों का निर्धारण उपक्रम के आकार लिन क्षमता आदि को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। स्पष्ट रूप से प्रमापों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि ये इस प्रकार के हों जिससे एक साधारण व्यक्ति अपने प्रयासों के द्वारा इनको प्राप्त कर सकें। यदि प्रमाप सरल तथा स्पष्ट हैं तो प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य का स्वतन्त्र निर्णायक हो सकता और वह यह

ज्ञात कर सकता है कि वह मोही कार्य कर रहा है वह प्रमापों के अनुरूप है या नहीं। कितने विचलनों को सहन किया जा सकता है? जैसा कि हम स्पष्ट कर चुके हैं जहाँ तक सम्भव हो, परिणात्मक आधारों पर प्रमापों का निर्धारण किया जाना चाहिए जिससे ना की मात्रा सफलतापूर्वक ज्ञात की जा सके। हम यह भी जानते हैं कि वास्तविक कार्य तथा प्रमापों के मध्य विन आते हैं द्य अतः हमें उस सीमा को तय कर लेना चाहिए जिस सीमा तक विचलनों को सहन किया जा सकता विचलनों की सीमा तय करते हुए यह बात विशेष रूप से ध्यान रखनी चाहिए कि विचलनों की सीमा बना न हो और न बहुत कम हो।

2. **कार्यो का मूल्याकन करना**—नियन्त्रण प्रक्रिया का द्वितीय चरण वास्तविक कार्यों का मूल्यांकन करने से है। वास्तविक कार्यों की तुलना प्रमापों से करने के पीछे प्रमख उद्देश्य कार्य के विभाजन को ज्ञात करना है। भिन्नता प्रकृति का नियम है। वास्तविक कार्यों का ज्ञान उपक्रम की विभिन्न सूचनाओं के आधार पर किया जाता है। हमें प्रमापों से आ अलग कर देना चाहिए तथा यह देखना चाहिए कि विचलन स्वीकृत सीमा के भीतर है या नहीं। वास्तविक कार्यो तथा प्रमापित कार्यों का मूल्यांकन करते समय प्रबन्धक को उन बातों का ध्यान में रखना चाहिए जिनसे विनया बढ़ सकती है। यदि हम संगठन के इन तत्वों को सधारते हैं, तो एक तरफ विचलनों में कमी आएगी तथा दसही प्रभावी नियन्त्रण की स्थापना भी हो जाएगी जो विचलन एक सीमा के भीतर हो, उन पर प्रबन्धक ज्यादा ध्यान में भरचक नहीं है। प्रबन्धक को अपवादजनक तत्वों को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए।

3. **विचलनों के कारणों को ज्ञात करना**—नियन्त्रण प्रक्रिया के अगले चरण में वास्तविक कार्य के प्रमापों के मध्य आए विचलनों के कारणों का ज्ञात किया जाता है। इसके अन्तर्गत यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि विचलन होने पीछे क्या कारण है। इस तथ्य का पता लगाया जाता है कि गलती योजना को बनाने में की गई है उस योजना को का कार्यरूप प्रदान कम करने में गई है। मूल्यांकनकर्ता को विचलनों के कारण, उनका प्रभाव, आकार को ध्यान में रखना चाहिए। साथ ही यह भी देखना चाहिए कि क्या मूल्यांकन के द्वारा प्रमाप में सुधार किया जा सकता है?

4. **सुधारात्मक कार्य**—नियन्त्रण प्रक्रिया का अन्तिम चरण उन सधारात्मक कार्यों से सम्बन्धित है जो वास्तविक कार्यों व प्रमापों के मध्य विचलनों के एक सीमा से अधिक होने पर किए जाते हैं । वास्तव में सुधारात्मक कार्य नियन्त्रण का सार है। सुधारात्मक कार्यों की प्रवृत्ति न केवल गलती के सुधार के सम्बन्ध में ही होनी चाहिए वरन् इस प्रवृत्ति की तरफ भी हो कि भविष्य शाक में इस प्रकार की गलतियों की पुनरावृत्ति न हो सके। प्रबन्धक सुधारात्मक कार्यों के लिए निम्न कदम उठा सकता है—

    1. कार्यों की आवश्यकता, भौतिक एवं बाह्य परिस्थितियों में इस प्रकार से सुधार करना कि प्रमानों की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाय।
    2. शीघ्र से शीघ्र कर्मचारियों के उपयुक्त प्रशिक्षण एवं निर्देशन की व्यवस्था करना।
    3. कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाना।
    4. योजना लोचदान बनाए रखना जिससे उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके क्योंकि कुछ तत्व ऐसे होते हैं जिन पर मानवीय नियन्त्रण नहीं रह सकता।

नियंत्रण की विधियाँ

नियंत्रण हेतु सामान्यतः निम्न विधियां प्रयोग में लाई जाती हैंः

1. **अवलोकन**—कर्मचारियों के कार्यों का प्रत्यक्ष रूप में अवलोकन करके तथा उनसे प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करके उन कार्यों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। यदि संस्था के अधिकारी कर्मचारियों के कार्य स्थल

पर जाकर उनके कार्यों का अवलोकन करते हैं, तो इसका प्रभाव नियंत्रण की तरफ ही होता है। ऐसा करने में अधिकारियों को न केवल अपने कर्मचारियों के कार्यों का ही ज्ञान होगा वरन कर्मचारियों के मनोबल में भी वृद्धि होगी। लेकिन बड़े व्यावसायिक उपक्रम में ऐसी विधि को नहीं अपनाया जा सकता है। काफी विस्तृत आकार होने के कारण प्रत्यक्ष अवलोकन संभव नहीं हो पाता है। यदि इस विधि को अपनाया जाय तो अधिकारियों को अवलोकन या निरीक्षण से पूर्व एक योजना बनानी चाहिएतथा उसी के अनुरूप कार्य करना चाहिए।

2. **आचरण**–यदि एक अधिकारी अपने अधीनस्थों के व्यवहारों को नियंत्रित करना चाहता है तो उसे स्वयं व्यवहार एवं कार्यका उदाहरण कर्मचारियों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत किया गया उदाहरण अधीनस्था र लिए आदर्श बन जाता है और अधीनस्थ उसी आदर्श को अपने प्रयासों द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। यदि किला कालेज का प्राचार्य यह चाहता है कि उसके अध्यापक कक्षाओं को नियमित रूप से लें तो इसके लिए यह जरूरी हैं कि वह स्वयं नियमित रूप से कक्षाएं लें। यदि कोई अधिकारी अपने कर्मचारियों को समय का पाबंद करना चाहता है। सर्वप्रथम अधिकारी को ही समय का पाबंद होना चाहिए।

3. **नीतियां**–संस्था के द्वारा अपने दैनिक कार्यों के निष्पादन के लिए जिन मार्गदर्शन विवरणों और सिद्धांतों की आवश्यकता पड़ती है, उनको नीतियां पूरा करती हैं। नीतियों का आधारभूत लक्ष्ण यह है कि ये भावी कार्यो के नियंत्रण का आधार होती हैं।

4. **अभिलेख तथा प्रतिवेदन**–परिणामों को मापने के लिए अभिलेखों तथा प्रतिवेदनों से एक साधन के रूप में कार्य लिया जा सकता है। अभिलेखों एवं प्रतिवेदनों की तुलना योजनाओं से की जा सकती है। प्रतिवेदन तथा अभिलेख तब ही सफल साधन साबित हो सकते हैं जबकि वे सरल व स्पष्ट हों। इस प्रकार जो भी अभिलेख व प्रतिवेदन तैयार किया जाए वह वास्तविक कार्यों को प्रतिबिंबित करने वाले होने चाहिएं।

5. **चार्टस तथा मैन्युअल्स**–किसी भी संगठन का चार्ट उसके अधिकारियों और प्रबंधकों को संगठन के ढांचे के संबंध से अवगत कराता है तथा यह आपसी संबंधों तथा कार्य समूहों को भी स्पष्ट करता है। इस प्रकार के चार्टस संस्था की योजना को परिवर्तित करने तथा नीतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते है। संस्था की प्रगति को बतलाने वाले चार्ट ग्राफ्स आदि का प्रयोग प्रबंधक नियंत्रण के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कर सकते हैं। इस प्रकार मैन्यूअल्स भी प्रबंधकीय नियंत्रण के उद्‌देश्यों को पूरा करते हैं।

6. **लिखित निदेश**–लिखित निर्देशों के द्वारा की अधीनरों की कार्यक्षमता को नियंत्रित किया जा सकता है। लिखित निर्देशों के लिए यह आवश्यक है कि ये निर्देश अत्यधिक रूप से स्पष्ट होने चाहिएं। यदि ये निर्देश अस्पष्ट हैं तो कई प्रकार की गलतफहमियां प्रबंध के समक्ष आ सकती हैं तथा नियंत्रण की योजना असफल हो सकती है।

7. **बजट** –आधुनिक व्यावसायिक जगत में नियंत्रण के एक महत्वपर्ण साधन के रूप में बजट का प्रयोग किया जाता है। यह योजना का एक वित्तीय विवरण है जिसे पूर्व निर्धारित उददेश्यों को प्राप्त करने के लिए एक निश्चित समयावधि क मध्य लागू किया जाता है। यह नियंत्रण के साधन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। वास्तविक कायो आर नियोजन निरंतर तुलना करने में यह आधार प्रदान करता है।

8. **लेखाकर्म**–प्रबंध कार्यक्षमता को मापने के लिए लेखाकर्म को एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। लेखांकन के तीन पहलू हो सकते हैं:

   (अ) व्यावसिक सौदों का अभिलेख रखना।

   (ब) दैनिक व्यावसायिक क्रियाओं को नियंत्रित करना।

   (स) व्यावसायिक स्थिति का मूल्यांकन करना तथा भविष्य के लिए कुशलतम क्रियाओं का निर्धारण करना।

   लेखाविधि इस प्रकार की हो जिससे प्रबंध को अपेक्षित सूचनाएं समय पर प्राप्त हो सकें।

9. **सम–विच्छेद विश्लेषण**–उत्पादन की विभिन्न मात्राओं एवं लागतों के बीच संबंधों को ज्ञात करने के लिए संस्था का प्रबंध सदैव कोशिश करता है। यह संबंध प्रबंध को 'ब्रेक इवन पाइन्ट' विश्लेषणों व चार्टों के द्वारा ज्ञात हो सकता है। यह पाइन् मूल्यों को निर्धारित करने, विक्रय मात्रा को तय करने तथा लाभों के संबंध को दिग्दर्शित करता है। यह चार्ट प्रबंध क यह सूचना देता है कि कुल लागत को प्राप्त करने के लिए किसी वस्तु विशेष की कितनी मात्रा बेची जाए। इनके माध्यमसे उत्पादन एवं विक्रय क्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित करना सरल होता है।
10. **नियंत्रण विभाग**–कोई भी संस्था अपने यहां नियंत्रण विभाग की स्थापना करके अपनी नियंत्रण प्रक्रिया को सरल बना सकती है। नियंत्रण विभाग का कार्य नियंत्रण के संबंध में योजना बनाना, समन्वय करना, मूल्यांकन करना तथा विचलन होने पर सुधारात्मक कार्यवाही करना है। यूरोपीय देश अपने संगठनात्मक ढांचे में नियंत्रण विभाग की स्थापना अलगसे कर रहे हैं।
11. **अंकेक्षण**–यह नियंत्रण का एक बहुत उपयोगी रूप है। संस्था के कार्यों के मध्य नियंत्रण एवं पूर्व नियोजित कार्यों के विचलनों को ज्ञात करने का महत्वपूर्ण साधन है। अंकेक्षण आंतरिक या बाह्य व्यक्तियों के द्वारा कराया जा सकता है

नियन्त्रण के सिद्धान्त

कून्ट्ज और ओ, डोनल ने नियन्त्रण के चौदह सिद्धान्तों का वर्णन किया हैः

1. **उद्देश्यों की सुरक्षा का सिद्धान्त**–नियन्त्रण प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो कि योजनाओं और वास्तविक कार्यो के विचलनों का अन्तर मालूम करके उन विचलनों को समाप्त कर दे।
2. **नियन्त्रण की कार्यकशलता का सिद्धान्त**–नियन्त्रण की व्यवस्था अधिक खर्चीली नहीं होनी चाहिए। मितव्ययता का अतिरिक्त नियन्त्रण प्रणाली, अधीनस्थ कर्मचारियों की पहल शक्ति, सत्ता के प्रत्यायोजना एवं मनोबल पर भी बुरा प्रभाव न डाले।
3. **नियन्त्रण दायित्व का सिद्धान्त**–नियन्त्रण करने का दायित्व प्रबन्धनों का होता है। यह दायित्व सौपा नहीं जा सकता
4. **प्रत्यक्ष नियन्त्रण का सिद्धान्त**–नियन्त्रण प्रत्यक्ष रूप से किया जाना चाहिए। त्रुटियों का पता लगाने के स्थान पर त्रृटियों को होने से रोकने पर अधिक बल दिया जाए।
5. **योजनाओं के प्रतिबिम्ब का सिद्धान्त**–नियन्त्रण का प्रयोजन योजनाओं के विचलनों का पता लगाकर उनके अनुसार कार्य करना होता है। नियन्त्रण अवस्था में योजनाएँ प्रतिबिम्बिता हो।
6. **संगठनात्मक उपयक्तता का सिद्धान्त**–नियन्त्रण की व्यवस्था इस प्रकार से की जानी चाहिए कि वह संगठन के ढांचे के अनुकूल समयोजित की जा सकें।
7. **नियन्त्रण के अस्तित्व का सिद्धान्त**–नियन्त्रण प्रबन्धक की वैयाक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से स्थापित किए जाते हैं।
8. **प्रमापो का सिद्धान्त**–प्रमाप उद्देश्यात्मक शुद्ध एवं उपयुक्त होने चाहिए। अतः उक्त गुणों से युक्त प्रमाप उचित एवं न्यायपूर्ण होने के कारण अधीनस्थों द्वारा स्वीकार कर लिए जाएगें।
9. **क्रान्तिक बिन्दु नियन्त्रण का सिद्धान्त**–नियन्त्रण प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो नियन्त्रण का ध्यान महत्वपूर्ण स्थलों की और आकर्षित कर सके।
10. **अपवाद का सिद्धान्त**–यद्यपि नियन्त्रण कार्य सम्बन्धित अधिकारी को ही क्रियान्वित करना चाहिए किन्तु विशेष परिस्थितियों में वरिष्ठ अधिकारियों को भी यह अधिकार होना चाहिए।
11. **लोच का सिद्धान्त**–नियन्त्रण प्रक्रिया में पर्याप्त लोच होनी चाहिए ताकि योजनाओं के असफल होने पर नियन्त्रण आसानी से हो सके।

12. **भावी नियन्त्रण का सिद्धान्त**–भावी नियन्त्रण स्थापित करने के लिए नियन्त्रण विधि को अपनाना चाहिए।
13. **पुनरावलोकन का सिद्धान्त**–प्रभावी नियन्त्रण के लिए समय–समय पर नियन्त्रण प्रक्रिया का पुनरावलोकन करके बदलीहुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन कर लेना चाहिए।
14. **कार्य का सिद्धान्त**–जब तक विचलनों को समाप्त करने के लिए प्रभावी उपाय नहीं किये जायेंगे नियन्त्रण कार्य पूरा नहीं होगा।

परिवर्तन का प्रबन्ध

जब सगठन में कोई परिवर्तन किया जाता है तो उसका कोई कारण अवश्य होता है। परिवर्तन के कारण आता दोनो हो सकते है (इन कारणों का वर्णन दसी अध्याय में आगे किया गया है।) संक्षेप में कहा जा सकता है कि कारण कुछ भी हो परिवर्तन तो करना ही होता है। यहां मुख्य प्रश्न यह है कि परिवर्तन के विरोध से कैसे बचा जाए? यह काम प्रचार किया जा सकता है। इसलिए कहा जा सकता है कि, ''प्रस्तावित परिवर्तन को निर्विरोध लागू करने का एक को परिवर्तन का प्रबन्ध कहते हैं।''

परिवर्तन के प्रबन्ध की परिभाषा

डॉ. पी. सामभैया के अनुसार, "वह प्रक्रिया जिसके द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन को लागू किया जाता है परिवर्तन का प्रबन्ध कहलाता उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अनेक कारणों से संगठन में परिवर्तन करना आवश्यक होता है। जिसका कुछ लोगों का हितों पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है वे इसका विरोध करते हैं। परिवर्तन को निर्विरोध लागू करने की प्रक्रिया परिवर्तन प्रबन्ध कहलाती है।

परिवर्तन के प्रकार

व्यवसायिक जगत में परिवर्तन सामान्यत होते रहते हैं। परिवर्तन कम्पनी के उद्देश्यों, नीतियों, सिद्धान्तों तथा कार्य–प्रणालिर से सम्बन्धित हो सकते हैं या कम्पनी के उत्पाद, उत्पादन विधियों, कच्चे माल के प्रयोग तथा विपणन आदि से सम्बाधित । सकते हैं। इसके अतिरिक्त परिवर्तन का क्षेत्र कम्पनी के प्रबन्ध दर्शन, संगठन के स्वरूप या ढांचे तथा कम्पनी अथवा उसव विभिन्न इकाइयों की अवस्थापना को सम्बंधित हो सकता है। परिवर्तन का सम्भावित क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसकी सम सूची बना पाना एक कठिन कार्य है।

फिलिप्पो ने समस्त प्रकार के परिवर्तनों का निम्नांकित तीन श्रेणियों में वर्गीकरण किया है। ये श्रेणियाँ हैः–

1. कार्मिक दल में परिवर्तन
2. कार्य–विधियों में परिवर्तन
3. संगठन के ढाँचे तथा भौतिक अवस्थापन में परिवर्तन

डार्विन कार्टराइट अपने लेख में हमारा ध्यान परिवर्तन तथा परिवर्तन प्राप्त करने के विभिन्न माध्यमों जैसे 'शिक्षा' 'प्रशिक्षण 'मार्गदर्शक', 'मत शिक्षण' आदि की ओर खीचते हुए लिखते हैं कि परिवर्तन को प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। अतः क्र यह सम्भव नहीं है कि हम 'परिवर्तन के स्थान के पर 'शिक्षा', प्रशिक्षण जैसे शब्दों का प्रयोग करें जो व्यवहार में परिवर्तन के तलना में श्रेष्ठ माने जाते हैं। जिनका प्रतिरोध भी अपेक्षाकृत कम ही होगा लेकिन लेखक स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर भी प्रदा करते हैं कि 'शिक्षा' शब्द से हमे यह आभास मिलता है कि समाज के प्रचालित मूल्यों एवं मान्यताओं को नकारा नहीं जायेग तथा 'शिक्षा' लाभदायक परिवर्तनों को जन्म देगी। जबतक दूसरी ओर परिवर्तन शब्द इस दिशा में कोई आश्वासन प्रदान नहीं करता। परिवर्तन शब्द की अन्य शब्दों के साथ तुलनात्मक समीक्षा करते हुए वे आगे लिखते है कि प्रशिक्षण तथा मार्गदर्शक और शब्दों का प्रयोग हमारी विचारधारा को सीमित एवं सकुचित दिशा प्रदान करता है तथा इससे हमारा ध्यान व्यक्तियों के कार गिने पहलओं की ओर ही केन्द्रित हो जाता है जबकि दूसरी और परिवर्तन' शब्द के प्रयोग से हमारा दृष्टिकोण व्यापक एवं

विचारणार सामान्य बनी रहती है। अतः लेखक शब्दार्थ–शास्त्र की दृष्टि से परिवर्तन शब्द के प्रयोग को ही श्रेयस्कर मानते है।

परिवर्तन की प्रकृति

परिवर्तन की प्रकृति पर समुचित रूप से प्रकाश डालता है इस प्रकार परिवर्तन

1. समाज में प्रचलित मूल्यों एवं मान्यताओं के अनुकूलन अथवा प्रतिकूलन किसी भी प्रकार का हो सकता है।
2. परिवर्तन, विद्यमान व्यवस्था के लिए हितकारी अथवा अहितकारी सिद्ध हो सकता है।
3. परिवर्तन का प्रभाव क्षेत्र सामान्यतः व्यापक माना जाता है अतः इस शब्द का प्रयोग तकनीकी, कार्मिक, सामाजिक, संगठनात्मक आदि सभी क्षेत्रों में सुगमता के किया जा सकता है।

परिवर्तन की प्रकृति से सम्बन्धित विभिन्न विचारों को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है:

1. **परिवर्तन प्रमुख एवं गौण हो सकते हैं** ऐसे परिवर्तन जो सम्पूर्ण संगठन को प्रभावित करता है और अभिनव तरीके अपनाते है प्रमुख परिवर्तन जाने जा सकते हैं। परिवर्तन जो संगठन के किसी एक भाग की प्रभावित करते हैं महत्वपर्ण नहीं होते, पुनरावृत्ति प्रकृति के होते है, गौण परिवर्तन कहलाते है।
2. **परिवर्तन व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक**–ऐसे परिवर्तन जो कार्मिक की व्यक्तिगत विशेषताओं यथा ज्ञान, स्वभाव, आत्मविश्वास, सहनशीलता, महत्वकांशा. नैतिक मल्यों, जीवन स्तर आदि को प्रभावित करते हैं और उसके व्यवहार में न लाते हैं, व्यक्तिगत परिवर्तन कहलाते हैं। ऐसे परिवर्तन जो समूह के व्यवहार में बदलाव लाते है, सगठनात्मक परिवर्तन माने जाते हैं।
3. **परिवर्तन विकासात्मक एवं क्रान्तिकारी हो सकते है**–संगठन के विकास की अवस्था में यदि परिवर्तनों की गति धीर एवं सामान्य है तो इसे विकासात्मक परिवर्तन कहा जाता है। ऐसे परिवर्तनों में जोखिम की मात्रा का होती है और आसार से मान लिए जाते हैं इसके कारण तीव्र प्रतिरोध का विषम नहीं बनते । यदि परिवर्तनों की गति तीव्र, उग्र एवं क्रान्तिकारी है तो इन्हें क्रान्तिकारी परिवर्तन माना जायेगा। ऐसे परिवर्तनों में जोखिम अधिक रहती है और इनका प्रतिरोध भी खूब होता है।
4. **परिवर्तन निष्क्रिय एवं सक्रिय हो सकते है**–ऐसे परिवर्तन जो स्वतः ही आते है जिनके लिए पहल नहीं करनी पड़ी वे निष्क्रिय परिवर्तन होते हैं। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संयोजित रूप से जो परिवर्तन किए जाते हैं सक्रिय पालिका माने जाते हैं जो अपने आप नहीं आते, नव प्रवर्तन सक्रिय परिवर्तन माना जाता है।

संगठनात्मक परिवर्तन के कारण

परिवर्तन प्रकृति का नियम है अतः संगठनों में विभिन्न कारणों से परिवर्तनों को अपनाया जाता है। निम्नलिखित कारण परिवर्तन के लिए उत्तरदायी माने जा सकते हैं:

1. **वातावरण**–आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण का प्रत्येक संगठन, संस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। कोई भी संगठन वातावरणके प्रभावों से अछूता नहीं रह सकता है ज्योही इसमें परिवर्तन होता है त्यों ही इसके अनुरूप संगठन में भी परिवर्तन लाना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार वातावरण को प्रभावित करने वाले विभिन्न परिस्थितियाँ संगठनात्मक परिवर्तन कामुख्य कारण होती हैं।

2. **संगठन की नीतियां**–परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप संगठन की नीतियों में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं । औद्योगिक एवं लाइसेन्सिग नीतियों में भी समय–समय पर सरकार द्वारा किए जाने वाले परिवर्तनों के अनुरूप ही संगठन की क्रय नीति, विक्रय नीति, मूल्य नीति, क्षतिपूर्ण नीति, आदि में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है।

3. **संगठनात्मक ढाँचा**–संगठन संरचना के अनुसार ही प्रत्येक संगठन में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न प्रबंधकीय क्रियायें की जाती रहती है। यदि यह प्रक्रिया संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त होती तो इसमें परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि वातावरण का भी किसी संगठन की संरचना पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अतः वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुरूप ही संगठनात्मक ढाँचे में परिवर्तन किया जाता है।

4. **कार्य की प्रकृति**–विभिन्न तकनीकी परिवर्तनों के कारण कार्य की प्रकृति एवं प्रक्रिया में भी परिवर्तन हो रहते है। जो कार्य पूर्व में हाथ से किये जाते थे। वे आज आधुनिक यन्त्रों एवं उपकरणों की सहायता से किये जाने लगे थे। इन काया का कुशलता पूर्वक निष्पादन योग्य एवं प्रशिक्षण प्राप्त एवं कार्य में हो रहे परिवर्तनों के लिए उच्च अधिकारियों को अनेकपरिवर्तन करने पड़ते हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसे संगठनों का एक आवश्यक अंग बन जाता है।

5. **अन्तर निर्भरता**–किसी संगठन की संरचना कृत्य, तकनीक, मानव, नियम, नियमन, राष्ट्रीय हित एवं उपलब्ध विभिन्नसंसाधनों द्वारा की जाती है। ये सभी तत्व या घटक परस्पर आधारित है। इनमें से किसी में परिवर्तन आने से अन्य घटका में परिवर्तन करना आवश्यक ही जाता है। अतः इन घटकों की अन्तर–निर्भरता परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होती है।

6. **कार्मिक**–संगठन के आकार में वृद्धि एवं तकनीकी परिवर्तनों के कारण संगठन में नये कामिका साथ ही प्रशिक्षण, पदोन्नति, स्थानान्तरण, छटनी, सेवा निवत मृत्य, पद–मुक्ति, पदत्याग आदि के कारण भी कार्मिकों परिवर्तन होता है। प्रकृति के नियमानुसार दो कार्मिक सामान्यतया एक सा ज्ञान, दर्शन, व्यवहार, कार्यशैली, समझ एवं क्षमता नहीं रखते। अतः कार्मिक में हुए परिवर्तन से संगठन की अन्य नीतियों विशेषतः सेविवर्गीय नीतियों में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है।

7. **प्रतिस्पर्धा** –प्रतिस्पर्धा के इस युग में वही संगठन जीवित रख सकता है जो अन्य प्रतिस्पर्धा संगठनोकी नीतियों, योजनाओं, कार्य पद्धतियों के अनरूप अपनी योजनाओं नीतियों कार्य पद्धतियों आदि में परिवर्तन कर लता है। इस प्रकार प्रतिस्पर्धा संगठन दूसरे संगठनों के प्रबन्धकों को विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों के लिए बाध्य कर देतेहै।

8. **संयोजन**–गलाकर पतिस्पर्धा की समाप्ति के लिए व्यावसायिक जगत में संयोजनों को बढ़ावा मिल रहा है। व्यवसायिक इकाइयों के सम्मिश्रण, बिलियन एवं अधिग्रहण से उनके स्वामित्व एवं प्रबन्ध में परिवर्तन हो जाता है। फलस्वरूप संयोजित इकाइयाँ विभिन्न परिवर्तनों के लिए प्रेरित होती हैं।

9. **आकस्मिकता**–यदा कदा संगठनों को परिस्थितियों में आकास्मिक परिवर्तनों के कारण परिवर्तन के लिए बाध्य होना पड़ता है। उदाहरणार्थ सरकार द्वारा औद्योगिक नीति में समय–समय पर अकस्मात किए जाने वाले संशोधनो से औद्योगिक संगठनों को अपनी नीतियों में भी परिवर्तन करना पड़ता है। इसी प्रकार कार्मिकों द्वारा अचानक हड़ताल पर चले जाने से प्रबन्धकों को परिवर्तनों के लिए तत्पर होना पड़ता है।

10. **तकनीकी विकास**–आज के वैज्ञानिक यग में विभिन्न अनसन्धानों के द्वारा आये दिन तकनीकी परिवर्तन होते रहत हैं। नवीन यन्त्रों एवं उपकरणों का अविष्कार उत्पादन विधियों में सुधार, विशेषज्ञों की सेवाओं की उपलब्धी, स्वचालित यन्त्रा का उपयोग, संचार एवं परिवहन के नवीन संसाधनों जैसे कोरियर सर्विस, एयर टैक्सी सर्विस, एस. टी. डी. टेलिफोन, फैक्स सर्विस आदि का प्रयोग, शक्ति के नवीन संसाधनों यथा स्टोर एनर्जी एल. पी. जी. गैस आदि का प्रचलन, अच्छा किस्म का माल आदि परिवर्तन के लिए प्रेरित किया है।

प्रतिरोध को कम करने के उपाय

परिवर्तन एवं उसके प्रतिरोध का क्रम निरन्तर चलता रहता है। प्रबन्धक का यह कर्तव्य है कि वह ऐसी व्यवस्था करे जिसमें परिवर्तन से प्रभावित व्यक्ति एवं समूह परिवर्तन को ग्रहण करने के लिए तैयार रहे और परिवर्तन का कम से कम प्रतिरोध हो। इन उपायों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:–

1. **सूचना प्रदान करना**–परिवर्तन को कार्यान्वित करने से पूर्व उसकी सूचना, परिवर्तन से प्रभावित वाले व्यक्तियों एवं समूह को प्रदान की जानी चाहिए। उन्हें यह बताया जाना चाहिए कि परिवर्तन की आवश्यकता क्यों उत्पन्न हुई। यदि उन्हें परिवर्तन की आवश्यकता के विषय में प्रभावित एवं संतुष्ट किया जाता है तो प्रतिरोध काफी हद तक कम किया जा सकता है। यहा पर यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि यदि प्रबन्धक द्वारा परिवर्तन की सूचना कार्मिकों को प्रदान नहीं की जाती है तो कार्मिक अफवाहों तथा अपुष्ट सूचनाओं के माध्यम से परिवर्तन की जानकारी प्राप्त कर लेते है और उसी आधार पर अपने मत को निधारित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त की गई सूचनाएं वास्तविकता से अलग होती है और कार्मिकों का प्रतिरोध भी काफी सीमा तक अनुचित एवं अनावश्यक होता है। इस स्थिति से बचने का यही उपाय है कि प्रबन्धक परिवर्तन की तर्कयुक्त सूचना प्रभावित व्यक्तियों एवं समूहों को स्वयं प्रदान करे।
2. **सहभागिता**–परिवर्तन को कार्मिकों पर थोपने का प्रयास विफल होते हैं। अतः कार्मिको की सहमति प्राप्ति करके ही परिवहन को कार्यान्वित किया जाना चाहिए । परिवर्तन के विषय एवं उसको लागू करने की विधि के सम्बन्ध में कार्मिकों की सहन काफी महत्वपूर्ण होती है। इसके अतिरिक्त पारस्परिक विचार विमर्श में कार्मिकों के विरोध–प्रतिरोध का गबार काही तक निकल जाता है। इस तरह परिवर्तन का कार्यान्वयन सुगम हो जाता है।
3. **आर्थिक सुरक्षा**–कार्मिक परिवर्तन को स्वेच्छा से स्वीकार करें। इसके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें इस बात की प्रदान की जाए कि परिवर्तन के फलस्वरूप उन पर किसी प्रकार का आर्थिक सकंट नहीं आने दिया जायेगा। इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक निश्चितता प्रदान करती है जिससे उनकी मन स्थिति परिवर्तन को ग्रहण करने योग्य हो जाती है।
4. **सहानुभूति**–परिवर्तन के कारण कार्मिको को पूर्व प्राप्त योग्यता एवं नपुण्य अप्रचलन में आ सकती है। उन्हें परिवर्तन केअनुरूप नये ज्ञान, योग्यता एवं नपण्य को प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती हैअनौपचारिक सम्बंध टुटने लगते है तथा कार्मिक को नये सन्तुलन एव सम्बंध बनाने पड़ते है। ऐसी स्थिति में आवश्यक होता है कि प्रबन्ध वस्तुस्थिति को समझे और कार्मिको के साथ सहयोग एवं सहानुभूति का व्यवहार करे। इससे परित को अपनाने में सहायता मिलती है।
5. **परम्परागत प्रबन्ध पद्धति में परिवर्तन**–परिवर्तन के प्रबन्ध के लिए आवश्यक है कि आवश्यक है कि परम्परागत प्रबन्ध पद्धतियों में आवश्यक परिवर्तन किया जाये। 'सहभागिता' 'सहानुभूति' एवं 'संवहन' जिनकी चर्चा हमने अभी की है। ये सब परम्परागत प्रबन्ध के साथ नहीं चल सकते। परम्परागत प्रबन्ध की नीव 'सता' एव 'एक मार्गीय सवंहन' पर आधारित होती है। इस प्रकार का प्रबन्ध कठोर नियन्त्रण में विश्वास रखता है। जबकि परिवर्तन के प्रबन्ध के लिए अनन के वातावरण को बनाने की आवश्यकता होती है।

   प्रबन्ध की परम्परागत पद्धति में परिवर्तन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष और भी है। जिनकी और पाठको का ध्यान आकार करना आवश्यकता है। परम्परागत 'प्रबन्धक' 'सता', नियन्त्रण', 'एक–मार्गीय सवंहन' आदि के वातावरण में अपने को सुरक्षित करता है। अतः

   वातावरण एवं पद्धतियों में परिवर्तन के कारण परम्परागत प्रबन्धक की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। अपनी 'सुरक्षा' को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्रबन्धक स्वयं परोक्ष रूप से परिवर्तन का प्रतिरोध कर सकता है।

अतः प्रतिरोध को दर की के लिए जो काम कार्मिकों के स्तर पर सुझाये गऐ है। उन्हें प्रबन्धकों के स्तर पर उठाने की यदि अधिक नहीं तो कम से कम उतनी आवश्यकत तो है ही।

6. **अन्य उपाय**

1. परिवर्तन को प्रभावकारी ढंग से लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रबन्ध उसका पूरी तरह से नियोजन करे। अनियोजित परिवर्तन के सफल होने की सम्भावना बहुत कम होती है।

2. परिवर्तन, पुरान व्यक्तियों की अपेक्षा नये व्यक्तियों को अधिक ग्राह्य होता है अगर इस विषय में प्रबन्धकों के समक्ष विकल्प हो तो वह चुनाव कर सकता है।

3. परिवर्तन का लाभ परिवर्तन से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों को प्राप्त होना चाहिए। लाभ प्राप्ति की आशा से वे परिवर्तन को ग्रहण करने की अच्छी स्थिति में होंगे।

नियोजित परिवर्तन की प्रक्रिया

जैसा कि स्पष्ट है कि अनेक आंतरिक एवं बाहरी तत्व ऐसे हैं जो किसी न किसी रूप में संगठन को प्रभावित करते रहते हैं। इसी प्रभाव के कारण संगठन में परिवर्तन करने पड़ते हैं। वैसे भी बदलते वातावरण के साथ बदलाव लाने में ही समझदारी है दूसरी ओर, परिवर्तन के विरोध की आशंका से भी इंकार नहीं किया जा सकता। अन्य शब्दों में, यदि परिवर्तन को नियोजित ढंग से लागू किया जाए तो विरोध को समाप्त नहीं तो न्यूनतम अवश्य किया जा सकता है। अब पुनः प्रश्न उठता है कि यह नियोजित ढंग क्या है। परिवर्तन का नियोजित ढंग है 'नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया।' यदि इस प्रक्रिया का पालन करके परिवर्तन लागू किया जाये तो सफलता की पूरी सम्भावना रहती है।

1. **परिवर्तन की आवश्यकता की पहचान**–नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया में सर्वप्रथम यह देखा जाता है कि परिवर्तन कीआवश्यकता क्यों हैं? आखिर परिवर्तन का विचार मस्तिष्क में क्यों आया? परिवर्तन की आवश्यकता का सम्बन्ध संगठन को प्रभावित करने वाले तत्वों से है। संगठन को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व हो सकते हैं। यहां पर यह देखने का आवश्यकता है कि कोई विशेष तत्व संगठन को किस प्रकार प्रभावित करता है। यह जानकारी मिलते ही परिवर्तन का परिवर्तन की आवश्यता का पता लग जाता है।

2. **परिवर्तन क्षेत्र की पहचान**–नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया के दूसरे चरण पर परिवर्तन क्षेत्र की पहचान की जाती है। यह निश्चित किया जाता है कि परिवर्तन कार्य सम्बन्धी होगा अथवा संगठन सम्बन्धी अथवा दोनों प्रथम चरण पर परिवतः की आवश्यता की जानकारी प्राप्त होने से एक इशारा मिल जाता है कि परिवर्तन किस प्रकार का होगा। उदाहरण मालिकी में गिरावट के अनेक कारण हो सकते हैं–माल की घटिया क्वालिटी, विज्ञापन में कमी, घटिया ग्राहक सव उधार सुविधा न देना आदि। माना कि प्रस्तुत उदाहरण में बाजार सर्वेक्षण के बाद पता चलता है कि माल की घाटिया किस्म बिक्री में गिरावट का कारण है। पुनः अध्ययन करने पर पता चलता कि माल की किस्म को आधनिक मशीनों द्वारा सधारा जा सकता है। अतः स्पष्ट हुआ कि यहां आधुनिक मशीनों की स्थापना करना

3. **परिवर्तन के लिए नियोजन**–जैसे ही यह स्पष्ट हो जाए कि परिवर्तन किस क्षेत्र में किया जाना है के लिए नियोजन की कार्यवाही शुरू हो जाती है। परिवर्तन के लिए नियोजन में निम्नलिखित तीन प्रश्नों के बारे में निर्णय लिया जाता हैः–

   1. परिवर्तन कौन करेगा?
   2. परिवर्तन कब किया जाएगा?
   3. परिवर्तन कैसे किया जाएगा?

4. **परिवर्तन शक्तियों का निर्धारण** –परिवर्तन नियोजन करने के बाद परिवर्तन को प्रभावित करने वाली शक्तियों का निर्धारण किया किया जाता है। परिवर्तन से एक व्यक्ति एक समह अथवा परा संगठन प्रभावित हो सकता है। पहले परिवर्तन से प्रभावित होने व होने वाली कुल शक्तियों का निर्धारण किया जाता है। इसके बाद यह देखा जाता है कि उनमें से कितनी शक्तियां परिवर्तनके पक्ष में हैं और कितनी विरोध में।
5. **परिवर्तन को लाग करना** –यदि परिवर्तन के पक्षधर अपेक्षाकत अधिक लोग अथवा शक्तियां हों तो कार्यक्रम ता तुरत लागू कर देना चाहिए। प्रस्तुत उदाहरण में परिवर्तन को लागू करने का अभिप्राय–आधुनिक मशीनों को क्रय करने की तैयारी शरू करना प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करना, उत्पादन विभाग में एक योग्य प्रबन्धक को स्थानांतरित करना तथा उपविभागीयप्रबन्धक के पद की स्थापना व उसकी नियुक्ति का प्रबन्ध करना।
6. **प्रतिपुष्टि**–नियोजन परिवर्तन प्रक्रिया के अन्तिम चरण के रूप में यह देखा जाता है कि क्या परिवर्तन कार्यक्रम सही दिशाकी ओर जा रहा है अथवा नहीं। यह जानकारी प्राप्त करना प्रतिपुष्टि कहलता है। परिवर्तन कार्यक्रम लागू करने से पहले पूरा विश्लेषण करने के बाद भी कुछ विरोधी शक्तियां बाधा उत्पन्न कर सकती हैं या कोई अन्य कठिनाई आड़े आ सकती है। यही कारण है कि परिवर्तन कार्यक्रम पर लगातार निगरानी रखनी होती है। किसी भी समस्या के तुरन्त समाधानसे परिवर्तन कार्यक्रम की सफलता सुनिश्चित होती है।

प्रत्येक संगठन गतिशील वातावरण में ही जन्म लेता है और विकसित होता है। इसलिए संगठन गतिशील होता है अर्थात इसमें परिवर्तन होते रहते हैं। यही कारण है कि जैसे ही एक परिवर्तन को लागू करने का लाभ पूरा होता है तो दूसरी समस्या आड़े आ जाती है परिणाम स्वरूप, इस नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया को फिर से दोहराना पड़ता है और यह क्रम लगातार चलता रहता है।

परिवर्तन एजेंट

परिवर्तन एजेंट का अभिप्राय उन व्यक्तियों से है जो परिवर्तन कार्यक्रम को संगठन में लागू करते है। विस्तार के आधार पर परिवर्तन दो प्रकार का हो सकता है–प. छोटा परिवर्तन तथा पप. बड़ा परिवर्तन। जहां तक छोटे परिवर्तन का प्रश्न है यह काम संबंधित विभागीय प्रबन्धकों द्वारा पूरा कर लिया जाता हैं इसके लिए विशेषज्ञों की जरूरत नहीं होती। लेकिन बड़े परिवर्तन को लागू करने के लिए जिन परिवर्तन एजेंटों की जरूरत होती हैं वे निम्नलिखित हैः

(अ) आंतरिक परिवर्तन एजेंट

आंतरिक परिवर्तन एजेंट दो प्रकार के होते हैः

1. **मुख्य प्रबन्धक**–बड़े परिवर्तन को लागू करने हेतु मुख्य प्रबन्धक परिवर्तन एजेंट के रूप में काम कर सकता है। सारा परिवर्तन कार्यक्रम मुख्य प्रबन्धक की देख–रेख में तैयार किया जाता है । जैसे ही परिवर्तन कार्यक्रम लागू होता है तो मुख्य प्रबन्धक अपने आप को कार्यक्रम से अलग कर लेता है और आगे की जिम्मेदारी सम्बन्धित विभागीय प्रबन्धक संभालते हैं। अन्य शब्दों में परिवर्तन की प्रांरभिक अवस्था में मुख्य प्रबन्धक और बाद में सम्बन्धित विभागीय प्रबन्धक परिवर्तन एजेंट के रूप में काम करते हैं। संक्षेप में, मुख्य प्रबन्धक की भूमिका प्रभावपूर्ण परिवर्तन के लिए नेतृत्व प्रदान करना है।
2. **परिवर्तन सलाहकार**–कम्पनी के किसी भी स्तर को कर्मचारी की नियुक्ति परिवर्तन सलाहकार के रूप में की जा सकती है. है। पारा ये वह कर्मचारी होते हैं जो समय–समय पर परिवर्तन एजेंट का प्रशिक्षण पेशेवर सलाहकारों से लेते रहते हैं। डन परिवर्तनो एजेटो को एक विशेष परिवर्तन को लागू करने की जिम्मेदारी सौंपी जाती हैं। एक विशेष समय तक ये लगातार परिवर्तन के काम को करते हैं। जैसे ही परिवर्तन कार्यक्रम को लागू करते का काम पूरा हो जाता है ये पुनः अपने पैतृक विभाग में चले जाते हैं। ये परिवर्तन

एजेंट कम्पनी के कर्मचारी होते हैं तथा सभी अन्य कर्मचारियों से होते हैं। इनका मुख्य काम विरोध कर सकने वाले लोगों से सम्पर्क स्थापित करके ऐसा वातावरण तैयार कर है ताकि परिवर्तन को सभी सहर्ष स्वीकार कर लें। संक्षेप में, परिवर्तन सलाहकार की भूमिका परिवर्तन संबंधी शिक्षा प्रदान करने की होती है।

(ब) बाहरी परिवर्तन एजेंट

बहरी परिवर्तन एजेंटो की श्रेणी में मुख्यतः पेशेवर सलाहकारों को सम्मिलित किया जाता है।

पेशेवर सलाहकार—कई बार परिवर्तन को गंभीरता को समझते हुए पेशेवर सलाहकारों को परिवर्तन एजेंटों के रूप में पा जाता है। पेशेवर सलाहकार अपने—अपने क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते हैं। जैसे प्रबन्ध विशेषज्ञ, वित विशेषज्ञ. विपणनविशेषज्ञ. श्रम संबंध विशेषज्ञ आदि। इनकी नियुक्ति उच्च प्रबन्ध द्वारा की जाती है। ये विशेषत अपनी सेवाओं के बदले पर पारिश्रमिक लेते हैं। प्रायः ये विशेषज्ञ परिवर्तन कार्यक्रम को आंतरिक प्रबन्धकों को समझाते हैं। परिवर्तन कार्यक्रम को वास्तविक रूप में लागू करने का काम आंतरिक प्रबन्धक ही करते हैं । संक्षेप में, पेशेवर सलाहकार की भूमिका कार्यक्रम सला की होती है।

बदलते वातावरण में प्रबन्धक की भूमिका

वर्तमान युग को प्रबन्धकीय क्रान्ति का युग कहा जाता है प्रबन्धकीय क्रान्ति का अर्थ व्यावसिक तथा गैर—व्यावसायिक सभी क्षेत्रों में प्रबन्ध की बढ़ती हुई भूमिका से है कुछ वर्ष पूर्व व्यवसाय का स्वामी स्वयं का काम भी कर लेता था लेकिन आज स्वामी प्रबन्धक के मध्य तलाक हो चूका है अर्थात स्वामी व्यवसाय में धन का विनियोग करते है और स्वतंत्र पेशेवर प्रबन्धरक व्यवसाय का प्रबन्ध करते है। प्रबन्ध स्वामियों व श्रमिकों के मध्य एक कड़ी का काम करते है।

प्रबन्धकों के बढ़ते हुए महत्व का एक मात्र कारण है बदलता वातावरण । व्यवसाय के वातावरण में लगातार परिवर्तन होते रहते है बदलते वातावरण में व्यवसाय को सफलता पूर्वक चलाना कोई आसान काम नहीं है जब तक हम अपने आप को बदलते वातावरण के साथ संयोजित नहीं करेगें तब तक सफल नहीं हो सकते। बदलते वातावरण के साथ मिलकर चलने का काम पेशेवर प्रबन्धकों ही कर सकते है।

विकसित देशों ने प्रबन्धक की नई छवि के महत्व को समझा है और यही कारण है कि वे बदलते वातावरण का सामना आसानीसे कर रहे हैं अन्य देश भी बदलते वातावरण के प्रबन्ध की भूमिका के महत्व को धीरे—धीरे समझने लगे हैं।

लघु प्रश्नः

1. प्रेरणा को परिभाषित करें
2. वित्तीय प्रोत्साहन से आपका क्या तात्पर्य है।
3. जरूरत को परिभाषित करें।
4. आत्म बोध की क्या आवश्यकता है
5. नेतृत्व को परिभाषित करें

लंबे प्रश्नः

1. प्रेरणा से आपका क्या अभिप्राय है। साथ ही इसकी अवधारणा, प्रकृति और महत्व की व्याख्या करें।
2. बताएं कि मास्लो को उपयुक्त उदाहरण देकर सिद्धांत की आवश्यकता है।
3. हर्ज़बर्ग सिद्धांत पर एक व्याख्यात्मक नोट लिखें।
4. प्रोत्साहन से आपका क्या तात्पर्य है। वित्तीय और गैर वित्तीय प्रोत्साहन के बीच अंतर।